७५८
१.१२.

सम्राट् अशोक

प्रकाशक—चौधरी एण्ड सन्स,
बनारस सिटी।

सम्राट् अशोक

मूल लेखक—

देशभक्त लाला लाजपतराय

अनुवादक—

श्रीयुत् रामनारायणसिंह अध्यापक

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स,

बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स,

ज्ञानवापी-चौक, बनारस सिटी।

द्वितीय संस्करण	सम्वत् १९९० वि०	मूल्य १।)

12.7.5

प्रस्तावना

जिस समय मैंने आरम्भ में इस कार्य्यवाही की सूची बनाई, उस समय सम्राट् अशोक के विषय में बहुत थोड़ा ज्ञान प्राप्त था। वास्तव में इतिहासज्ञ महानुभावों को भी सम्राट् अशोक के विषय में इतना विस्तार पूर्वक ज्ञान नहीं था जितना कि अब है। इस समय भी ज्ञान की सामग्री अभी बिलकुल समाप्त नहीं हुई। गत पचीस तीस वर्ष में प्राचीन भारत के विषय में सारे संसार के मस्तिष्क में परिवर्तनशील विचार उत्पन्न हो गये हैं और दिनोंदिन हो रहे हैं। यह विचार दिनोंदिन आगे बढ़ता जाता है। प्रथम इस क्षेत्र में अधिकांश यूरोप और अमरीका निवासी पुरातत्ववेत्ताओं ने पदार्पण किया। उन्होंने अपने अनुभव की नींव पर फल निर्भर किया और इतिहास लिखा। बहुधा भारतवासी इनके फलों को स्वीकार कर लिया करते थे और स्वयं इतिहास के विषय में खोज करने से उदासीनता दिखाते थे। कुछ काल लौं यह विचार प्रचलित रहा कि जितनी खोज प्राचीन भारत का वृत्तान्त जानने के निमित्त की जावेगी उतने ही प्रमाण भारतवासियों की असभ्यता और जंगली होने के मिलते जायँगे। अनगिनत विद्वान भारतवासी संस्कृत भाषा को तुच्छ दृष्टि से देखते थे तथा इसके अध्ययन और

खोज में समय को बिताना व्यर्थ जानते थे। क्रमशः इस तुच्छ विचार में परिवर्तन हुआ। सम्पूर्ण अन्य कारणों के जो इस परिवर्तन के हुए, आर्य्यसमाज और उसके प्रवर्तक का शुभ नाम सर्वदा मान पूर्वक लिया जायगा। वास्तव में संस्कृत साहित्य की प्रतिष्ठा और प्राचीन भारतीय सभ्यता के आदर सत्कार की अपेक्षा आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतवासियों के हृदय में अत्यन्त सार्थक और गूढ़ परिवर्तन कर दिये। आरम्भ में जनता में खलबली मची और स्वामी जी की हँसी उड़ाई। किन्तु कुछ काल व्यतीत होने पर इनके विचार का महत्व जनता के हृदय में बैठता गया। अब वह समय प्राप्त हुआ जब कि उनके साधारण वचनों को भारत के श्रेष्ठ विद्वानों ने भी अपने हृदय में उच्च स्थान दिया। यह सत्य है कि आर्य्यसमाज के प्रचारक बहुधा प्राचीन भारतीय सभ्यता को इतनी उच्च मानते हैं कि इसके विरुद्ध जो कुछ कहा जाय या संसार में देखा जाय सबको अग्राह्य और असत्य कहने के लिये उद्यत हो जाते हैं। इनके लिये वेद न केवल धार्मिक विचार से परमात्मा के वाक्य हैं बल्कि सारी विद्याओं के विषय में भी सारे नियम इसमें अङ्कित हैं। वेदों के धार्मिक पद पर विवाद करना या उसके विषय में किसी प्रकार का विचार प्रकट करना इस समय इस पुस्तक के विषय में आवश्यक नहीं। किन्तु भारतीय प्राचीन सभ्यता को प्रत्येक दशा में उचित स्वीकार कर लेना महान भूल है। उससे जाति में सङ्कीर्ण विचार, सङ्कीर्ण दृष्टि और सङ्कीर्ण व्यवहार फैल जाने का भय है। जो किसी प्रकार जातीय य-

व्यक्तिगत विचार से भी लाभदायक अथवा ठीक नहीं है। किन्तु यह भी निस्सन्देह है कि अपनी पुरानी सभ्यता की अपेक्षा यह अत्युक्ति पूर्ण विचार ऐसे हानिकारक नहीं, जितनी हम स्वीकार कर लें कि हमारे पूर्वज जङ्गली थे और उनकी सभ्यता, उनके नियम, उनके चाल ढाल, उनके ज्ञान, उनके आचरण, उनकी तत्ववेत्ता और उनके इन्स्टीट्यूशन तुच्छ दृष्टि से देखने के योग्य हैं। जातीय विचार से हमारी जातीय पट्टी (तख्ती) निर्मल और उज्वल नहीं है कि अब हम आधुनिक काल में जो इच्छा हो लिख लें और अपने भविष्य को भूत के बिना विचारे ढाल लें। हमारे जातीय पट्टी (तख्ती) पर न्यून से न्यून सहस्रों वर्षों से लेख लिखे चले आरहे हैं। यह पट्टी (तख्ती) इतनी बड़ी और लिखित है कि हमको चीन के अतिरिक्त संसार में और किसी जाति की पट्टी इतनी बड़ी और लिपिबद्ध नहीं जान पड़ती। कहा जाता है कि बाबुल, ननवा और मिश्र की सभ्यता हमसे अधिक पुरानी है। हम इसको प्रमाणयुक्त नहीं स्वीकार करते। किन्तु यदि इसको स्वीकार भी कर लिया जावे तो भी प्रकट है कि बाबुल और ननवा अब केवल ऐतिहासिक नाम ही हैं। इनकी सभ्यता के चिन्ह केवल खड़हरों में पाये जाते हैं। वे स्वयं खड़हर हैं और पृथ्वी के भीतर बहुत नीचे धँसे हैं। इनकी सभ्यता और जातीयता की खोज का क्रम सहस्रों वर्षों से लुप्त हो गया है। बाबुल और ननवा तो अब भूगोल में भी दिखलाई नहीं देते। नकशे में उनका चिन्ह पाया नहीं जाता। जहाँ पर प्राचीन काल में बाबुल और ननवा थे, वहाँ

पर अब नवीन बस्ती और अन्य जातियाँ बसी हुई हैं। उनके धर्म्म और अन्य आचार व्यवहार भिन्न हैं। उनकी सभ्यता एकदम नवीन है। बाबुल और ननवा के आधुनिक समय की स्थानापन्न जनता में कोई चिन्ह या कोई प्रमाण नहीं जो प्राचीन बाबुल निवासी और प्राचीन ननवा निवासी का हो। वहाँ तो अब बिलकुल नवीन दुनियाँ बसी है।

मिश्र का वृत्तान्त अवश्य भूगोल में लिखा है। मिश्र और मिश्री दोनों इस हेतु जीवित हैं। किन्तु न आधुनिक मिश्र और न आधुनिक मिश्री प्राचीन मिश्र और प्राचीन मिश्रियों से कोई सम्बन्ध या लगाव रखते हैं। सम्भव है कि वर्तमान मिश्र की आबादी के कुछ भाग के लोगों में प्राचीन मिश्रियों का रक्त शेष रह गया हो। किन्तु इसके अतिरिक्त कोई सम्बन्ध या नाता या लगाव प्रचीन मिश्रियों से और उनकी सभ्यता से नहीं है। मिश्र की आधुनिक सभ्यता प्राचीन मिश्री सभ्यता की स्थानापन्न नहीं है—वह लगभग सारी बाहर से आई है। मिश्र पर लगभग चौदह सौ वर्ष से अरबी सभ्यता व अरबी राज्य प्रबन्ध है। इनका धर्म्म भी अरब से आया है। ऐसी दशा में वर्तमान मिश्र प्राचीन मिश्र का क्रम नहीं कहा जा सकता।

यूनान व रोम—बाबुल, ननवा और मिश्र को छोड़ कर—पश्चिमी संसार में प्राचीन यूनान और प्राचीन रोम का उदाहरण दिया जाता है। यूनान व रोम निस्सन्देह वर्तमान हैं। यूनानी व लातीनी के चिन्ह भी स्थित हैं। किन्तु इस समय यूनानी व

लातीनी सभ्यता के स्थान पर युरोपीय और अमरीकन सभ्यता वर्तमान है; न कि यूनानी और इटैलियन। यूनान और इटली की पोलीटिकल दशा, सभ्यता और विचार सम्बन्धी दशायें अत्यन्त शोचनीय हैं। किन्तु सब से श्रेष्ठ यह बात है कि यूनान व रोम संसार की सभ्यता में भारत के बाद सम्मिलित हुये और प्रथम ही मिट गये। उनके प्राचीन और वर्तमान धर्म्म में कोई सम्बन्ध नहीं उनके प्राचीन व आधुनिक विस्तार में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। उनके रक्त में भारत की अपेक्षा अधिकांश मिश्रित हैं और उनका मस्तिष्क सम्बन्धी विचार ऐसा क्रमबद्ध और नियमबद्ध नहीं है जैसा कि भारत का। इटैलियन के वर्तमान वंशज शिक्षित संसार में प्रसिद्ध हो रहे हैं और वास्तव में उनकी कला-कौशल शक्तिशाली है। किन्तु यूनान के विषय में इतना भी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में रोम न्यूनाधिक सर्वदा जीवित और बलिष्ट रहा। यदि प्राचीन रोम राज्य न रहा तो भी रोमन चर्च ने रोम को संसार में जीवित रखा—बलवान और शक्तिशाली रखा। रोम सामाजिक और नैतिक विषय में तो गिर गया किन्तु स्वभाव और ज्ञान सम्बन्धी विवेचनाओं में किसी दूसरी जाति से विजित न हुआ। किन्तु यह रोम उस रोम से नितान्त भिन्न है, जो रोम राज्य की राजधानी रही और जिससे रोमन सभ्यता की किरणें संसार में विस्तृत हुईं।

चीन—चीन के विषय में अवश्य स्वीकार करते हैं कि बहुत ही प्राचीन जाति में से है और ठीक अपने पूर्वजों की रीतिओं पर

स्थिर है। उनका वर्तमान धर्म्म भारत से गया और उस धर्म्म ने चीनी सभ्यता में दार्शनिक परिवर्तन कर दिया, किन्तु अपनी प्राचीन रीति, नीति, गुण और ढङ्ग में वर्तमान सभ्यता पुरानी चीनी सभ्यता की उचित स्थानापन्न है। यदि चीन नैतिक दृष्टि से इस समय नितान्त डाँवाडोल दशा में है तो भी इस विषय में भारत की अपेक्षा कहीं अच्छी दशा में है—कुछ नहीं तो नाम के लिये स्वतन्त्र तो है—और स्वयं युद्ध करने को स्वतन्त्र रहा है।

भारत—किन्तु भारत इन प्राचीन जातियों से विचित्र ही है। गत तीन सहस्र वर्षों के भीतर अनेकों जातियाँ आकर सम्मिलित हो गईं अनेक नैतिक परिवर्तन हुये बहुत सी लूट मार हुई, बहुत से विप्लव हुये। संसार की दो धुरन्धर धर्म्मध्वजी जातियों ने आक्रमण किये किन्तु उसकी बस्ती के अधिकांश की सभ्यता में कोई दृष्टिगत परिवर्तन नहीं हुये। हार्दिक, धार्मिक, सामाजिक, स्वाभाविक और मस्तिष्क सम्बन्धी विचारों में भारत ने कभी अपनी हार स्वीकार नहीं की और न किसी वहिः प्रभाव ने भी इन नियमों पर विजय प्राप्त किया; भारतीयों के जीवन में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ। आज भी हमारी रीतियाँ, प्रथायें वास्तविक नियमानुसार लगभग वही हैं जो भगवान बुद्ध के जन्मतिथि के समय थीं। जीवन और मृत्यु की प्रथा और रीति में, स्वभाव के वास्तविक नियम में आज आर्य्य लगभग वैसे ही हैं जैसे ढाई तीन सहस्र वर्ष पहले थे। धर्म्म भी अपनी वास्तविकावस्था में वही है। इस ढङ्ग में हम सबसे पृथक् हैं और यह कार्य्य हमारे निमित्त प्रतिष्ठास्पद है जब कि हम

इस स्वाभिमान को भविष्य की उन्नति और परिवर्तन में अड़ङ्गा न बना लें। और यह न विचारें कि तीन सहस्र वर्ष के भीतर संसार केवल झपकी मारता रहा और उन्होंने कोई ऐसी बात प्राप्त नहीं की जो हम उनसे शिक्षा ग्रहण करें। हमारे निमित्त यह बात सुखदायक है कि हमारा जातीय गृहभवन आजतक स्थिर है। मान लें कि कई भाग गिर गये हैं और उस पर बहुत कुछ धूल, मिट्टी, कूड़ा-करकट पड़ गया है। कुछ-कुछ भाग जीर्णोद्धार योग्य भी हो गये हैं, किन्तु केवल उनकी नींव ही दृढ़ और स्थिर नहीं है; वरंच उसकी दीवारें, छतें और मञ्जिलें भी आज लौं विचित्र ही दृढ़ता और स्थिरता की दशा में हैं। हमारे स्मारक जीर्णोद्धार योग्य हैं उसको परिष्कृत करने की आवश्यकता है। उसमें नवीन रंग और रोगन देने की आवश्यकता है। उसके कई भागों को गिराकर जड़ से बनाने में भी कोई अनुचित नहीं, किन्तु उसको बढ़ाना या विस्तृत करना और वर्तमान आवश्यकता के लिये पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। उसको गिराकर जड़ से बनाने की न हमें आवश्यकता है और न हम ऐसा कर सकते हैं। हमारा उसको गिराना असम्भव है। पर किसी मनुष्यशक्ति के लिये भी यह सम्भव ज्ञात नहीं होता है कि वह उसको एकदम जड़ से नष्ट कर दे। हम बहुत प्रसन्न हैं कि भारतीय शिक्षित समुदाय ने इस सत्यता को ज्ञात कर लिया है। और भारतीय पण्डितों और विद्यार्थियों का उचित समुदाय अपने देश के प्राचीन इतिहास और प्राचीन सभ्यता की छानबीन और खोज में विलीन हो गया है। गत बीस वर्षों में भारतीय

पण्डितों ने अपना अधिकार पूर्णतः जमा लिया है और बड़े-बड़े यूरोपियन पुरातत्ववेत्ता इनके फल को सहर्ष मानने लगे हैं। यदि योरोपियन और अमेरिकन पुरातत्ववेत्ता भारतीयों की योग्यता और उनके विचार को पूर्णतः प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखते और वे भारत की प्राचीन सभ्यता व भारतीय साहित्य के विषय में अपनी हल्दी की गाँठ लेकर पंसारी बने हुये हैं तो भी भारतवासियों के कार्य्य और उद्योग क्रमशः सफल हो रहे हैं। वास्तव में बात यह है कि आज लौं उनके सम्मुख कोई पंसारी खड़ा न हुआ था इसलिये उनको ही सामग्री हाट में थी। हाट में अन्य वणिक भी आ उपस्थित हुये हैं और पूर्णतः आशा की जाती है कि अब यह सम्मुख की दुकानें बहुत शीघ्र यूरोपियन दुकानदारों को आगे से अच्छी सामग्री रखने और उचित मूल्य पर व्यय करने के लिये विवश करेंगी। उस समय तक हम इस विभाग में योरोपियन पुरातत्ववेत्ताओं के ऋणी हैं, चाहे हमको उनके फलों से जो विरुद्धता हो किन्तु हम कदापि उनके कार्य्य की प्रतिष्ठा हृदय से अलग न करेंगे। उन्होंने हमारे लिये यह मार्ग खोला, स्वच्छ किया, गोला निर्माण किया और उस पर मीलों के पत्थर गड़वाये। हम उनके इस कार्य को इस विषय में सर्वदा धन्यवाद देते रहेंगे और स्मरण रक्खेंगे।

भारतीय इतिहास में बौद्धकाल ऐतिहासिक समय है। उस समय के ऐतिहासिक वृत्तान्त की गाथा विशाल है। जिनको गत पच्चीस वर्ष में खोल कर ज्ञान वृद्धि की गई है। एक अर्थशास्त्र

के निकल आने से ही यूरोपियन पुरातत्ववेत्ताओं के विचार में परि-वर्तन आ गया है।

सम्राट् अशोक व चन्द्रगुप्त के वृत्तान्त अब अधिक विस्तृत रूप से ज्ञात हो गये हैं। और सब लोग यह मानने के लिये उद्यत हैं कि इनके विषय में और भी वृत्तांत ज्ञात हो सकते हैं, किंतु जो कुछ आज तक लिखा है उससे हम यह फल निकालने योग्य हो गये हैं कि संसार के शासकों में सम्राट् अशोक एक अद्वितीय राजा हो चुका है। कहा जाता है कि उसका पितामह चंद्रगुप्त भारत के इतिहास में प्रथम ऐतिहासिक राजाधिराज हुआ है। जिसने इसके अधिक भागों पर चक्रवर्ती राज्य प्राप्त किया। भारतीय कथाओं के अनुसार उससे प्रथम अनेक चक्रवर्ती राजा हो चुके हैं। किंतु अशोक का साम्राज्य-चंद्र कहीं विस्तीर्ण था। हमने अशोक को अद्वितीय महाराजा उसके साम्राज्य के विचार से नहीं लिखा, वरंच इस हेतु लिखा कि उसकी सारी विशेषताओं को इकट्ठा करते हुए कोई अन्य शासक हमको उसके सम्मुख संसार के इतिहास में नहीं दृष्टिगत होता। हम नहीं कह सकते कि बौद्धकाल के पूर्व आर्य्यों के राजत्वकाल में आर्य्य सभ्यता का प्रधानत्व, युद्ध सम्बन्धी था बुद्धि सम्बन्धी, नैतिक था या स्वाभाविक। यदि हम वेदों की शिक्षाओं और उनकी प्रार्थनाओं पर विचार करते हैं तो हमको यह कहने के लिये पूर्णतः प्रमाण प्राप्त होते हैं कि वैदिक आर्य्यों की उन्नति की प्रधानता नैतिक भी थी और मानसिक भी। नैतिक उन्नति को स्वाभाविक और मानसिक जीवन खोये बिना प्राप्त करने

योग्य जानते थे। वेदों में चक्रवर्ती राज के निमित्त अधिकांश प्रार्थनायें प्राप्त होती हैं। वेदों में युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करने की ही प्रार्थनायें हैं। वैदिक आर्य्य सब प्रकार की सांसारिक स्वतंत्रता के इच्छुक थे। उसके साथ ही उनकी मानसिक और स्वाभाविक प्रधानता भी अत्यन्त उच्च थी। मानसिक और स्वाभाविक प्रधानता क्या हो? इस विषय में संसार में बड़ी विपरीतता है! सारा संसार और संसार के कुल वैज्ञानिक, धार्म्मिकजन, ऋषि, मुनि और धार्मिक शिक्षक, आत्मीयता और प्राकृत के शब्द का प्रयोग करते हैं। परंतु उनका उद्देश्य सर्वदा सबकी दृष्टि में एक सा नहीं। न था, न है, न होगा। योरोपियन विद्वन्मंडली यह कहती है कि आर्य्य वैज्ञानिक की प्रधानता त्याग अर्थात् संसार से सम्बन्ध छोड़ देना है।

और योरोपियन सभ्यता का मुख्य उद्देश्य भोग अर्थात् सुख है। भारतीयों में सब से श्रेष्ठ जीवन सन्यासी का है और योरोप निवासियों की दृष्टि में शासक या नीति विशारद का। किन्तु स्मरण रहे कि आर्य्यों में भी महाराज जनक की पदवी अत्यंत श्रेष्ठ है। जो राजा और ब्रह्मविद्या का आचार्य भी था। इसी प्रकार मुसलमानों और ईसाइयों में से ऐसे शासक अथवा राजा हुये हैं जो मानसिक सीढ़ी पर श्रेष्ठ गिने जाते थे। और शासक भी उच्चपद के हुये हैं। मुसलमान व ईसाई शासकों में भी ऐसे जीवन वाले पाये जाते हैं जिन्होंने शासन करते हुये साधारण और ईश्वराराधन में जीवन व्यतीत किया हो। जैसे भारतवर्ष के शासकों में नासीरुद्दीन महमूद

(गुलाम वंश से था) ऐसा शासक था। अपने सूक्ष्म विचार से औरंगजेब भी धार्मिक और साधारण जीवन व्यतीत करने वाला था। अब्बासिया खलीफाओं में भी अनेक ऐसे खलीफा हुये हैं जिनका जीवन साधारण और ईश्वरभक्ति में व्यतीत हुआ। इसी प्रकार बहुधा यूरोप में ईसाई शासक भी देखने में आते हैं। जापानी और चीनी सम्राटों में भी ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि साधारण और ईश्वराराधन के साथ उनका मानसिक और स्वाभाविक उद्देश्य ऐसा श्रेष्ठ था जितना कि अशोक का ? इस प्रश्न का निर्णय प्रत्येक जाति अपने-अपने सूक्ष्म विचार से करती है। योरोपियन इतिहास लेखक सम्राट् अशोक के सम्मुख ईसाई महाराज कान्सटनटाइन कुस्तुनतुनिया के प्रथम निर्माता व खलीफा उमर फारूक व सेन्टपाल * का नाम लेते हैं। यह प्रकट है कि सेन्टपाल की समता करना ही निरर्थक है। सेन्टपाल कोई शासक न था वह केवल एक प्रचारक था किंतु एक अन्य ढंग से भी सेन्टपाल और महाराज अशोक की समता बिल्कुल व्यर्थ हो जाती है। यह सिद्ध है कि सेन्टपाल युद्ध द्वारा ईसाइयत के प्रचार (Militant Christianity) की नीव डालने वाला था। ईसाई धर्म में जितना विवाद युद्ध और मारकाट की स्पिरिट पाई जाती है उसका आविष्कारक और प्रचारक सेन्टपाल ही था। मसीह को शान्ति का दूत कहा जाता है। उसने यहूदी धर्म की सारी मिलिटरी स्पिरिट को ईसाई धर्म्म में सम्मिलित कर लिया और धर्म्म की स्पिरिट बिल्कुल

* देखो वेन्सटस्मिथ की पुस्तक अशोक भाग ३ पृष्ठ २१

परिवर्तन कर दी। ईसाई धर्म्म की शिक्षा और प्रचार में सेन्टपाल के कर्तव्य अद्वितीय हैं और ईसाई उस पर जितना चाहें अभिमान करें किंतु वास्तव यह है कि धर्म्म की शिक्षा को उसने सम्पूर्ण नवीन वस्त्र दिये और सारे संसार में ईसाई धर्म्म के प्रचार में जितना रक्त बहा अथवा बहाया जा रहा है, उसका प्रथम कारण वह सेन्टपाल की ईसाइयत और शिक्षा-दीक्षा की है। इस विषय में महर्षि कोन्ट टालसटाय रूसी पण्डित के लेख पढ़ने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त और भी अनेक योरोपियन पण्डितों ने यह विचार प्रकट किया है। सम्राट् अशोक के विषय में ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता।

खलीफा उमर से भी महाराज अशोक की समता नहीं हो सकती। इस्लाम के पैगम्बर के पश्चात् जो सेवा इस्लाम धर्म की उमर फ़ारूक ने की है वह भी अद्वितीय है। किन्तु इस्लाम और बौद्धधर्म की स्पिरिट में जो पृथ्वी आकाश का अन्तर है वही खलीफा उमर और सम्राट् अशोक में है। खलीफा उमर ऐसे धर्म का अनुयायी था जो मारकाट का कायल है—जो नेत्र के बदले नेत्र, दांत के बदले दांत और प्राण के बदले प्राण लेना कर्तव्य समझना है। महाराज अशोक ऐसे धर्म के अनुयायी थे जो किसी प्रकार का बदला लेना अनुचित जानता है। जो महान् हत्यारे और पापी के साथ भी दया का व्यवहार करने की शिक्षा देता है; जिसमें मारकाट कदापि उचित नहीं। इस्लामी सूक्ष्म विचार से खलीफा उमर संसार के शासकों में अद्वितीय हुये हैं जैसा कि मौलाना शिवली * ने इसी

---

* देखो अलफारूक अज शिवली।

प्रकार कहा है और वास्तव में जब हम इस सज्जन के जीवनचरित पर दृष्टि डालते हैं तो हमको यह मानने में तनिक भी बाधा नहीं कि इस्लामी शासकों में खलीफा महाशय अद्वितीय थे। अपनी योग्यता, अपने अभिमान, अपने सदाचार, दृढ़ता और इस्लामी प्रेम के लिये हम जितनी उनकी प्रतिष्ठा करें उचित है। किन्तु सम्राट् अशोक के साथ उनकी समता नहीं हो सकती। क्योंकि दोनों के प्राकृतिक और मानसिक उद्देश्य भिन्न थे। खलीफा उमर ने अपने धर्म के उद्देश्य के अनुसार शस्त्र चलाना, हिंसा करना और रक्त बहाना उचित ही न जाना वरंच मुख्य कर्तव्य समझा। उन्होंने इस्लाम के द्वारा अरब को जातीयता का जामा पहना दिया। अपने जीवन में इस्लामी शस्त्र की वह विशेपता दिखाई और देखे कि पश्चिमीय एशिया व मिश्र सब अरब के आधीन होगये। अरब को सांसारिक विभव व सम्पदा, सांसारिक वृद्धि, नैतिक उन्नति, धन और जातीयता सब इस्लाम द्वारा प्राप्त हुई। खलीफा उमर इस्लाम के सब से श्रेष्ठ और योग्य भक्त और प्रचारक थे। उन्होंने अपने जीवन और रीति में इस्लाम का अत्यन्त सुन्दर मार्ग दिखलाया, किंतु अशोक महाराज ने बौद्ध धर्म को नैतिक उद्देश्य के निमित्त नहीं प्रयोग किया और न बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार से उनको कोई नैतिक उन्नति प्राप्त हुई। खलीफा उमर ने जो संसार में सफलता प्राप्त की उसका मुख्य कारण इस्लाम की शरण थी। सम्राट् अशोक ने जो सफलता प्राप्त की वह बौद्ध धर्म ग्रहण करने से पूर्व ही थी और बौद्ध धर्म में सम्मिलित होने के पश्चात् उनके राज्य में एक; पग पृथ्वी और

एक पैसे आय की वृद्धि न हुई। सम्राट् अशोक ने अपनी नैतिक प्रतिष्ठा को, अपने विभव को, अपनी सम्पदा को, सारांश जो कुछ उनके पास था उन सब को यहाँ तक कि अपने परिवार (भ्राताओं, भगिनियों, पुत्रियों) को बौद्ध धर्म के निमित्त अर्पण कर दिया। इसके विरुद्ध खलीफा उमर को जो नैतिक वैभव, उन्नति, धन और सम्पदा प्राप्त हुई सब इस्लाम का प्रताप है। बादशाह और खलीफा होने से पूर्व वे सांसारिक प्रभुता में एक साधारण मनुष्य थे। खलीफा उमर ने चढ़ाई की और देशों को आधीन किया। शस्त्र चलाया और चलवाया। उनकी आज्ञा पर इच्छानुकूल जो युद्ध हुये उनमें लाखों जनता का रक्त बहाया। लाखों की सम्पदा छीन ली गई। राज्य-हीन राजा और भिक्षुक ऐश्वर्य एवं सम्पदायुक्त होगये, किन्तु बौद्ध धर्म में प्रवेश करने के पश्चात् सम्राट् अशोक ने (जहाँ तक उस समय का ज्ञान होता है) न तलवार चलाई न किसी को चलाने की आज्ञा दी। न देश आधीन किये न आधीन करने की आज्ञा दी। उनके हाथों से या उनकी आज्ञा या इच्छानुसार किसी प्रकार का रक्त नहीं बहा। यदि सम्राट् अशोक किसी छोटे राज्य के राजा होते तो यह बात कोई आश्चर्यजनक न होती और उसपर हमको कहने का कोई अधिकार न था कि वह संसार के शासकों में अपूर्व जीवन का था। सम्राट् अशोक सारे महाद्वीप भारतवर्ष के राजाधिराज थे। पश्चिम में उनके राज्य में हिरात; काबुल व कंधार बिलोचिस्तान और मकरान आदि सम्मिलित थे, उत्तर में नैपाल व काश्मीर लगभग सारे पहाड़ी देश भी उनके राज्याधीन थे। पूर्व में

आसाम की सीमा तक उनका राज्य था (बहुधा कहते हैं कि आसाम स्वयं सम्मिलित नहीं था) दक्षिण में पश्चिमीय और पूर्वीय घाट सहित निलौर तक उनके राज्य के भाग थे। सारांश मद्रास नगर से भी कुछ दूर दक्षिण तक उनका साम्राज्य था। दक्षिण के चोला, पाण्डु, पाल राज्य स्वतन्त्र थे जो कुल उस छोटे से त्रिभुज में सम्मिलित थे। जिसकी शिखा कुमारी अन्तरोप और दोनों भुजायें दक्षिणी कारामण्डल का किनारा और दक्षिणी मालावार के किनारे थे जिसका आधार दोनों भुजाओं के बीच में था। जिसका एक सिरा निलौर था और दूसरा मैसूर राज्य का भाग। कहा जाता है कि मैसूर राज्य के भीतरी भागतक सारा देश उनके राज्य में सम्मिलित* था। सम्राट् अशोक के राज्य का वृत्तान्त मुख्य पुस्तक में लिखा जायगा। यहाँ पर यह सीमा इस कारण दी गई है कि हमारा अभिमान है कि इतने बड़े राज्य का कोई अन्य अकेला और स्वतन्त्र राजाधिराज संसार में सम्राट् अशोक के समान धर्मात्मा पवित्र-हृदय और विचित्र स्वभाव वाला नहीं हुआ। सम्राट् अशोक ने चालीस वर्ष तक राज्य किया। राज्याभिषेक के नवें वर्ष में उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने जीवन में एक बार भी चढ़ाई नहीं की†, एक युद्ध नहीं किया और जहाँ तक ज्ञात होता है कि इस काल में, इतने विस्तृत राज्य में, एक भी विद्रोह या युद्ध

---

* आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया – वेन्सण्ट स्मिथ की रची हुई, पृष्ठ ९०५ पर दिया है।

† वेन्सण्ट स्मिथ की लिखी हुई अशोक मानस तृतीय पृष्ठ ४६

नहीं हुआ। जिससे किसी प्रकार की लड़ाई झगड़ा अथवा मारकाट का वृत्तान्त ज्ञात हो।

कान्सटनटाइन (Constantine) की तो समता ही क्या है उसने ईसाई धर्म को एक नैतिक रीति करके स्वीकार किया है। यदि वह उसको गृहण न करता तो उसका राज्य नष्ट हो जाता। और उसके राज्याधिकारी ईसाई होने पर वह स्वयं बिवश होता। इसके अतिरिक्त कान्सटनटाइन और अशोक के जीवन और उनकी प्रकृति में पृथ्वी आकाश का अंतर है।

कान्सटनटाइन ने अपने स्वसुर और अन्य सम्बन्धियों को बेइमानी और धोखे से मार डाला। अपने पुत्र को केवल दुराचार के संदेह में अत्यन्त वीभत्सरूप से मार डाला। अपनी प्रियपत्नी को हम्माम में डुबाकर उसकी प्राण हत्या करा दी। उसको यह साहस न हुआ कि अपनी मृत्यु से पूर्व बपतिस्मा लेता। वह मरने से कई वर्ष पूर्व ईसाई धर्म्म का समर्थन करने लगा किंतु उसको स्वयं प्रकट रूप से ईसाई कहने का साहस न हुआ। उसका ईसाई धर्म्म का समर्थन करना एक नैतिक चाल थी। सम्राट् अशोक पर इस प्रकार का कोई लाञ्छन नहीं लग सकता। कान्सटनटाइन के व्यक्तिगत आचार के सम्बन्ध में एक ईसाई पण्डित ने ये विचार प्रकट किये हैं:—

"Tested by character indeed he was among the lowest of all those to whom the epithat (great) has in ancient or modern times been applied" (Encyclopaedia Brittanica 9th edition P. 301.)

अर्थ—आचार की परीक्षा से वह (कान्सटनटाइन) उन मनुष्यों में सब से गिरा हुआ है। जिनको भूत और वर्तमान में सम्राट् की पदवी प्राप्त है।

यह भी भूल है कि सम्राट् अशोक प्रथम राजा हुआ जिसने बौद्ध धर्म को गृहणकिया। उससे प्रथम अनेक राजा और राज कुल बौद्ध धर्म्म के सेवक हो चुके थे। जो हो, बड़ा अन्तर यह है—जैसा ऊपर लिख आये हैं कि अशोक ने अपने राज्य और वैभव ऐश्वर्य को बौद्ध धर्म्म के निमित्त अर्पण कर दिया था और उससे एक पाई व एक पग पृथ्वी का लाभ नहीं उठाया और कान्सटनटाइन ने ईसाई धर्म्म को अपने नैतिक उद्देश्य के लिये प्रयोग किया।

एक ईसाई लेखक मिस्टर जेम्स मेकफील एम० ए० ने सम्राट् अशोक पर एक छोटी सी पुस्तक आधिपत्य भारत के क्रम (The Heritage of India Series) में लिखी इस पुस्तक की प्रस्तावना और अन्तिम अध्याय में उसने निम्नाङ्कित राजाओं के नाम समता दिखाने के निमित्त लिख दिया है।

(१) इंगिलस्तान के राजा आर्थर व अलफ्रेड।

(२) फ्रांस के राजा सेण्ट लुइस।

(३) कान्सटनटाइन रोमन राजाधिराज।

(४) शार्लीमैन राजा फ्रांस व जर्मनी।

(५) खलीफ़ा उमर फारूक़।

(६) अकबर।

(७) मार्कस अवरेल्स (Marcus Aurelieus)

नम्बर ३ व ५ के विषय में हम ऊपर लिख आये हैं। कान्सटन-टाइन के विषय में इस लेखक की भी वैसी राय है जैसी कि मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ ने प्रकट की है। इंगलिस्तान के राजाओं की समता अशोक से करना केवल हास्य-उत्पादक बात है और यह बात स्वयं लेखक ने भी स्वीकार किया है। वह लिखता है कि यह समता केवल जातीय भलमन्सी, पवित्रता और श्रेष्ठता की साहस वृद्धि में की जा सकती है। फ्रान्स के राजा लूइस की भी किसी प्रकार की समता अशोक से नहीं हो सकती। इस राजा ने छयालीस वर्ष राज्य किया, जिनमें ३२ वर्ष उसने केवल जातीय भेद नष्ट करने और मिटाने में बिताये, उनकी मूर्तियाँ गिराईं, उनके मन्दिर तोड़े, उनको सहस्रों की संख्या में गृहबन्दी करके प्राण हत्या की और लाखों को संख्या में देश निर्वासित किया। ये सारे कार्य्य उसने ईसाई धर्म का प्रचार करने और ईसाइयत के नाम पर किये। ईसाई धर्म के लिये उसका साहस अपनी व्यक्तिगत उन्नति और वृद्धि का कारण हुआ। जब उसने राज्य कार्य्य आरम्भ किया तो वह फ्रांस के एक छोटे से भाग का राजा था। किंतु ईसाइयत के नाम पर उसने जो युद्ध किये उससे वह सारे रोमराज्य का राजा हो गया। उसने ईसाइयत के नाम पर (स्वयं और अपनी करनी आप कहने वालों के अनुसार) ईसाइयत के प्रचार के लिये और नास्तिकों को सुमार्ग पर लाने के निमित्त लाखों का रक्त बहाया। शार्लिमैन ने ईसाइयत को तलवार की शक्ति से प्रचारित किया। सम्राट् अशोक के सन्मुख उसका वर्णन नितान्त अनुचित और व्यर्थ है। उसकी समता (जैसा कि

इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका में किया गया है) कैसर व सिकन्दर से करना चाहिये। मेरे विचार में उनसे भी समता नहीं हो सकती।

प्राचीन रोम राज्य के एक राजाधिराज मार्क्स अवरेलस (Marcus Aurelieus) से भी अशोक की समता की गई है। हमने इस राजाधिराज के वृत्तान्त को ध्यान पूर्वक अवलोकन किया है। और हमको इन दोनों में नाममात्र की समता दृष्टिगत हुई।

मार्क्स अवरेलस निस्सन्देह पण्डित, एक सादगी पसंद और पवित्र-हृदय राजा था; किन्तु उसके जीवन के विवरण में न धर्म के स्वभाव की वह श्रेष्ठता देख पड़ती है जो विशेषतः सम्राट् अशोक ही का अंश है। उसने ईसाई धर्म के विरुद्ध एक प्रकार का युद्ध किया और ईसाइयों को बहुत सताया; उसने मनुष्यों और पशुओं के रक्त-नाहक युद्ध को जो रोमन सभ्यता का एक भाग था, न रोका *। डाक्टर मेकफील की पुस्तक में मैंने यह भी पढ़ा है कि प्रोफेसर राइस डिड्डेज़ ने अशोक के "निरस वाक्यों की समता अलिवर करामुवेल के रोचक लेख से किया है" यदि केवल लेख और वाक्य की समता है तो हमसे कोई सम्बन्ध नहीं। वरन अलिवर करामुवेल

---

* प्राचीन रोम में इस प्रकार के दंगल रचाये जाते थे जिसमें मनुष्यों और हिंसक जीवों के युद्ध होते थे और रोमवाले लाखों की संख्या में उन मल्लयुद्धों को देखते थे और जब जानवर मनुष्यों को चीरते फाड़ते थे तो दृश्य देखने वाले अत्यन्त चिल्लाते थे और ठट्ठा मार कर हँसते थे। आरम्भिक ईसाइओं को अनेक वार हिंसक जीवों से युद्ध कराया गया और उनका कायरता पर ठट्ठा मारा गया।

के करेक्टर की कोई समता अशोक से नहीं हो सकती। करामुवेल एक अत्यंत कट्टर, क्रोधी, पक्षपाती और रक्त बहाने वाला मनुष्य था, जिसने रोमन कैथलिक ईसाइयों को आयरलैण्ड में बड़े परिमाण में नष्ट-भ्रष्ट किया। जिन लोगों ने धर्म्म के नाम पर युद्ध किया और रक्त बहाया उनकी समता सम्राट् अशोक से करना बड़ा अन्याय है। क्योंकि सम्राट् अशोक ने कोई धार्म्मिक युद्ध नहीं किया और सारे धर्म्म के प्रचारकों को केवल शरण ही न दी, वरंच उनकी प्रतिष्ठा की, सत्कार किया, उनको वृत्ति दी और पारितोषिक भी दिये। इस विषय में अकबर की समता यदि की जाय तो कुछ सार्थक होती है। भारत के हिन्दू राजाओं में चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त, हर्ष और विक्रमादित्य इत्यादि बड़े-बड़े प्रसिद्ध राजा हुये हैं। मुसलमानों में अकबर व औरंगजेब बहुत श्रेष्ठ और योग्य शासक हुये हैं। अंग्रेजी राजाओं में से हेनरी अष्टम व महारानी एलिज़ाबेथ का पद अत्यन्त उच्च समझा व गिना जाता है। जर्मनी राजाओं में सम्राट् फ्रेड्रिक के गीत गाये जाते हैं। रूस का सम्राट् पीटर सबसे महान् गिना जाता है। अब्बासिया खलीफ़ाओं में से हारूँ रशीद व मामूँ का पद अत्यन्त श्रेष्ठ गिना जाता है और इसी प्रकार चीन, जापान, ईरान, तूरान, यूनान और रूम में बड़े-बड़े शासक हुये हैं। हम यहाँ पर केवल स्वतन्त्र शासकों का वर्णन करते हैं, न विजयी और नैतिक राजाओं का वर्णन है न प्रजातन्त्र राज्यों के सभापतिओं का। किन्तु हमारे विचार में उनमें से कोई भी नहीं है, जिसकी समता सम्राट् अशोक से की जा सके। साधुता, सज्जनता और धर्म्मप्रिय के विचार

से मिस्टर वेसन्ट स्मिथ ल्याँग वंश चीन के प्रथम राजा ओई व गुजरात के जैन राजा कुमारपाल से अशोक की समता करते हैं। किन्तु यह प्रकट है कि यह सादृश्यता भी एक दो बातों में हो सकती है, सब में नहीं। इसी भाँति अकबर की समता थोड़ी सी बातों में हो सकती है, विशेषतः अन्य धर्म्म की प्रतिष्ठा और स्वागत के विषय में। सारांश इन सब कारणों ने हमको सम्राट् अशोक के जीवन चरित्र लिखने को विवश किया। मेरे इस विचार का समर्थन अभी इंगिलस्तान के एक प्रसिद्ध * पंडित के विचार से भी होता है। जिसने संसार के छः महान् पुरुषों में अशोक का नाम सम्मिलित किया है। और उनका नाम मसीह व भगवान बुद्ध के समान रक्खा है।

सब से बड़ी सहायता वेन्सग्ट स्मिथ के इतिहास भारतवर्ष और उनके जीवन चरित्र सम्राट् अशोक से मिली है, जिसके लिये हम उनके कृतज्ञ रहेंगे। कई अवसरों पर हमने केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इंण्डिया से भी सहायता ली है और हेवल के इतिहास-भारत से भी। सम्राट् अशोक की सूचनाओं और आज्ञाओं को हमने स्मिथ के सम्पादित अशोक से जो (Rules of India Series) में छप चुकी है—लिया है। परन्तु हम वास्तविक शासकों का एक हिंदी अनुवाद भी इस पुस्तक के अन्त में लिखते हैं जिससे हमारे पाठक इन वास्तविक शासकों के वाक्य और उनके लेख को हमारे उर्दू अनुवाद से समता कर सकें। हमारी स्थिति ने आज्ञा न दी कि हम सम्राट् अशोक के विषय में कुछ विस्तार रूप से अध्ययन कर

---

* एच० जी० वेल्स

सकते और अन्य योग्य सम्पादकों के लेखों को देख सकते किन्तु यदि यह नुस्खः सर्वप्रिय हुआ तो हम इस त्रुटि को द्वितीय संस्करण में पूर्ण कर देंगे।

प्रथम हमारी इच्छा थी कि इस पुस्तक में बुद्ध धर्म्म की शिक्षा उसके नियम पर एक विवाद लिखें, किन्तु फिर भी हमने उसको एक अन्य अवसर के लिए छोड़ दिया। भगवान बुद्ध और बुद्ध धर्म्म की शिक्षा ने इतना दृढ़ और चिरस्थायी प्रभाव हमारी सभ्यता पर डाला कि हमने महात्मा बुद्ध का जीवनचरित्र भी लिखने का निश्चय किया है। इसके बाद इस अवसर पर हम बुद्ध धर्म्म के नियमों पर तर्क करेंगे। इस समय हमने अन्तिम भाग में धर्म्म के विषय में अपने साधारण विचार को लिपिबद्ध किया है क्योंकि यह सारी पुस्तक धार्मिक विचार से भरी हुई है। इस पुस्तक में जो त्रुटियाँ शेष रह गई हैं उसके निमित्त हम क्षमाप्रार्थी हैं।

दिसम्बर १९२२ लाजपतराय।

सम्राट् अशोक

प्रथम भाग

(महाराज अशोक और उनके परिवार का वर्णन)

महाराज अशोक, मौर्यवंश की नींव डालने वाले महाराज चन्द्रगुप्त के पौत्र थे। उनके पिता का नाम बिन्दुसार था। चंद्रगुप्त के विषय में वर्णन किया जाता है कि वह अंतिम नंद या मगध के राजा का समीपस्थ सम्बन्धी अथवा पुत्र था। भगवान बुद्ध के जन्म के समय उत्तरीय भारत में सबसे बड़ा और मुख्य राज्य मगध का था जिसको अब दक्षिणी विहार कहते हैं। उस समय बिम्बसार अथवा उसका पुत्र अजातशत्रु मगध राज्य का शासक था। कहा जाता है कि अजातशत्रु से

शाक्यमुनि गौतम बुद्ध व महावीर दोनों की भेंट हुई। भगवान की जन्म तिथि और मृत्यु के विषय में अब तक लेखकों में भिन्नता चली आती है। कुछ लोग ईसा मसीह से ४८० वर्ष पूर्व के लगभग उनका जन्मकाल बतलाते हैं, कुछ ४८० के लगभग उनकी मृत्यु का समय नियत करते हैं। वेन्सटन स्मिथ ने अपनी आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया में ४८७ ईसामसीह से पूर्व उनकी मृत्यु की तिथि देकर फिर लिख दिया है कि संघाली पत्रों से पचास वर्ष और इस अंक में अधिक होना चाहिये। केम्ब्रिज के नये इतिहास में एक स्थान पर ४८३ उनकी मृत्यु-तिथि लिखी है और एक स्थानपर यही तिथि उनके जन्म की दी है। सारांश इस प्रकार से ५० वर्ष से सौ वर्ष तक का गड़बड़ भगवान बुद्ध को जन्मतिथि और मृत्यु में होता है। किन्तु इससे उस समय के धार्मिक, सामाजिक और स्वाभाविक समाचार स्थित करने में बहुत कठिनाई नहीं होती। भगवान बुद्ध के जन्म के लगभग (उनके जन्म से कुछ पूर्व और उनके जीवन में) भारत में कोई ऐसा प्रधान राज्य नहीं हुआ था जिसका नैतिक अधिकार महाद्वीप भारतवर्ष पर हो। उस समय सबसे बड़ा राज्य मगध (विहार) का था। उसके आधीन आस पास के कई राज्य थे और वह राज्य दिन दिन शक्तिशाली होता जाता था, किन्तु तौ भी उत्तरीय भारत का बहुत सा भाग स्वतंत्र था। हमको ज्ञात होता है कि सिकंदर के आक्रमण के समय पञ्जाब में और उत्तरीय भारत के अन्य भागों में अनेक स्वतंत्र जातियाँ बसी हुई थीं, जिनका नैतिक प्रबंध (एक प्रकार से) प्रजातंत्र था,

किंतु साथ ही राज्य भी थे। तक्षशिला के राजा ने सिकंदर से मिल कर पोरस को हराया।

पोरस का शासन राजनैतिक नियमों पर निर्भर था किंतु मालव और अन्य कई जातियाँ अपने २ देश में स्वतंत्र थीं और उनका प्रबंध सभायें या पार्लियामेंट करती थीं। चूंकि इन जातियों में से एक जाति के डेढ़ सौ (या तीन सौ) मनुष्य सिकंदर के सम्मुख आये और उन्होंने सिकंदर से कहा कि हमने कभी आजलौं किसी की आधीनता नहीं की; हम अपनी स्वतंत्रता की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं और सर्वदा से स्वतंत्र रहे हैं और रहना चाहते हैं। इसलिए व्यास और रावि बल्कि व्यास और चनाव के मध्य जो घोर सामना इन स्वतंत्र जातियों ने सिकंदर का किया। उससे सिकंदर की सेना ऐसी विवश और व्याकुल हुई कि उसने व्यास को पार करने से इन्कार किया। जो दशा पंजाब की थी वह न्यूनाधिक भारत के अन्य भाग की भी थी अर्थात स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्यों में भी थी। इन भिन्न भिन्न नैतिक शक्तियों में किसी प्रकार का आपस में सम्बन्ध न था यदि वे परस्पर मिल कर एक प्रजातंत्र प्रधानशक्ति स्थापित कर लेतीं तो किसी वहिः आक्रमणकारी को सफलता न प्राप्त होती। वे परस्पर युद्ध करते रहने से शक्तिहीन थीं और सबकी स्वतंत्रता में अपनी निजी स्वतन्त्रता न समझती थीं। जिससे वहिः आक्रमण-कारियों ने उनको एक दूसरे के विरुद्ध प्रयोग किया। भारत को ईश्वर ने ऐसी प्राकृतिक सीमा दी है कि उसकी सीमा पर ऐसे कठिन पर्वतों की घाटियाँ और नदियाँ स्थित की हैं कि यदि इन बिखरी

हुई नैतिक शक्तियों में परस्पर एकता का सम्बन्ध होता और वह विशाल जातीय विचार से वहिः आक्रमणकारियों का सामना करते तो सम्भव था कि किसी वहिः आक्रमणकारियों को कदापि सफलता न प्राप्त होती। सिकंदर की सफलता का तत्व भी भारतीय शक्तियों की अनेकता और पारस्परिक वैमनस्य था और उससे लगभग चौदह पंद्रह सौ वर्ष पश्चात् महमूद ग़जनवी व मुहम्मदगोरी को भी सफलता इसी कारण से हुई। भारत के दुर्भाग्य से इस नैतिक वैमनस्य पर धार्मिक वैमनस्य की भी वृद्धि होती गई।

महात्मा बुद्ध से प्रेरित प्रचलित आन्दोलन हिन्दूधर्म के विरुद्ध एक प्रकार की आकाशवाणी थी। जाति-पाँति का भेद, जीवों का बलिदान, रीतियों के बंधनों और हठ योग के व्यर्थ विज्ञान ने महात्मा बुद्ध को वर्तमान हिन्दू धर्म से घृणा करा दिया और उस समय के उच्च से उच्च विचार के अनुसार ज्ञान प्राप्त करके तथा अमल में लाकर अपनी शिक्षा आरम्भ की। उन्होंने योग भी किया, तपस्या भी की, शास्त्र भी अध्ययन किये, यज्ञ भी किये। सारांश उस समय के धार्मिक संसार में भक्ति का मुख्य अंग जो समझा जाता था, वह सब किया और फिर यह विचार स्थिर किया कि उनसे लोगों का चरित्र उच्च नहीं होता और उनमें शांति और सुख का राज्य नहीं विस्तृत होता, इसलिए यह बात स्वाभाविक थी कि महात्मा बुद्ध की शिक्षा से उस समय के ब्राह्मण धर्म के नेताओं और अनुयायियों में बहुत व्यग्रता के साथ अप्रसन्नता फैले। वास्तव रूप से महात्मा बुद्ध की शिक्षा का कोई भाग ऐसा न था, जिससे साक्षात् ब्राह्मण

धर्म के खण्डन करने का उद्देश्य हो। इन्होंने अधिकांश मण्डन के कार्य किये—खण्डन की ओर ध्यान न दिये, वल्कि वह कहते रहे कि वह कोई नवीन धर्म स्थापित करने नहीं आये, केवल जनता को पवित्र-जीवन का मार्ग दिखाते हैं। तो भी वह कर्मकाण्ड और कुरीतियों से उदासीनता प्रकट करते थे और वेद तथा ईश्वर के विषय में भी अपनी ओर से उदासीनता प्रकट करते थे और उनकी सहायता न लेते थे। ब्राह्मण उनको नास्तिक समझते थे और उनकी शिक्षा को एक प्रकार का नास्तिकपन विचार करते थे। सबसे अधिक जिस वस्तु ने ब्राह्मणों पर वैमनस्य का प्रभाव डाला, वह वर्ण आश्रम धर्म की मर्यादा का परिवर्तन कर देना था। इस विरोध से यह भी उचित था कि फूट और अशांति देश के भिन्न भिन्न नैतिक शक्तियों में अपना दृश्य दिखावे। कहा जाता है कि नन्दवंश (मगध) हिंदू धर्म का पक्षपाती था और बौद्ध धर्म का वैरी था। बौद्ध धर्म्म के ग्रन्थों में इस कारण से इस वंश पर बहुत से लाञ्छन लगाये गये हैं जिनको इतिहासज्ञ अत्यन्त संदेहपूर्ण दृष्टि से देखते हैं। इन्हीं बौद्ध ग्रन्थों के प्रमाण से कई स्थान पर यह कहा गया है कि नन्दवंश के राजा नीच जाति के थे, न वे ब्राह्मण थे न क्षत्री। नन्दवंश के दो भाग गिने जाते थे। एक भाग वह था जो शैशुनाग के नाम से प्रसिद्ध है और जिसमें बिम्बसार और अजातशत्रु गिने जाते हैं। इस वंश के अंतिम राजा महानंद को कहते हैं कि नाई की पुत्री से विवाह कर लिया जिससे नन्दों का एक नवीन क्रम आरम्भ हुआ। पुराणों में इस वंश के राजाओं को क्षत्री वर्ण से बताया गया है

और यह प्रकट है कि हिंदू शास्त्रों के अनुसार किसी निम्न श्रेणी की स्त्री से विवाह करने से कोई वंश अपनी जाति से पतित न होता था इसलिये इस वंश को शूद्रों का वंश कहना अत्यंत अनुचित है। महानन्द के पश्चात् उसका पुत्र महापद्मनन्द और उसके आठ पुत्र हुये।

प्रथम इतिहास लेखक महापद्म और उसके आठ पुत्रों को नौ नन्दों के नाम से पुकारते थे, किंतु श्रीजैसवाल ने यह विचार प्रकट किया है कि जिस शब्द के अर्थ 'नौ' के किये जाते हैं उसके वास्तविक अर्थ नये के हैं। यह विचार ठीक जान पड़ता है। इन नवीन नंदों में से अंतिम नंद नामवाला 'दीननंद' उस समय मगध की गद्दी पर बैठा जब सिकंदर ने भारत के पश्चिमी भाग पर छापा मारा। चंद्रगुप्त उसी नंद का पुत्र या सम्बन्धी राजा था।

चंद्रगुप्त का वंश इतिहास में मौर्य कहलाता है। इस शब्द 'मौर्य' की वास्तविकता के विषय में विभिन्नता है। अनेक ग्रन्थकर्ता लिखते हैं कि राजा मगध की एक दासी मुरा नाम की थी और चंद्रगुप्त उसके गर्भ से था इसलिये उसका वंश मौर्य कहलाया। अनेक यह भी लिखते हैं कि इस मुरा का पिता राज्य के मोरों का रक्षक था इस कारण उसकी पुत्री की संतान मौर्य कहलाई, किंतु हमारे विचार में दूसरी कथा पूर्णतः असत्य है। वास्तव में यह ज्ञात होता है कि 'मोरी' या मोर एक स्त्री या गोत का नाम था और चंद्रगुप्त की माता उस गोत की पुत्री थीं इसलिये चंद्रगुप्त मौर्य कहलाने लगा। प्राचीन भारत में यह रीति प्रचलित थी कि माता के नाम से

अथवा माता के गोत के नाम से संतान पुकारी जाती थी। जैसे महाभारत में युधिष्ठिर इत्यादि को वार वार 'कौन्तेय' कुंतीपुत्र कहा है और भी अनेक उदाहरण इस प्रकार के दिये जा सकने हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अंतिम नंद ने चन्द्रगुप्त को देश से निकाल दिया, उसके भय से चंद्रगुप्त मगध से भाग गया। इस समय यह बात एक ऐतिहासिक कथा है। जिस समय सिकंदर ने उत्तरी पंजाब को विजय किया, उस समय चंद्रगुप्त तक्षशिला में था। यह वही स्थान है जो हसन अब्दाल के समीपस्थ भूमि से खोदा जा रहा है। और जहाँ पर किसी समय भारत की सबसे प्रसिद्ध युनिवर्सिटी (विश्व-विद्यालय) थी। तक्षशिला में चंद्रगुप्त को एक ब्राह्मण विष्णुगुप्त मिला, पश्चात् यही ब्राह्मण कौटिल्य या चाणक्य ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह ब्राह्मण बौद्ध न था और सम्भव है कि वह बौद्ध लोगों की कठोरता से भाग कर तक्षशिला में, जहाँ अभी तक बौद्ध धर्म की प्रधानता न थी शरण ली हो। बौद्ध धर्म का प्रचार मगध में और उसके आस पास हुआ था और सम्भव है कि चंद्रगुप्त के काल तक उसीके आस पास उसका प्रचार रहा हो। शोक है कि विष्णुगुप्त का स्पष्ट वृत्तान्त अभी तक प्रकाश में नहीं आया। यह प्राचीन आर्य ऋषियों की नीति थी कि अपने अमूल्य जीवन को ज्ञानार्जन में मिटा देते थे और अपने आप को कदापि अधिक प्रकाश में लाने का उद्योग नहीं करते थे। आज किसको ज्ञात है कि उपनिषदों के निर्माता कौन से ऋषि थे और उनके जीवन किस प्रकार व्यतीत हुये। इस प्रकार दर्शनों के रचयिता के नाम और

उनके जीवन के वृत्तांत किसी को ज्ञात नहीं, केवल यह पदवी उनकी ज्ञात है जिनसे वे ज्ञान के संसार में प्रसिद्ध हुए। वह पदवी मुख्य उनकी व्यक्तिगत न थी बल्कि समुदायी नाम थे। सारांश एक प्रकार से उनकी योग्यता के मानपत्र थे। ऐसा ज्ञात होता है कि अनेक सांख्य और गौतम हुये हैं और यह कहना बहुत कठिन बल्कि असंभव है कि जो दर्शन सांख्य के नाम से प्रसिद्ध है वह किसका लिखा हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व कौटिल्य या चाणक्य का नाम भी आधुनिक पण्डित समाज में प्रसिद्ध न था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र किसी पण्डित के बस्ते में बँधा हुआ पड़ा था और किसी का विचार यह न था कि वह ऐसे उच्च पद की पुस्तक है। संस्कृत साहित्य में चाणक्य के नाम * से कई श्लोकस्थान आते थे, किन्तु पूर्ण रूप से अर्थशास्त्र का किसी को ज्ञान न था। मैसूर राज ने जब संस्कृत की लिखित पुस्तकें इकट्ठी करनी आरंभ की, तो एक पण्डित ने कौटिल्य शास्त्र की एक कापी (जिस पर एक अपूर्ण भाष्य भट्ट स्वामी का था) मैसूर की ओरियन्टल लाइब्रेरी को दे दी और एक मैसूरी विद्वान शाम शास्त्री ने उसको किसी प्रकार शुद्ध करके मुद्रित करा दिया और उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में मुद्रित करा दिया। इस पर सारे संसार के विद्वान अचानक आश्चर्यित होगये और हिंदुओं की राजनीति के विषय में उनके विचार में परिवर्तन आरम्भ होगया।

---

* देखो केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया पृष्ठ १५१ और वेन्सन्ट स्मिथ का इतिहास अशोक मुद्रित तृतीय पृष्ठ १७०

कौटिल्य को भारत की मिक्यावली (Machiavelli) कहा जाता है। मेक्यावली एक इटैलियन विद्वान् हुआ है, जिसने एक पुस्तक पालीटिक्स (नैतिक) शास्त्र पर लिखी है। इस पुस्तक में राजा को अपनी शक्ति बढ़ाने, स्थिर रखने और अपने राज्य को विस्तृत करने और उसका प्रबंध स्थायी रखने के विषय में नियम अंकित किये गये हैं। यह पुस्तक इम्पीरियल सिस्टम का पूर्णतः नियामक ग्रन्थ है। मेक्यावली ने यह नियम अंकित किये हैं जिन-पर योरोप के बड़े धुरंधर सफल पण्डित सर्वदा से कार्यक्रम करते आये हैं और अब तक करते हैं। अंतर यह है कि बहुधा योरोपियन विद्वान् मुँह से तो मेक्यावली के नियमों को अनुचित ठहराते हैं, किन्तु कार्य ठीक उनके अनुसार करते हैं। बल्कि संभव हो तो उससे भी दो पग आगे जाते हैं। मेक्यावली ने स्पष्टतया उन नियमों को अंकित कर दिया है जो इम्पीरील्जम की सफलता के लिये उस समय तक और उसके पश्चात् भी प्रबंधकर्ता प्रयोग करते रहे हैं। कौटिल्य को मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ ने * 'बेत्रसूला' कहा है। वास्तव में वह स्वयं इण्डियन सिविल सर्विस के मेम्बर की हैसियत से उन्हीं नियमों को कार्य रूप में अपने जीवन में यदि करता नहीं तो देखना अवश्य रहा। मुझे यहाँ कौटिल्य और मेक्यावली क समता नहीं करनी है। हमारे विचार में तो यह समता निरर्थक अ नीरस न होगा। हम यहाँ पर केवल इतना कह देते हैं कि हमको संसार के इतिहास से कोई दूसरी जाति ज्ञात नहीं, जिसने पालि-

* (Unscrupulous) देखो स्मिथ का अशोक पृष्ठ ८३

टिक्स अथवा युद्ध में उससे कहीं अच्छे स्वाभाविक नियमों पर कार्य किया हो या जिसने युद्ध में उस प्रकार की मनुष्यता या श्रेष्ठ (Chivalry) वीरता का प्रमाण दिया हो जितना भारत के क्षत्रियों या राजपूतों ने दिया है।

वृत्तांतों से ऐसा ज्ञान होता है कि सिकन्दर की सफलता ने चन्द्रगुप्त और विष्णुगुप्त के हृदय पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव डाला। चन्द्रगुप्त की धमनियों में राज्य-रक्त प्रवाहित था। वह अपने राज्य-सम्बन्धियों की कठोरताओं से आकुलित होकर भागा हुआ था और बदला लेने का इच्छुक था। चंद्रगुप्त के हृदय में निजी उन्नति ऐश्वर्य्य व सम्पदा की बड़ी अभिलाषा हो रही थी अंगरेजी शब्दों में वह (Ambitious) था, किन्तु यह सारी इच्छायें देशभक्ति के विरुद्ध न थीं। एक देशभक्त और जातिप्रेमी मनुष्य होता हुआ भी व्यक्तित्व प्रसिद्धि और उन्नति का इच्छुक हो सकता है। देशभक्तों और जातिभक्तों की तीन श्रेणियाँ हैं। सबसे शिखर पर समुदायगत है। जिनको देशभक्ति में स्वार्थ और व्यक्तिगत उन्नति की इच्छा का लेश नहीं, जो भगवान कृष्ण के शब्दों में निष्काम होकर कर्तव्य को केवल कर्तव्य समझ कर पूर्ण करते रहते हैं। ऐसे मनुष्य संसार की प्रत्येक जाति में अद्भुत और थोड़े होते हैं। द्वितीय श्रेणी मनुष्यगत है। जो देशभक्ति व जाति-प्रेम के साथ व्यक्तिगत उन्नति के भी इच्छुक हों, जिस सीमा तक उनकी यह इच्छा जातीय और देशीय उद्देश के विरुद्ध नहीं होती, वह समुदाय भी निन्दनीय अथवा लाञ्छन योग्य नहीं है।

तृतीय श्रेणी में वे लोग हैं जो देशभक्ति और जाति प्रेम को केवल अपने स्वार्थ के निमित्त प्रयोग करते हैं। और जिनकी देशभक्ति और जाति प्रेम सर्वदा डाँवाडोल भ्रमयुक्त रहती है। उनसे यह आशा नहीं हो सकती कि वह अपने स्वार्थ से ऊँचे उठकर देश-भक्त अथवा जाति-भक्त रहेंगे, यह समुदाय सब से निम्न श्रेणी का और धोके में डालने वाला है।

यदि कोई राजपुत्र देशनिकाला की दशा में अपने देश को एक अन्य जाति के आक्रमणकारी के पैरों से कुचलता हुआ देखकर यह उमंगें बाँधे कि वह अपने देश को उस अन्य आक्रमणकारी के हाथ से छुड़ा करके स्वयं राज्य करेगा तो हम उसको द्वितीय श्रेणी के देशभक्त में गिनेंगे और उसकी इस अभिलाषा को नीच और निन्दनीय न कहेंगे।

चन्द्रगुप्त और विष्णुगुप्त का मिलाप ऐसे ही जीवन का मिलाप था कि उसमें से एक निस्सन्देह उच्च श्रेणी का जीवन था। दूसरा द्वितीय श्रेणी का। विष्णुगुप्त ने देखा कि सिकन्दर उसके प्रिय देश को विजय कर रहा है और अपने राज्य को स्थिर बनाने का भी प्रबन्ध कर रहा है। तक्षशिला का राजा नीच होकर सिकदर के साथ मिल चुका था। विष्णुगुप्त के हृदय की उस समय कैसी दशा होगी। इसका अनुभव वही पवित्र हृदय कर सकता है जिनमें सच्ची देशभक्ति और जाति-भक्ति की लहरें हिलोरें मार रही हों। उसने विचार लिया होगा कि सिकन्दर की लाई हुई सेना के सम्मुख विशेषतः जब कि भारतीय नीचों की सहायता ने उस

सेना के बल और शक्ति को दुगुना कर दिया है, न कोई स्वतन्त्र राजा ठहर सकेगा न कोई प्रजातंत्र देश। इस प्रकार कुछ काल तक ऐसा ही हुआ। सिकन्दर मार काट करता हुआ सब विरुद्ध शक्तियों को नष्ट करके व्यास के पश्चिमीय तट तक जा पहुँचा। यह भी अच्छा हुआ कि चनाव और व्यास के मध्य रहनेवाली स्वतन्त्र व स्वावलम्बी जातियों ने उसकी सेना के दाँत खट्टे कर दिये और वह वहाँ से पीछे हटा। यदि वह व्यास को पार कर जाता तो सम्भव है कि मगध के अन्तिम राजा को उसका सामना करने की शक्ति न होती और सारा उत्तरी भारत उसके घोड़ों के सुमों के नीचे कुचला जाता—विष्णुगुप्त ने अपने दूरदर्शी नेत्रों से देखा कि भारत में किसी प्रधान शक्ति के न रहने से देश नष्ट हो रहा है। छोटे छोटे राज्य इस योग्य नहीं हैं कि किसी प्रबल आक्रमणकारी का वीरता के साथ सामना करें, ऐसी दशा में उचित है कि जातीय वैमनस्य और पारिवारिक-विद्रोह के सताये हुये शासक और रईस आक्रमण-कारी से मेल कर लें और देश की मान मर्य्यादा और उसके हित का विचार न करते हुए उससे मेल कर लें और उसके सहायक हो जायँ। उसके नेत्रों के आगे सब कुछ हुआ और हो रहा था। इसकी समझ और बुद्धि का मनुष्य उससे उचित फल निकाले बिना न रह सकता था। कोई आश्चर्य्य नहीं, उसने चंद्रगुप्त की योग्यता और कुल देख कर चंद्रगुप्त के हृदय में भारत का राजा-धिराज होने का विचार भरा और इतिहास इस विषय का प्रमाण क उसका यह उद्योग किस प्रकार सफल हुआ। ऐसा ज्ञात होता

है कि उसके तीन उद्देश्य थे। प्रथम प्रवल प्रधान नैतिक शक्ति वना दी जाय। द्वितीय यह कि वौद्ध धर्म्म की उठती हुई लहर से जो निर्वलता हिन्दू सोशल स्टीम में आ रही थी, वह पूर्ण हो जाय। तृतीय यह कि अन्य जातियों के शासकों से देश को स्वतन्त्र कराया जावे। उसने इन तीनों उद्देश्य को एक दूसरे का सहायक वनाया और चन्द्रगुप्त को अपने उद्देश्य के पूर्ण करने का सहायक ढूँढ़ा। इस विषय का ठीक प्रमाण मौजूद है कि यदि चाणक्य ऋषि की प्रतिष्ठा महाराजा चन्द्रगुप्त के समय में अद्वितीय और अद्भुत थी। वह केवल महाराज का प्रधान मन्त्री ही न था वल्कि महाराज उसकी पूजा करते थे। प्रति दिन प्रातःकाल उठकर राज्य कार्य्य आरम्भ करने से पूर्व अपने ब्राह्मण मंत्री के पैर छूते थे। किन्तु इतनी शक्ति और अधिकार रहते हुये भी चाणक्य का आचार व्यवहार अत्यन्त दीन और साधारण था। उसने अपने लिये न महल वनवाये न आनन्द भवन, न धन एकत्रित किया न द्रव्य से सुख की सामग्री वटोरी। एक सच्चे ब्राह्मण की भाँति और साधारण भोजन व साधारण वस्त्र पर सन्तुष्ट रहा।

उसकी तपस्या, बुद्धिमत्ता, उसका इन्द्रिय निग्रह और उसकी योग्यता का यह फल प्राप्त हुआ कि थोड़े ही समय में न सारा देश अन्य-जाति के शासन से स्वतन्त्र हो गया वल्कि हिन्दूकुश से लेकर वङ्गाल तक और काश्मीर से लेकर विंध्याचल तक का विस्तृत देश एक मुख्य नैतिक शक्ति के आधिपत्य में आ गया। और उसने अपने जीवन में इस प्रधान शक्ति को ऐसे प्रवंध में वाँध दिया कि

शताब्दियों तक किसी बाहरी आक्रमणकारी को भारत के किसी भाग पर आक्रमण करने अथवा अधिकार जमाने का साहस न हुआ। इस सूक्ष्म विचार से महाराज कौटिल्य (ऋषि चाणक्य) प्रलय काल तक भारतवासियों के लिये श्रेयष्कर जीवन हैं और भारतीयों के लिये वे पूजा के पात्र हैं। उसके नैतिक नियम ठीक हों या न हों उसने ऐसी विपत्ति के समय में जो भारत की सेवा की, वह भारत के इतिहास में सर्वदा प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखी जायगी और भारत की संतान सर्वदा उसपर श्रद्धा और भक्ति के फूलों को चढ़ाती रहेगी। चन्द्रगुप्त की सफलता महाराज चाणक्य की सफलता जाननी चाहिये। चंद्रगुप्त का सारा वैभव बड़ाई, मान मर्य्यादा और शक्ति का रहस्य यह झोंपड़ी का निवासी ब्राह्मण था।

कौटिल्य के पोलिटिकल नियम *

यह अवसर कौटिल्य के पोलिटिकल नियमों को स्पष्ट रूप से वर्णन करने का नहीं है, किन्तु इतना बतला देना आवश्यक है कि कौटिल्य ने एक इम्पीरियल सिस्टम के नियम रचे हैं, जिसमें राजा के अधिकारों पर बन्धन अवश्य हों, किन्तु सारे प्रबन्ध की कुञ्जी वह स्वयं हो और उसके आधीन और राजा हों। उसने प्रजातंत्र राज्य के लिये नियम नहीं स्थिर किये, क्योंकि उस समय भारत में एक

---

* भारतीयों की राज्यनीति पर हम एक अन्य स्पष्ट रूप से पुस्तक लिखने की इच्छा करते हैं और उसके लिये सामग्री एकत्रित कर रहे हैं। उस पुस्तक में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का स्पष्ट वर्णन करगे।

प्रधान नैतिक शक्ति बनाने का यही ढंग था जो सफल हो सकता था। उसका सारा प्रबन्ध ऐसा है जो बीसवीं शताब्दी की ब्रिटिश इण्डियन राज्य से किसी प्रकार निर्बल, अपूर्ण अथवा कम सभ्य नहीं है। महाराज चन्द्रगुप्त की श्रेष्ठता और सफलता उसके मन्त्री चाणक्य के कारण हुई और चाणक्य ने उसके राज्य का ऐसा प्रबन्ध नियमित किया कि कदाचित ही उस समय संसार में किसी अन्य राज्य का होगा। आज जिस प्रबन्ध पर योरोपियन शक्ति अभिमान करती है, वह सब चन्द्रगुप्त के राज्य में पूर्ण रूप से वर्तमान था और कम से कम तीन पीढ़ी तक उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं हुई। अशोक के जीवन चरित्र के साथ इस प्रबन्ध का घनिष्ट सम्बन्ध इस कारण से है कि चाणक्य का नियमित प्रबन्ध था जो महाराज अशोक के धर्म्म राज्य की सफलता के लिये सम्भव हुआ।

चन्द्रगुप्त का प्रथम कार्य्य यह था कि सेना एकत्रित करे। उसका द्वितीय कार्य्य यह था कि मगध की गद्दी पर अधिकार जमावे। तीसरा कार्य्य यह था कि यूनानियों को पंजाब और अफगानिस्तान से निकाल कर अपने देश को उनके शासन से स्वतन्त्र करे।

जौलाई सन ३२६ पूर्व ईसामसीह के अन्तिम समय में सिकन्दर व्यास के पश्चिमी तट से लौटा। सितम्बर ३२५ पूर्व ईसा वह पटियाला से अपने देश की ओर मुड़ा। पटियाला वर्तमान हैदराबाद सिन्ध से अग्निकोण में स्थित था। ३२४ पूर्व ईसामसीह

"फैलपूस" जिसको वह अपना सहायक बनाकर पंजाब प्रदेश में छोड़ गया था मार डाला गया। इसका समाचार उसको एशिया कोचक पहुँचने से पहले मिल गया, किन्तु उसके लिये लौटकर फैलपूस की प्राणहत्या करनेवालों को दण्ड देना कठिन बल्कि असम्भव था। सारांश उसको भारत की सीमा से जाने के ३ या ४ महीने के भीतर पंजाब प्रदेश में यूनानी शक्ति के विरुद्ध विद्रोह हो गया और पंजाबी सेनाओं ने सिकन्दर के स्थानापन्नों को मार डाला।

जून ३२३ (पूर्व ईसा) सिकन्दर का एशिया कोचक में देहान्त हो गया। उसके मरते ही उसके राज्य के कई भाग हो गये। जिसमें दो वर्ष पश्चात् पुनः न्यूनाधिक करने की आवश्यकता पड़ी। इस विभाग में एक प्रकार से भारत के सूबों की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई तो भी फैलपूस के स्थान पर जिस पुरुष को सिकन्दर ने पोरस व राजा आम्भि के साथ मिलकर शासन करने के लिये नियत किया था वह पंजाब में कुछ वर्ष तक रहा। कहा जाता है (ये इतिहास योरोपियन पुरातत्ववेत्ताओं के नियत किये हुये हैं) कि ३१७ पूर्व ईसा के लगभग उसने धोके से राजा पोरस को मार डाला और उसके १२० हाथी लेकर पश्चिम दिशा को चल दिया। इस पुरुष योडिम्स के चल देने से भारत में यूनानी आधिपत्य की समाप्ति हो गई। योरोपियन इतिहास लेखक सिकन्दर के आक्रमण को एक छापा* से उपमा देते हैं; डाकुओं की भाँति वह आया और लूट मार करके वह लौट गया। इसके आक्रमण का चिरस्थायी

*Raid देखो वेन्सन्ट स्मिथ का इतिहास प्राचीन भारत।

नैतिक प्रभाव देश पर नहीं पड़ा। ३०५ पूर्व ईसा के लगभग पुनः सिकन्दर का एक दूत सैल्यूक्स सिन्ध के उस पार उतरा। उस समय चन्द्रगुप्त की शक्ति स्थापित हो चुकी थी। किस समय किस स्थान पर सैल्यूक्स और चंद्रगुप्त में युद्ध हुआ, इतिहास लेखक इस विषय का निर्णय नहीं कर सके। किंतु यह प्रकट है कि सैल्यूक्स की हार हुई और उसने चंद्रगुप्त के साथ संधि करके उसको भारत, अफ़ग़ानिस्तान और बिलोचिस्तान का राजाधिराज स्वीकार किया। उस समय अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान भारत में सम्मिलित जाने जाते थे। इस प्रदेश में हिरात, काबुल, जाबुल (गजनी), मकरान और सारा प्रदेश पेशावर और तक्षशिला का सम्मिलित था। इस संधि के द्वारा चंद्रगुप्त ने ५०० हाथी सैल्यूक्स को दिये। पहले के इतिहासों में वर्णन किया जाता रहा कि सैल्यूक्स की पुत्री से चंद्रगुप्त का व्याह हो गया, किंतु अब इस अन्तिम वाक्य के सम्बन्ध में संदेह किया जाता है और कहा जाता है कि संधिपत्र में जो यूनानी भाषा के शब्द प्रयोग किये गये हैं उनसे यह फल नहीं निकलता कि वास्तव में व्याह हुआ था। उससे केवल यह प्रकट होता है कि दोनों वंशजों के मध्य इस प्रकार से संधि हो गई, जिससे परस्पर व्याह होना संभव और उचित होगया। सारांश दोनों में Matrimonial Alliance हुई। इस पर अब यह भी तर्क किया जाता है कि चंद्रगुप्त किसी प्रकार जाति पांति की रीति के विरुद्ध एक यूनानी की पुत्री के साथ व्याह कर सकता था? हमको यह सारा विवाद असत्य ज्ञात होता है। चंद्रगुप्त के साथ सैल्यूक्स

की पुत्री का व्याह हुआ अथवा नहीं, इससे हमको कोई संबंध नहीं, क्योंकि इससे हमारे विचार में चंद्रगुप्त की प्रतिष्ठा में कुछ विशेषता नहीं आती। किन्तु हमको स्वीकार करने में भी कोई बाधा नहीं है कि Matrimonial Alliance सारांश व्याह संबंधी शर्त भविष्य के लिये थी, यदि विवाह नहीं हुआ तो इस प्रकार का प्रण बिल्कुल व्यर्थ और अनावश्यक था। एक जर्मन संपादक ने सिद्ध करने का उद्योग किया है कि चंद्रगुप्त ने ५०० हाथी देकर सैल्यूक्स की अधीनता स्वीकार कर ली। मिस्टर वेंसंट स्मिथ ने इस बात की असत्यता दिखायी है और लिखा है कि ५०० हाथियों का मूल्य किसी प्रकार से भी उस विशाल और बहुमूल्य प्रदेश का बदला नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त संधिपत्र में इसका कोई वर्णन नहीं। मिस्टर वेंसंट स्मिथ के कहने के अनुसार वास्तव्य यह है कि सैल्यूक्स ने स्वयं अपने को चंद्रगुप्त पर विजय प्राप्त करने के अयोग्य जान कर उसकी स्वतंत्रता और शक्ति को स्वीकार किया और उसके बदले में जो कुछ मिला उसको बहुत समझा। उन दिनों पश्चिमी लोग हाथी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। भारतवर्ष के राजाधिराज के लिये ५०० हाथी कोई अधिक न थे इसलिये उसने सहर्ष देना स्वीकार किया। सैल्यूक्स के चले जाने के पश्चात् चंद्रगुप्त सारे उत्तरीय भारत का स्वतंत्र राजा होगया। उसके राज्य में हिरात, काबुल, गज़नी, बिलोचिस्तान, कश्मीर, पंजाब, मध्य व उत्तरीय भारत, बंगाल, पश्चिम में मालवा, सिंध, काठियावाड़, गुजरात यानी सौराष्ट्र सम्मिलित थे। दक्षिण में उसकी सीमा नर्वदा थी, पूर्व में

बंगाल, पश्चिम में हिरात, उत्तर में हिंदूकुश व कश्मीर। ऐसा ज्ञात होता है कि विन्ध्याचल के दक्षिण में भी कई राज्य उसके सहायक थे। चंद्रगुप्त ने १४ वर्ष तक राज्य किया ३०५ पूर्व ईसा के लगभग सैल्यूकस का दूत मेगस्थनीज़ चंद्रगुप्त के दरबार में आया। उस समय चंद्रगुप्त की राज्यसभा की दशा का सबसे अच्छा प्रमाण इस यूनानी दूत के लेख हैं जिसमें केवल चंद्रगुप्त की सभा का चित्र ही नहीं, बल्कि साधारणतः सामाजिक, नैतिक, धार्मिक अन्य दशा का भी चित्र खींचा है। कौन भारतवासी है जो मेगस्थनीज़ के लेख को पढ़कर अपने पूर्वजों की सभ्यता और आचारिक महत्व पर अभिमान करने से शेष रह सकता है और उनके उस समय के महत्व को अपनी वर्तमान अवनति से समता करके शोक और दुःख के सागर में न डूबे।

चन्द्रगुप्त के शासन के विषय में यूरोपियन पुरातत्वों के विचार

चंद्रगुप्त के राज्य के विषय में अनेक इतिहास लेखकों का यह विचार है कि उसने अपने देश को अन्य जाति के शासन से स्वतंत्र किया, किंतु स्वयं वह बहुत अन्यायी था और उसकी कूटनीति कठोर थी। मेगस्थनीज़ के लेख से इस प्रकार का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता (और केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया में महाराज चंद्रगुप्त के वर्णन के लेखक ने भी यही विचार प्रकट किये हैं) किन्तु सबसे अच्छा प्रमाण हमारे दर्शकों के लिये वे वृत्तांत हैं जो मेगस्थनीज़ ने

लिख कर छोड़ दिये हैं और जिनका हम संक्षेप रूप से नीचे वर्णन करेंगे। इस वर्णन की चर्चा इस पुस्तक से अलग समझी जाती है। यदि हमको विश्वास न होता कि महाराज अशोक के समय तक भारत के नैतिक प्रबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, इस परिवर्तन का कोई प्रमाण नहीं है, तो महाराज अशोक का ४० वर्षीय रामराज्य इस विषय का पक्का प्रमाण है कि उसके पितामह ने चाणक्य ऋषि की सहायता से जो नैतिक प्रबन्ध भारत का बाँधा था, वह अशोक के समय तक बिना न्यूनाधिक स्थायी रहा और उस प्रबंध ने अशोक को अपने धार्मिक प्रचार-राज्य में बड़ी सहायता दी।

२

मौर्य्य वंश का शासन प्रबन्ध

मौर्य्यवंश के राज-प्रबन्ध के वृत्तान्त दो प्रकार से ज्ञात हो सकते हैं। एक कौटिल्य के अर्थशास्त्र से जो उस समय का लिखा है दूसरे यूनानी दूतों और इतिहास लेखकों के लेखों द्वारा। यह अन्तिम प्रमाण बिल्कुल बिना किसी पक्षपात के और अत्यन्त विश्वसनीय है।

राजा की पदवी—

सबसे प्रथम हम उन पदवियों का वर्णन करेंगे जिनसे सम्राट् अशोक और किसी श्रेणी तक उसके पिता पितामह साहित्य में

प्रसिद्ध हैं, क्योंकि उनकी पदवियों से भी एक सीमा तक उस समय की ऐश्वर्यता का पता लगता है।

अशोक को उस समय के लेखकों ने साधारणतः दो पदवियों से स्मरण किया है। एक "देवानाम् प्रिय" अर्थात् देवताओं का प्रिय और दूसरा "प्रियदर्शी" अर्थात् सुन्दर चाल वाला। चन्द्रगुप्त की पदवी प्रियदर्शन अर्थात् सुन्दर रूप वाला। अङ्गरेज़ इतिहास लेखक वेन्सन्ट स्मिथ इन पदवियों को राजा शब्द के साथ सम्मिलित करके अशोक की पूर्णतः पदवी पर यह नियत करता है। His sacred and gracious majesty the king यानी "श्रेष्ठ और पवित्र राजा" मेरे विचार से यह अनुवाद असली शब्दों के भावों को उद्धृत नहीं करता। शब्द Sacred (पवित्र) और gracious (दयालु अथवा श्रेष्ठ) से जो भाव टपकता है वह संस्कृत के मुख्य शब्दों के भाव से पृथक है। जो पुरुष देवताओं को प्रिय हो वह जनता की दृष्टि में चाहे पवित्र आत्मा हो किन्तु उसको स्वयं पवित्रात्मा कहना उचित नहीं। "पवित्रात्मा" शब्द तो देवताओं के लिये या धार्म्मिक शिक्षकों के लिये ही शोभा देता है। राजा चाहे धार्मिक नेता भी हो किन्तु आर्य्यों ने कदापि उसको "पवित्रात्मा" नहीं कहा। साधारणतः धर्मात्मा राजाओं को राजर्षि कहकर पुकारा गया है किन्तु कुछ ऐसे क्षत्री राजा हुये हैं जिन्होंने 'ब्रह्मर्षि' की पदवी पाई है। ऐसा शब्द इन राजाओं के निमित्त प्रयोग नहीं किया गया, जैसे कभी-कभी किसी राजा को किसी संस्कृत ज्ञाता ने "भगवान्" के शब्द से स्मरण नहीं किया, बल्कि

"भगवान्" शब्द आचार्यों के प्रति प्रयोग किया गया है। इङ्गलिस्तान में और अन्य यूरोपियन देशों में राज्यनियमानुसार "चर्च" यानी धार्मिक श्रेष्ठ कर्म्मचारी समझे गये हैं, जैसे इङ्गलिस्तान के राजा को "चर्च आफ़ इङ्गलैण्ड" इङ्गलैण्ड का राजा या प्रधान हाकिम माना जाता है किन्तु भारत में कभी किसी राजा को यह पदवी नहीं दी गई। राजाओं ने धर्म्म का प्रचार किया और धार्मिक उन्नति में वहुत कुछ भाग लिया, किन्तु उससे कभी उनको "चर्च" का सभापति अथवा स्वामी या आचार्य्य नहीं माना गया और मेरे विचार में इस बात के लिये कोई आधार नहीं कि सम्राट् अशोक अपने को बौद्ध चर्च अथवा बौद्ध धर्म्म का पोप समझते थे। वास्तव रूप से तो भारत में धर्म्म कभी पूरे यूरोपियन अर्थों में State-church अथवा राज्यधर्म्म नहीं हुआ। 'देवानांप्रिय' एक प्रिय शब्द है जिससे प्रियता अथवा प्रेम की झलक आती है। न कि पवित्रता या "पवित्रात्मा" से उसका अनुवाद करना शब्द की सुन्दरता और उसके गूढ़त्व को बिगाड़ना है। इसी प्रकार "प्रियदर्शी" अथवा "प्रिय दर्शन" का अनुवाद भी (Gracious) कुछ बहुत ठीक नहीं। यह इस प्रकार विवादग्रस्त नहीं है जैसा कि प्रथम का कहा हुआ "प्रिय" शब्द की मधुरता उन अङ्गरेजी शब्दों से प्रकट नहीं होती और Majesty की समता का तो कोई शब्द भी इस पदवी में वर्तमान नहीं है। इस कारण हमको वेन्सन्ट स्मिथ का अनुवाद पसन्द नहीं और हम अशोक के लिये यह पदवी पसन्द नहीं करते जो मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ ने अङ्गरेजी शब्दों में उद्धृत

किया है। हमारे लिये अशोक सर्वदा "देवानाम् प्रिय" या "प्रिय दर्शी" रहेगा।

राजा के अधिकार—

हिंदूशास्त्रों के अनुसार कोई राजा स्वतंत्र न था। महात्मा कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस बात को स्पष्ट कर दिया है। यदि उस समय राज्य प्रदेशों में पार्लियामेन्ट की प्रथा न थी तौ भी राजा के अधिकार अधिकांश प्रादेशिक नियमों से मिलते थे। वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है:—

The Imperial Government was an absolute outocracy in which the king's will was supreme.

(अनुवाद) " राज्य गवर्नमेन्ट एक पूर्णतः स्वतंत्र शासन थी, जिसमें राजा की इच्छानुसार काट छाँट होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में और हिन्दुओं के दूसरे नीतिशास्त्र में स्पष्ट लिखा है कि राजा के अधिकार परिमित हैं; उसका कर्त्तव्य है कि मंत्रियों की सलाह पर कार्य्य करे और धर्म्मशास्त्र के अनुसार चले। यह भी स्पष्ट लिखा है कि जो राजा मन्त्रियों की राय के विरुद्ध चले और धर्म्मशास्त्र के नियमों का उल्लंघन करे उसको गद्दी से उतार देना चाहिये। यहाँ तक कि उसको मृत्यु का दण्ड तक भी उचित समझा है। कौटिल्य और अन्य शास्त्रकारों ने मंत्री-सभा, उनकी संख्या, उनके अधिकार और उनके नियम के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से शिक्षा दी है। जिसका वर्णन हमने अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत" (भारत का इतिहास प्रथम भाग) में किया है। हमारा यह

कहना नहीं है कि सारे हिन्दू राजा इस परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे सम्भव है कि अधिक संख्या उत्तीर्ण न हो किन्तु तो भी अच्छे राजा उन नियमों पर कार्य करने का उद्योग करते थे और मुझे विश्वास है कि मौर्य्यवंश के प्रथम तीन राजा इस उद्देश्य से नैतिक राजा समझना चाहिये। जैसे कि केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया के लेखक ने हिंदू राजाओं के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किये हैं।

In the monarchical the king controls the whole administration. Neverthless the Indian king is no Sultan with the sole obligation of satisfying his personal caprice. It is a guardian of the social (including the domestic and religious order) and defence against anarchical oppression that the king is entitled to the reverence failing to perform this duty he takes upon himself a corresponding share of the national sin. Educated in this precepts among a moralising people he would have been more than humar had he escaped the obsession of this conception of his duties.

"राज्य के भीतर राजा सारे प्रदेशों की देख भाल करता × × × × × भारतीय राजा इस प्रकार का राजा नहीं है कि जो उसके जी में आवे सो करे × × × × × × × उसको भूमिकर का अधिकार इसी कारण से होता है कि वह

जातीय प्रबन्ध की रक्षा करता है (जिसमें धर्म और कुल मर्य्यादा भी सम्मिलित है) और (अपने देश व प्रजा को) कुप्रबन्ध से उत्पन्न होने वाले अत्याचारों से रक्षा करता रहे। यदि इन कर्तव्यों के पालन करने में त्रुटि करे तो वह जातीय पाप का भागी होता है। एक सभ्य जाति में जिन राजाओं को इन नियमों में शिक्षा दी जावे उनके लिये असम्भव है। (उनकी सभ्यता से पृथक् है) कि वह इन कर्त्तव्यों के भार को अपने कर्तव्य से पृथक समझ सकें।" अच्छा होता कि इन शब्दों का लेखक यह जो बढ़ा देता कि अपने कर्त्तव्य की पूर्णता से उपेक्षा करने की दशा में राजा अपने आपको दण्ड के योग्य भी बना लेता था और प्रजा को अपनी राज्यसभा अथवा सारी प्रजा के स्थानापन्न की समिति के द्वारा उसको दण्ड देने का भी (जिनमें गद्दी से उतारना अथवा मृत्यु भी सम्मिलित थी) अधिकार था। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दूशास्त्र के अनुसार हिन्दू राजाओं को कभी यूरोपियन अर्थों में ईश्वरीय अधिष्ठाता अथवा ईश्वर का सहायक नहीं कहा गया और नियमानुसार किसी भारतीय राजा को यह अधिकार न था। वह यह समझे या कहे कि मेरी आज्ञा नीति है और उस पर किसी को आनाकानी नहीं। इङ्गलिस्तान में चार्ल्स ने और फ्रांस में लुइस ने यह प्रतिज्ञा की। किन्तु भारत में किसी सम्राट् ने यह नहीं किया और हमारे इस वर्णन का समर्थन अधिकांश रामायण महाभारतादि पुस्तकों से होता आया है। मैंने बहुधा विचारहीन और धर्म्म से अनभिज्ञ व्यक्तियों को यह कहते हुए सुना है

कि राजा परमेश्वर रूप है। इसलिये उसके अधिकार और उसकी आज्ञाओं में आनाकानी करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु यह विश्वास हिन्दूशास्त्रों का केवल भ्रम और भूल मात्र है आर्य्य ग्रन्थों में बहुधा पिता और गुरु को भी परमेश्वर का रूप बताया गया है। और अनेक अन्य पुरुषों के लिये भी यह शब्द प्रयोग किया गया है। यह केवल कवि का काव्य है। इसका अर्थ इससे अधिक नहीं कि जिस प्रकार परमेश्वर हमारा रक्षक, माता, पिता, गुरु और पथदर्शक है उसी प्रकार राजा भी है किन्तु साथ ही यह भी लिख दिया है कि राजा अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करे और अन्याय करे तो केवल उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन ही न करना चाहिये, बल्कि वह दण्ड का भागी भी होता है। क्या! परमेश्वर के निमित्त भी ऐसा कहा जा सकता है? कदापि नहीं। बस यह केवल शिष्टाचारी और स्वार्थरत पुरुषों का चलाया हुआ ढकोसला है। हिन्दूशास्त्रों में राजा के कर्त्तव्य को इस स्पष्टता के साथ वर्णन किया है। और उनके जीवन की दिनचर्य्या ऐसी पूर्ण बना दिया है कि अन्य राज्यों के यात्रियों को चन्द्रगुप्त और अशोक के परिश्रम और विलीनता पर आश्चर्य आता था। चन्द्रगुप्त के प्रति दिन के कार्य्य का पूरा चित्र हमको अर्थशास्त्र में और यूनानी लेखकों के लेखों में मिलता है। जिसको दर्शक हमारे इतिहास भारत में देख लें।

सभा के मंत्री—

मौर्य्य राज्य का सारा प्रबन्ध सभा के महामान्य के अधिकार

में था जिसमें चार मुख्य सभासद थे। १—दीवान अथवा प्रधान मंत्री। २—पुरोहित। ३—सेनापति। ४—युवराज। इस सभा के लिये अङ्गरेज इतिहास लेखकों ने अन्तरङ्ग कमेटी (Inner cabinet) का शब्द प्रयोग किया है। जैसा युद्ध काल में इङ्गलिस्तान में स्थापित हुई थी, किन्तु इसके अतिरिक्त एक और सभा मंत्री-मण्डल थी, जिसमें प्रत्येक विभाग का प्रधानाध्यक्ष सम्मिलित था। इन प्रधानाध्यक्षों के नाम से उनके कर्तव्य भी ज्ञात हो जाते हैं।

१—समाहर्तृ, जिसका अनुवाद डाक्टर टाम्स ने अन्तरङ्ग* मन्त्री और माल मन्त्री से किया है।

२—सन्निधातृ, मन्त्री राजगीरी † विभाग

३—प्रदेष्टृ मन्त्री, प्रबन्धक

४—प्रशास्तृ मन्त्री, पत्र-व्यवहार

५—दौवारिक, सरदार राजभवन अथवा चेम्बरलैन

६—आन्तरवशिक-सर्दार, बाडीगार्ड

इसके अतिरिक्त अन्य विभाग भी पृथक-पृथक थे, जिनमें से प्रायशः मन्त्री-सभा में सम्मिलित किया जाता था। जैसे प्रधान कोषाध्यक्ष, प्रधान निरीक्षक (आडीटर जनरल या एकाउन्टेंट जनरल) लेखाविभाग बहुत पूर्ण था। इसमें प्रचलित व्यय, स्थायी व्यय,

---

* Minister of the Interior and chancellor of the Exchequer.

† Public Works.

संयोगात्मक-व्यय और अन्य प्रकार के व्यय का ब्यौरा लिपिबद्ध था और रीति-अनुसार उनका निरीक्षण होता था। राज्य का वार्षिक लेखा निरीक्षण-मन्त्री के पश्चात् सभा के सम्मुख आता था। राज्य-विभाग के भिन्न-भिन्न सभासदों के वेतन नियत थे। खानों और खानिज पदार्थों के लिये एक विभाग विशेष था। सारांश आय व्यय का कोई विभाग ऐसा न था जिसका प्रबन्ध अपूर्ण हो। सरकारी सम्पदा का रजिस्टर पूर्ण रक्खा जाता था। एक विभाग मनुष्य-गणना और जन्म-मृत्यु का भी था।

सूबों का प्रबन्ध भिन्न-भिन्न वायसराय या राज्य के सहायक करते थे। अशोक और चन्द्रगुप्त के समय में कम से कम चार वायसरायों का वर्णन आया है। जो साधारणतः राजपुत्र ही हुआ करते थे। उनमें से एक तक्षशिला का वायसराय था, जिसके अधीन पञ्जाब व कश्मीर था और जिसके निरीक्षण में हिरात, काबुल, ग़ज़नी, बिलोचिस्तान और मकरान थे। मिस्टर वेन्सपट की सम्मति यह है कि कदाचित अफ़ग़ानिस्तान का वाइसराय पृथक था जिसका वर्णन नहीं किया। उज्जैन के वाइसराय के अधीन मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र था। तोसलि के वाइसराय के अधीन कलिङ्ग की गवर्नमेन्ट थी। एक वाइसराय सुवर्ण नगरी * का था। जिसका केंद्रस्थान कदाचित दक्षिण में था।

वाइसराय के नीचे अन्य छोटे सूबों के अधिकारी थे। और उनके अधीन प्रादेशिक अथवा जिले थे और उनके अधीन अन्य

* खोज से अभी सुवर्ण नगरी के स्थान का निर्णय नहीं हुआ।

कर्मचारी थे। स्मिथ लिखता है "सारे प्रमाणों द्वारा यह ज्ञात होता है कि मूल राज्य का प्रबन्ध अत्यन्त ही उत्तम और पूर्ण था।* गाँवों में अधिकांश लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट थी। गाँवों के अधिकारियों को ग्रामिणी कहते थे। प्रत्येक गाँव में निवासियों के परस्पर झगड़े के निर्णय, स्वच्छता और शिक्षा इत्यादि के लिये एक पञ्चायत होती थी, जिसमें प्रत्येक भाग के स्थानापन्न लिये जाते थे। प्रत्येक पांच अथवा दस गाँव पर अधिकारी स्थानिक नाम से नियत था, जिनके अधीन माल और पुलिस के कर्म्मचारी प्रबन्ध के निमित्त थे और जो लिखित आज्ञाओं में छोटे सूबों के गवर्नरों अथवा अधिकारियों को राजोफ लिखा है। जिनके अधीन क्षेत्र-मिति प्रबन्ध और सिंचाई का विभाग था। यह सब विभाग इम्पीरियल मंत्रियों के अधीन थे जिनमें से सिंचाई के मंत्री का वर्णन मेगस्थनीज़ ने वहुत स्पष्ट और गुणगान करते हुये लिखा है। गिरनार के स्थान में एक शिला-लेख "रुद्रदामन" के नाम से सिंचाई की सेवा का विवरण दिया गया। गिरनार के स्थान पर जो झील थी उसको चन्द्रगुप्त के समय में बाँध लगाकर उससे भिन्न राज्य नाले और नालियां पानी पहुँचाने के लिये बहाई गईं। यह सूवा राजधानी से एक हजार मील से भी अधिक दूरी पर था जिससे ज्ञात होता है कि सारे साम्राज्य में किस सुगमता के साथ सिंचाई का कार्य हो रहा था।

* Highly organised for purposes of both recard and excutive action. (Asoka 3rd Ed. P. 95)

नगरों का कार्य कुछ कमेटियों के अधीन था और सारे नगर के प्रबन्ध के उत्तराधिकारी इन सब-कमेटियों के प्रधानाधिपति थे प्रत्येक सब कमेटी के ५ सभासद थे। उनके कर्त्तव्य निम्नलिखित थे।

(१) सारे कारखानों का निरीक्षण।

(२) यात्रियों की रक्षा, सरायों और धर्म्मशालाओं की परीक्षा, परदेशी रोगियों की दवा और परदेशियों की निगरानी।

(३) जन्म और मरण का लेखा।

(४) मण्डियों की देख भाल।

(५) सामग्री जो विक्रय के लिये हो। और क्रय विक्रय का प्रबन्ध देखना।

(६) क्रय विक्रय की सामग्री पर कर लेना १० प्रतिशत बताया जाता है।

नगर की स्वच्छता, बन्दरगाहों का प्रबन्ध व सरकारी मन्दिरों की देख भाल और क्रय विक्रय के मूल्य का भार सारी कमेटी पर था।

हमको ज्ञात है कि अशोक के समय में रोगी मनुष्यों और रोगी पशुओं की चिकित्सा और उनकी रखवाली के लिये एक विभाग था। और दरिद्र अनाथों की सहायता उचित रीति से से की जाती थी। और एक अधिष्ठाता प्रकृति के स्वभाव का निरीक्षण करने के लिये भी नियत था। इस मूल प्रबन्ध से समता की जाय तो ज्ञात होगा कि मौर्य्य वंश का प्रबन्ध किसी

दशा में ब्रिटिश प्रबन्ध से निर्बल, पीछे या अन्य जाति के न थे, बल्कि इसी देश के थे। इसलिये वे देश की दशा और हानि लाभ का पूर्ण ध्यान रखते थे। और उनकी आय से सारी जाति, समुदाय और देश को कोई धन सम्बन्धी हानि न पहुँचती थी।

क्षेत्र प्रबन्ध अथवा भूमि विभाग—

भूमि तीन प्रकार के भागों में बाँटी गई थी। (१) वन-भूमि (२) चराई-भूमि (३) कृषि-भूमि। वन-भूमि का विभाग पृथक ही था। चराई की भूमि विस्तृत भी थी और छोटे माप में भी एक ग्राम में परिमित थीं। कृषि-भूमि में कृषकों को नियमित अधिकार था! ऐसा ज्ञात होता है कि मालिकान, मजारआन मौरूसी व गैर मौरूसी की कोई पहचान न थी। प्रत्येक कृषक अपने क्षेत्रफल का कृषक या स्वामी कुछ भी कहो सीधे गवर्नमेण्ट के अधीन थे। गवर्नमेण्ट को आय का छठा भाग लेने का अधिकार था। पानी का मूल्य पृथक ही देना पड़ता था। कभी-कभी दोनों कर सम्मिलित लिये जाते थे। जैसे पैदावार का तृतीयांश अथवा चतुर्थांश लिया जाता था। कुछ लेखकों की सम्मति में कृषकों की संतान को अधिकार प्राप्त न था। किन्तु हम नहीं कह सकते कि यह सम्मति केवल विश्वास ही पर निर्भर है अथवा इसके लिये स्पष्ट प्रमाण भी है।

नीति विभाग अथवा न्यायालय—

नीति के चार द्वार थे (१) धर्म्म शास्त्र की आज्ञा (२) व्यवहार (३) चरित्र प्रथा और (४) राज्यशासन।

न्याय नीति में विवाह, दहेज, वेरासत, अधिकार, मकानियत और पड़ोस (जिसमें सुभीते की अधिकार-नीति सम्मिलित होगी) ऋण, धरोहर, सेवकों का स्वामित्व अथवा दासों का सम्बन्ध स्वामियों से, मुआहिदा, मजदूरी, क्रय, विक्रय, कठोरता, गाली, गलौज द्यूतक्रीड़ा और स्फुट भी सम्मिलित थे। न्यायालय में प्रतिदिन नियमानुसार न्याय होता था। प्रत्येक न्यायालय में ६ न्यायाधीश रहते थे—तीन नीतिज्ञ और तीन अन्य पुरुष रहते थे। अधिकांश निपटारे पंचायत द्वारा होते थे, न्याय की नीतियाँ व्योरे-वार नियत थीं, जिसमें प्रेषित-पत्र उत्तर-प्रेषित पत्र, उत्तरोत्तर और अन्य विषय के सम्बन्ध में आधुनिक न्यायनीति की भाँति नियत की गई थी। और प्रमाण के लिये भी नीतियाँ थीं। अन्तिम न्याय-अपील में स्वयं महाराज प्रतिदिन प्रधान होते थे। उनकी अनुपस्थिति में कोई मंत्री प्रधानापन्न होता था।

अपराध और फौजदारी की नीति—

वर्ण धर्म्म सम्बन्धी अपराध का निर्णय जाति-समितियों के द्वारा होता था जिनको परिषद् कहा जाता था। अधिकांश अभियोगों का निर्णय शपथ और गंगाजल उठाने पर होता था।

अपराधों में हत्या, चोरी, डाका, सेंध मारना, विष देना, अपराध मुद्रानिर्माण, धन-धान्य की हानि, धाराओं की उपेक्षा अपराध बाट-सम्बन्धी, यंत्र-परिमाण, विद्रोह, सरकारी कर्मचारियों और पुलिस के अध्यक्षों के अपराध।

दण्डों में जुर्माना, कारागार*, बेंत लगाना, हाथ पैर का काट लेना और मृत्यु (कष्ट से अथवा कष्ट रहित) सम्मिलित थी।

राजनैतिक अपराध और मान सम्बन्धी अपराध के लिये कठोर दण्ड दिये जाते थे।

दण्डों के सम्बन्ध में मौर्य्यवंश की नीतियां बड़ी कठोर और अमानुषिक थीं और यूरोप के स्टैण्डर्ड से अत्यन्त गिरी थीं। सो यूरोप का यह स्टैण्डर्ड भी एक शताब्दी की नवीन झलक है। उससे पूर्व अमेरिका और यूरोप में भी वैसे ही पाशविक दण्ड दिये जाते थे।

अशोक के राज्य में यह बड़ी भारी त्रुटि है कि उसने मृत्यु के दण्ड को नहीं उठाया। वरंच उसके पश्चात् समुद्रगुप्त और कई अन्य हिन्दू राजाओं ने मृत्यु के दण्ड को तिलाञ्जलि दे दी थी। राज जन्म-तिथि की वर्षगांठ पर बहुत से बन्दी छोड़ दिये जाते थे।

युद्ध विभाग और सेना—

युद्ध-विभाग की भी छः शाखायें थीं और उनका प्रबन्ध छः सभाओं (बोर्डों) के आधीन था। प्रथम जल-विभाग, द्वितीय बोझ ढोने वाले और कमसरियट, तृतीय पैदल सेना विभाग, चतुर्थ सवार विभाग, पाँचवाँ युद्ध गाड़ियाँ, छटवाँ हाथी विभाग।

वेन्सण्ट स्मिथ और अन्य तत्ववेत्ताओं की राय है कि मौर्य्य वंश के समय में जलयान दो प्रकार के थे। भीतरी और

* अर्थ शास्त्र में कैद की बहुत कम आज्ञायें हैं और अधिक आज्ञायें जुर्माने की हैं।

बाहरी, यानी नदियों में भी जलयान चलते थे और खुले समुद्र में भी। सामुद्रिक यात्रा के विरुद्ध जो नियम पिछले शास्त्रकारों ने बनाये हैं, उसका कोई चिन्ह उस समय न था।

चाणक्य नीति में समुद्र पर यात्रा करने वाले जलयानों के लिये विशेष करके संकेत किया गया है।

ये जलयान व्यापार करने के लिये बनाये और रखे जाते थे। इसका ब्यौरा बाबू राधाकुमुद मुकुर्जी की "भारतीय जलयान इतिहास" में देखना चाहिये। चन्द्रगुप्त की सेना में छः लाख पैदल सिपाही, तीस हजार सवार, नौ हजार हाथी और एक वृहद् संख्या युद्ध-गाड़ियों की थी। उस समय गाड़ियों में बैठने की प्रथा थी। यह सारी सेना हर प्रकार की सामग्री से सुसज्जित रहती थी। उसको इतिहास लेखकों ने Efficient याने हर प्रकार से योग्य बताया है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि अङ्गरेजी राज्य में भारतीय सेना की संख्या चन्द्रगुप्त की सेना से बहुत ही कम है तो भी भारतवासी विरोध करते हैं। इस विरोध के दो कारण हैं प्रथम तो यह कि इस सेना का तीसरा भाग अन्य जाति से पूर्ण है और उनपर जो व्यय होता है वह भारतीय सेना विभाग से कहीं अधिक है। द्वितीय यह कि सारे अधिकार रखने वाले प्रधान भी अङ्गरेज हैं। तृतीय यह कि उस समय की दशा के अनुसार उतनी वृहद् सेना की आवश्यकता भी थी।

शस्त्र-विद्या—

शस्त्र-कला में भी हिन्दुओं ने बड़ी योग्यता प्राप्त की थी

और वे बड़ी बुद्धिमानी से चढ़ाई व बचाव का प्रबन्ध करते थे। दुर्गों की बनावट में उन सारी आवश्यकताओं का विचार रक्खा जाता था जिसका विचार आजकल भी किया जाता है। युद्ध सामग्री में अन्य शस्त्रों के अतिरिक्त पशुओं से चलने वाले और बिना पशुओं की सहायता के चलने वाले इञ्जन भी थे। खान खोदना और Counter mining वैरी की खानों में पानी भर देने की कला से भी वे विज्ञ थे।

आचार युद्ध—

युद्ध के सदाचार में भारतवासी संसार की सारी जातियों से आगे बढ़े हुए हैं। आज तक संसार ने इस प्रकार का सदाचार युद्ध में नहीं दिखलाया। घायल अथवा शस्त्रहीन पर शस्त्र चलाना अथवा जिसके हाथ से शस्त्र छूट गये हों अथवा जिसने युद्ध से पीठ दिखाई हो अथवा जिसने शरण ले ली हो उसपर चढ़ाई करना अथवा उसको कष्ट पहुँचाना महान् पाप समझा जाता था। संसार के इतिहास में कदाचित भारतवर्ष ही यह दृश्य प्रगट करता है कि बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ और युद्ध हों किन्तु विपक्षी में से कोई कृषकों को हानि न पहुँचाये और उनकी कृषी न नष्ट करे और कृषक अपना कार्य निर्विघ्न और निर्भय करता चला जावे। आचार युद्ध पर मैंने अपनी पुस्तक "प्राचीन-भारत" में स्पष्ट रूप से लिखा है। पाठक वहाँ देख लें। इस संक्षेप वर्णन से पाठकों को ज्ञात होगा कि मौर्य्यवंश के समय में हिन्दुओं का नैतिक प्रबन्ध कैसा पूर्ण और नियमानुकूल था। गाँवों, नगरों, प्रदेशों और अधीन

राजाओं का प्रबन्ध प्रत्येक दशा में समुचित था। बाहरी शक्तियों से भी मित्रता का सम्बन्ध था। उनके दूत और हरकारे हिन्दू राजाओं की सभाओं में रहते थे और हिन्दू राजा के दूत और हरकारे उनके दरबार में जाते थे। हिन्दुओं की डिप्लोमेसी आजकल के यूरोपियन डिप्लोमेसी से किसी बात में पीछे न थी। जो धूर्तता और कूटनीतियां आज कल के यूरोपियन (Diplomats) यानी दूत, हरकारे और नीतिज्ञ करते हैं। इस सब का निर्णय हिन्दू शास्त्रों में दिया गया है। कौटिल्य यानी चाणक्य की नीतियाँ इस विषय में अनुपम हैं। किसी अन्य हिन्दू शास्त्रकार ने इतने ब्योरे और इतनी स्पष्टता से इस विषय को नहीं लिखा जैसा कि चाणक्य ऋषि ने लिखा है* यूरोप निवासी इन नीतियों को "मेकावलियन" कहते हैं। किन्तु यदि उनके कार्यक्रमों का ब्यौरा और उनकी धूर्तता और कूटनीतियों का इतिहास देखा जावे ‡ तो उनके

---

* डिप्लोमेसी की जो ब्योरेवार नीतियाँ अर्थशास्त्र में लिखी हैं वे कई दशा में अत्यन्त घृणित हैं किन्तु मुख्य बात यह है कि कार्य और प्रथा से डिप्लोमेसी स्वयं ही एक घृणित कार्य है। गुप्तचर के विषय में भी अर्थ शास्त्र के नियम हमको अत्यन्त अनुचित ज्ञात होते हैं। यह स्मरण रहे कि केवल अर्थशास्त्र से ही हिन्दू नीति का ज्ञान नहीं हो सकता। इस विषय में अन्य शास्त्रों के लेख देखने योग्य हैं। अर्थ शास्त्र केवल एक समय के और एक श्रेणी के शास्त्रकारों के विचार को प्रगट करता है, हम इस विषय पर स्पष्ट रूप से अपनी भविष्य की पुस्तक में लिखेंगे।

‡ एक पण्डित अङ्गरेज लेखक मिस्टर वलेन्स अपनी पेलिटिकल आदर्श

वर्णन किये हुये राजनैतिक नियम केवल कल्पित अथवा लिखित व मौखिक ही रह जाते हैं। तिसपर हिन्दू शास्त्र भी उन उच्च और पवित्र नियमों से वंचित नहीं हैं जिनको (Righteous Politics) कहा जावे यानी ऐसी राजनीति जिसकी नींव न्याय, धर्म और

नाम की पुस्तक (Political Ideals) मुद्रित आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस १९१९ ई० तीसरी बार के पृष्ठ १४३ व १४४ पर निम्नलिखित विचार मिक्यावली के नियम के विषय में प्रगट किया है:—

It is sufficient to note that his treatise (i. e. the principle of Machiavelli) was not intended to deal with what we should call morality. For good and evil had for him no meaning in the realm of politics. The principle is, on the other hand, a subtle analysis of the actual principles governing Italian politics duriug the 15 th,& 16th centuries and had the author considered the policy of princes in England or Germany of the same date his conclusions would not have been different.

अनुवाद—यह लिखना पर्याप्त है कि मेक्यावली की पुस्तक का अभिप्राय उस विषय में लिखने का न था जिसे हम नैतिक आचरण कहते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में गुण और दोष उसकी दृष्टि में व्यर्थ थे। उस पुस्तक में उन सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है जिसके द्वारा पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में इटली में राजनीति के सिद्धान्तों का पालन होता था। और यदि लेखक ने उसी साल के इङ्गलैंड तथा फ्रान्स के राजाओं के

सत्यता पर हो। सारांश किसी प्रकार मौर्य्यवंश का प्रबन्ध वर्तमान समुचित और श्रेष्ठ युरोपियन प्रबन्ध से कम न था। हाँ उसके समय में पार्लियामेण्ट या गवर्नमेण्ट न थी। व्यापार और शिल्प में भी भारतवर्ष उन्नति के शिखर पर था। व्यापारी-समूह और अन्य उद्यम वालों की अपनी पञ्चायतें और सभायें थीं जिनको गवर्नमेण्ट भी स्वीकार करती थी और जो अपने भीतरी झगड़ों का निपटारा करती थीं और माल के खरे खोटे की उत्तरदायिनी थीं। यह सभायें और पञ्चायतें वर्तमान काल में (Trade guild) या (Trade union) के नाम से प्रसिद्ध हैं। बहुधा शिल्पकारों और उद्यमियों को ऐसी प्रतिष्ठा से देखा जाता था कि उनको कष्ट अथवा हानि पहुँचाना महान् पाप अथवा महा अपराध था जिसके लिये कड़ा दण्ड नियत था।

हिन्दू शास्त्रों में ग्राम और नगर निर्माण करने की जो रीतियाँ नियत की गई हैं और जो चित्र नगरों के और राजधानियों के दिये गये हैं उनमें शिल्पकारियों की आबादी ब्राह्मणों और राजमंत्रियों के साथ अथवा उनके सन्निकट रक्खी गई है।

व्यापार की उन्नति, सड़कों पर यात्रा करने की सुविधाओं और कर इत्यादि पर निर्भर है। इस विषय में हम मौर्य्यवंश के प्रबन्ध को पूर्ण पाते हैं। सड़कों के निर्माण कराने और अच्छी दशा में रखने के लिये एक मुख्य विभाग था तथा सड़कों पर रक्षित

राजनीतिक सिद्धान्तों पर विचार किया होता तब भी उसका निश्चय वही होता।

प्रबन्ध और आराम भी था। महाराज अशोक ने इस विषय में जो विशेष उन्नति की उसका वर्णन आगे किया जावेगा। कर नियत करने और उगाहने में भी जहाँ तक उस समय की जानकारी सहायता देती है मौर्य्यवंश के नियम और रीति वर्तमान यूरोपियन गवर्नमेंट से अधिक कठोर न थे। यद्यपि चन्द्रगुप्त की गवर्नमेंट दूसरी हिन्दू गवर्नमेंटों के सम्मुख कठोर अवश्य थी।

हमने अभी तक चन्द्रगुप्त के पुलिस-विभाग का वर्णन नहीं किया। चन्द्रगुप्त का पुलिस-विभाग अत्यन्त पूर्ण और योग्य था उसका मुख्य कर्त्तव्य अपराधों का अवरोध करना तथा औरों की रक्षा करना था, ऐसा ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त का सी. आई. डी. विभाग पूर्ण और विश्वासपात्र था। संसार की प्रत्येक गवर्नमेंट को सी. आई. डी. की आवश्यकता है, चाहे राज-तन्त्र हो अथवा प्रजा-तन्त्र। अन्तर केवल इतना ही है कि सी० आई० डी० के कर्म्मचारी और अधिकारी किस प्रकार नियत किये जाते थे? और उनके क्या कर्त्तव्य थे? चाणक्य ऋषि ने इस विभाग के नियत करने के नियम बहुत विस्तीर्ण लिखे हैं, उन्होंने लिखा है कि सी० आई० डी० के अधिकारियों का आचरण बहुत उच्च होना चाहिये। और इस विभाग में अत्यन्त विश्वासपात्र और धर्मनिष्ट मनुष्य नियत करना चाहिये। यूनानी यात्रियों और दूतों ने चन्द्रगुप्त के सी० आई० डी० के विषय में जो विचार प्रगट किये हैं उससे ज्ञात होता है कि इस विषय में चाणक्य के नियमों पर पूर्णरीति से कार्य्य किया जाता था। उस समय की यह भी नीति थी कि यदि पुलिस चोरी

के धन की खोज न पावे तो जिस मनुष्य की चोरी हुई है उसकी हानि अपनी गाँठ से पूरी कर देवे।

मेगस्थनीज़ भी प्रमाण देता है कि चन्द्रगुप्त के समय में चोरी कार्य्य रूप में नहीं होती थी। चन्द्रगुप्त के सेना-गृह में जहाँ चार लाख जनता रहती थी किसी दिन भी चोरी का परिमाण थोड़े से रुपयों के अतिरिक्त अधिक न हुआ। * ।

मेगस्थनीज पाटलीपुत्र के विषय में विस्तार पूर्वक लिखता है। यह नगर ९॥ मील लम्बा और १२७० गज चौड़ा था उसके चारो ओर लकड़ी की चार दीवारी से बाहर एक खाई ६० फीट गहरी और ६०० फीट चौड़ी थी। दीवार में ६४ द्वार थे और ५७० बुर्ज थे। मध्य में राज भवन था जिसमें वाटिका नहरें, सघन वृक्ष, जलकुण्ड और जलाशय अधिकता से थे। यूनानी दूत के लेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त बड़े ठाट बाट से रहता था। सोने और चाँदी के बड़े बड़े पात्र उसके प्रयोग में थे।

---

* कौटिल्य ने जासूसी के बेशुमार महकमें मुकर्रर किये हैं और उनको जिन्दगी के हरेक शाख में बेअन्दाज दखल दिया है। जो निहायत काबिले एतराज है। मगर अभी इस शास्त्र की पूरी २ सही तवारीह (तफ्त्र: हाशिया सफ़ः ७७) नहीं हुई और किताब की अन्दरूनी शहादत से भी यह मालूम होता है कि इसमें किसी कदर तशरफ़ किया गया है। बहर-हाल किताब के वह मजामीन तो पूरी तरह से काबिल एतबार हैं जिनकी तसदीक़ मेगस्थनीज़ के बयानात व दीगर हिन्दूशास्त्रों से होती है। इस किताब पर अभी मजीद गौर व फ़िकर की जरूरत है।

स्नान करने के लिये ६ फीट लम्बे सोने के पात्र प्रयोग किये जाते थे। जब राजा सवार होता था तो पालकी में अथवा सुनहले वस्त्र से सुसज्जित हाथियों पर सवार होता था। चन्द्र का बाडी-गार्ड सुदृढ़ और सशस्त्र स्त्रियों का था। अकबर की भाँति उसको मृगया खेलने और जानवरों का युद्ध देखने की भी बड़ी चाव थी। उसके समय में घोड़े और गाड़ियों की दौड़ें भी होती थीं और वर्णन आया है कि उसके दरबार में नृत्य करने वाली स्त्रियाँ भी रहती थीं। महाराजा अशोक ने जैसा हम आगे लिखेंगे इन सब वस्तुओं को बिल्कुल बन्द कर दिया। राजसी ठाट बाट के सम्मुख यूनानी राजदूत के वर्णनानुसार जनता का जीवन बहुत साधारण था।

मौर्य्य वंश के राज्य प्रबन्ध का वर्णन बन्द करने से पूर्व हम एक शब्द उस समय की शिक्षा प्रणाली के विषय में कहना चाहते हैं। वर्तमान गवर्नमेण्ट शिक्षा-विभाग को अत्यन्त आवश्यक कहती है और वर्तमान जीवन-निर्वाह में यह विभाग अत्यन्त आवश्यक भी है। किन्तु हिन्दू गवर्नमेण्ट जनता की शिक्षा का भार न उठाती थीं और न उसमें भाग लेती थीं। इसके अतिरिक्त सबकी शिक्षा हो जाती थी। पुरुष स्त्री सब शिक्षित थे। और विद्या, विद्वता अपनी योग्यता पर थी। प्रत्येक हिन्दूशास्त्र में शिक्षा-विषय को अत्यन्त आवश्यक लिखा गया है। ब्रह्मचर्य्य शिक्षा और शिक्षा-प्रणाली के विषय में विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। शिक्षा-विभाग के सिवाय धर्म-विभाग भी था। चूंकि धर्म्म

में गवर्नमेण्ट का कोई अधिकार न था, अतः शिक्षा में भी गवर्नमेण्ट का कोई अधिकार न था। बौद्ध धर्म्म से पूर्व ब्राह्मण और ऋषियों के आश्रम और आर्य्यों के गृह-भवन ही जाति के शिक्षालय थे। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही दी जाती थी। उच्च शिक्षा आश्रमों और गुरुकुलों में दी जाती थी। प्रोफे-शनल * इण्डस्ट्रियल शिक्षा कार्य्यालयों में दी जाती थी और शिक्षा में गवर्नमेण्ट का कोई अधिकार न था। गवर्नमेण्ट का केवल यही एक कर्त्तव्य था कि उन आश्रमों के व्यय इत्यादि के निमित्त भूमि इत्यादि दे। उस समय के आचार्य्य किसी ऐसे नियमवद्ध शिक्षा प्रणाली के सीमावद्ध नहीं थे जो मशीन (यंत्र) की भाँति चलता है। और जिसमें प्रत्येक बच्चे को अपनी मनुष्यता और शिक्षक के कैरेक्टर से कोई सम्बन्ध नहीं। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, हिन्दू सभ्यता और हिन्दू विचार के विल्कुल विरुद्ध है। हिन्दू सभ्यता इस प्रकार की शिक्षा को नहीं मानती।

शिक्षा का भार साधारणतः सारी जाति पर था और वह भिन्न भिन्न प्रकार से स्थापित किया गया था। धर्म्म की सारी बातें इस भार के उत्तरदायित्व का समर्थक थीं। जिसके घर कोई ब्रह्मचारी अथवा शिक्षक चला जाता था वहाँ उसका आदर सत्कार देवताओं के समान होता था। ब्रह्मचारी का किसी गृहस्थ के द्वार से असन्तुष्ट चला जाना परिवार का अभाग्य और दुर्दशा समझी जाती थी। हिन्दू लिटरेचर इस प्रकार की कथाओं से भरा हुआ

---

* व्यावहारिक और शिल्पकला सम्बन्धी।

है कि किस प्रकार निर्धन और दरिद्र गृहस्थ भी कष्ट सहन कर उस कर्त्तव्य की पूर्ति करते थे। किसी ब्रह्मचारी का द्वार से खाली हाथ चला जाना ऐसा पाप समझा जाता था कि प्रत्येक गृहस्थ उससे काँपता था। वर्तमान यूरोपियन गवर्नमेण्टें उचित रीति से शिक्षा-विभाग को आवश्यक और जातीय उन्नति का मुख्य कारण समझती हैं। किन्तु हमारे विचार में यह सारा क्रम ग़लत है। क्योंकि (Mechanical) है यानी मशीन की भाँति चलता है। यह आवश्यक नहीं है कि हमारे लिये भी प्राचीन प्रणाली को प्रचलित करने में उद्योग किया जाय। वह शिक्षा-विधि उस जीवन-क्रम का आवश्यक अङ्ग था। अब उसका प्रचार करना मेरे विचार में भी असम्भव प्रतीत होता है।

३

उस समय की हिन्दू सभ्यता का चित्र

यूनानियों ने उस समय की हिन्दू सभ्यता का जो चित्र खींचा है, वह साधारणतः अत्यन्त रोचक और अभिमान योग्य है। हम संक्षेप रूप में उसको उदधृत करते हैं।

स्वास्थ्य

एक से अधिक यूनानियों ने हिन्दुओं के साधारण स्वास्थ्य का प्रमाण दिया है। नीरकस लिखता है कि हिन्दुओं को डाक्टरों की बहुत कम * आवश्यकता होती थी क्योंकि उनमें रोग बहुत

*RARE देखो केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया जिल्द अव्वल पृष्ठ ४०६ व ४०७।

कम थे और आश्चर्य-जनक सीमा तक रोगों से बचे रहते थे * और दीर्घजीवी होते थे।

भोजन

उनके साधारण स्वास्थ्य का कारण यह कहा गया है कि वे सादा भोजन करते थे। और मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे। यूनानी दूतों ने उनके जल-वायु की ऐसी प्रशंसा की है जिससे यह सिद्ध होता है कि वे अपने जीवन का अधिकांश खुली हवा में बिताते थे। और यूरोपियन लोगों की भाँति अधिकांश घर में नहीं रहते थे। इससे यह भाव नहीं है कि वे सुन्दर और हवादार भवन बनाना नहीं जानते थे। हिन्दू-गृहों और भवनों का जो वर्णन हिन्दू-शास्त्रों में आया है और जिसकी सत्यता निष्पक्ष प्रमाण से सिद्ध होती है उससे मालूम पड़ता है कि हिन्दुओं की राजगीरी की कला उच्च शिखर पर पहुँची थी। नीरकस लिखता है कि हिन्दू धार्मिक प्रथाओं में मदिरा का प्रयोग करते थे। जो चावल की बनी हुई होती थी। (जापान में चावल की शराब को साकी कहते हैं) नीरकस के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष यह नहीं लिखता कि वे धार्मिक प्रथाओं में मदिरा का प्रयोग करते थे। उनका साधारण भोजन चावल है। प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छा से अपने समय पर भोजन करता था। इकट्ठा बैठकर भोजन करने का कोई समय नहीं था। वे

---

* Singularly free from disease and long lived देखो केम्ब्रिज हिस्ट्री जि० १ पृ० १०८

शरीर मर्दन कराते थे मर्दन के लिये आबनूस के डण्डे (रूल) प्रयोग करते थे।

साधारण जीवन

मेगस्थनीज़ ने साधारण जनता की प्रथा और जीवन-यात्रा का वर्णन करते हुये उसकी साधारणता की बड़ी बड़ाई की है और लिखता है कि उनके जीवन में साधारण सज्जनता प्रधान अङ्ग था।

वस्त्र

नीरकस ने हिन्दुओं के वस्त्र का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि वे रानों तक एक प्रकार का अंगरखा * पहनते थे और दो अन्य वस्त्र से शरीर रक्षा रखते थे। एक माथे में लपेटते थे (पगड़ी) दूसरा कन्धों पर डालते थे (चादर अथवा दुपट्टा)। उनमें से जो धनी थे वह हाथी दाँत की मुर्कियां पहनते थे और दाढ़ी को अनेक प्रकार के रङ्गों से रङ्गते थे। कोई अत्यन्त स्वच्छ उज्ज्वल कोई काले तथा किर्मिज़ी, हरी अथवा ऊदी। गर्मी में छतरी † का प्रयोग करते थे। उज्वल चमड़े के कामदार जूते पहनते थे। एड़ी और तला ऊँचा रखते थे जिससे लम्बे ज्ञात हों।

---

* Tunic.

† कई स्वतन्त्र विचार वाले अङ्गरेजों का लिखना है कि भारत में छतरी का प्रयोग केवल राजा करते थे। मेगस्थनीज वे इस लेख में इस विचार में विरोध होता है और ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में छतरी की प्रथा सब में थी। ऐसे गर्म देशों में जहाँ वर्षा अधिकता से होती है छतरी का प्रयोग आवश्यक था।

मेगस्थनीज लिखता है कि सादापन रहने पर भी धनवान् स्वर्ण और रत्नों को प्रयोग में लाते और उनके गहने पहनते थे। कामदार मलमल का भी प्रयोग करते थे और अपने सिर पर छतरी लगाते और चमकीले रङ्गों के भी अभिभावक थे।

युद्ध के शस्त्र

नीरकस लिखता है कि युद्ध में तीर धनुष का प्रयोग करते थे। धनुष उनके बरावर लम्बा होता था। उसका एक सिरा भूमि पर रख कर बायें पैर से दबाते थे। और पीछे खींचते थे। उनके तीर छः फीट लम्बे होते थे। बायें हाथ में चमड़े के पतले लम्बे ढाल पकड़ते थे। दोधारी तलवार बाँधते थे।

सत्य-भाषण

प्राचीनकाल में जितने यूरोप निवासी भारत में पधारे वे सब हिन्दुओं की सत्यता और उनके विश्वास का अनुमोदन करते हैं। मेगस्थनीज * विशेष रूप से इसका समर्थन करता है और लिखता है कि उसके अनुभव में किसी भारतीय के असत्य बोलने का प्रमाण नहीं मिला उनमें मुकद्दमेबाजी ‡ नहीं होती और साधारणतः यह

---

* In the sphere of morals it is interesting to notice that the sallent characteristic of the Indian people seemed to this early European observer to be a high level of veracity and honesty (Cam. H. Ind. Voll. P. 413)

‡ They are not litigious.

बात उनके शुद्धाचरण का प्रमाण है। अधिकार अथवा धरोहर में न साक्षी की आवश्यकता होती थी न मुहर की, सबको एक दूसरे पर विश्वास था। उनके घर पर किसी प्रकार का पहरा नहीं होता। सिंध के विषय में एक यूनानी दूत ने लिखा है कि मारकाट और लड़ाई के अतिरिक्त यहाँ और किसी प्रकार का अभियोग नहीं होता था। यह बात लिखने योग्य है कि मुसलमानों की प्रथम चढ़ाई से लेकर लगभग आठ सौ वर्ष बाद तक जितने मुसलमान यात्री और पण्डित इस देश में आये और इस देश की रीति नीति के विषय में लेख लिखे उन्होंने भी हिन्दुओं के विश्वास, सत्यता, सादगी और दृढ़ प्रतिज्ञा की बड़ाई की है। हमने इन साक्षियों को मुसलमानी समय के इतिहास से जो हम लिख रहे हैं इकट्ठा किया है। इन दशाओं को वर्तमान दशाओं से समता करके प्रत्येक भारतवासी बहुत लज्जित होता है। तब वह विचारता है कि हमारा व्यक्तिगत और जातीय आचरण कितनी गिरी दशा में है। हमारा वर्तमान समय का अदालती आचार व्यवहार और मुक़द्दमेबाज़ी केवल अङ्गरेजी नीति और अङ्गरेजी अदालतों की कृपा है। अब भी सीधे सादे ग्रामीण कम असत्य बोलते हैं। जहाँ अङ्गरेजी सभ्यता पूर्ण रूप से नहीं पहुँची वहाँ अब तक असत्य और चोरी नाम को नहीं है। आज से दस बीस वर्ष पूर्व पहाड़ी लोग न असत्य बोलते थे न चोरी करते थे किन्तु अब उनमें भी अङ्गरेजी सभ्यता का प्रभाव समाता जाता है। अङ्गरेज़ स्वयं अपने देश में इतना असत्य नहीं बोलते हैं। अधिकांश एक

दूसरे के साथ सत्यता का वर्ताव करते हैं। और सीधे सादे हैं। भारत में अङ्गरेज़ी अदालतों में जितना असत्य बोला जाता है उससे परमात्मा बचाये। मेरे विचार में यह रोग हम लोगों में पोलिटिकल नौकरी से और अङ्गरेजी अदालत की रीतियों से उत्पन्न हुई।

सम्मिलित कृषी

नीरकस ने एक प्रथा का प्रमाण दिया है और वह यह है कि एक गोत्र के लोग अथवा एक स्वामी का कुटुम्ब चाहे कितने ही क्यों न हो सम्मिलित (Co-oprative) कृषक थे। प्रत्येक मनुष्य आवश्यकतानुसार उपज ले लेता था और को फेंक दिया जाता था जिससे कि लोग ढेर इकट्ठा हो जाने से सुस्त न हो जायँ।" *

सुन्दरता का नाम

एक और यूनानी लेखक लिखता है कि पञ्जाब के क्षत्री लोग सुन्दरता का बड़ा मान करते थे और राजा के चुनने में विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखते थे, यहाँ तक कि यदि दो वर्ष का भी बच्चा कुरूप ज्ञात हो तो उसको फेंक दिया जाता था। नीरकस ने दाढ़ियों के रंग विरंग रंगने का जो वर्णन किया है वह भी इसी के सम्बन्ध में है। राजा में सुन्दरता का गुण होना चाहिये यह वर्णन एक नीति की पुस्तक में भी आया है। किन्तु कुरूप बच्चों को मार डालने अथवा फेंक देने की असभ्य प्रथा और किसी लेखक अथवा यात्री ने नहीं लिखा।

---

* कैम्ब्रिज हिस्ट्री पृष्ठ ४१५।

स्त्रियों के साथ वर्ताव

स्त्रियों के साथ जो वर्ताव उस समय प्रचलित था उसके सम्बंध में भिन्न २ प्रमाण हैं । जिस प्रकार हिंन्दूशास्त्रों की आज्ञायें इस विषय में किसी सीमा तक एक दूसरे के विरुद्ध और विपरीत हैं उसी प्रकार यूनानी लेखकों और यात्रियों के प्रमाण भी अत्यंत विपरीति और भिन्न हैं।

मेगस्थनीज लिखता है कि अधिकांश रूप में विवाह की प्रथा है। और कभी कभी दुलहिन क्रय की जाती हैं। एक और यूनानी लेखक लिखता है कि तक्षशिला (सन्निकट हसन अब्दालरावलपिंडी) में यह प्रथा है कि जो मनुष्य दरिद्रता के कारण अपनी पुत्री का विवाह नहीं कर सकता वह उसको बाजार में ले जाकर विक्रय कर देता है। इसके विरुद्ध अर्थशास्त्र में यह लिखा गया है कि स्त्रियों के विपरीत जो अपराध होते थे उनके लिये कठोर दण्ड दिया जाता था *। प्रोफेसर हाप कन्स ने लिखा है कि स्त्रियों की हत्या ब्राह्मणों की हत्या के समाम समझी जाती थी।

हिन्दुओं में आठ प्रकार के विवाह गिनाये गये हैं। जिनमें से चार भले प्रकार के, चार अनुचित रीति से। जिस विवाह में कन्या क्रय की जावे अथवा उसके बदले उसके माता पिता को कुछ दिया जावे वह विवाह निन्दनीय और अनुचित समझा जाता था। द्रव्य

---

* केम्ब्रिज हिस्ट्री पृष्ठ ४८१ चाणक्य का अर्थशास्त्र अधिकरण ४—अध्याय १३

देकर कन्या क्रय-विक्रय करने की प्रथा न्यूनाधिक सब जातियों मे पाई जाती है। सभ्य योरोप में भी इस प्रकार के विवाह अप्राप्य नहीं। और अनेक उपन्यासों में इस कुप्रथा का चित्र खींचा गया है। नीरकस यह लिखता है कि बहुत लोगों में यह प्रथा थी कि जब दो पुरुष परस्पर मैच (Match) अथवा समता का खेल खेलते थे तो जीतने वाले को कन्या मिल जाती थी। केम्ब्रिज हिस्ट्री लिखने वाले ने इसके नीचे यह नोट दिया है कि यह प्रथा सम्भव है कि स्वयंवर की ओर संकेत करता हो। और मेरे विचार में यह बात ठीक है। नीरकस ने सम्भव है कि किसी स्वयंवर को देखकर यह विचार लिख दिया हो। जैसे "आजकल पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले अनेक लोग कुछ घण्टे अथवा कुछ दिनों की यात्रा से ऐसा नतीजा निकाल लेते हैं।

सती

यह ज्ञात होता है कि सती की प्रथा उस समय प्रचलित थी। किन्तु किसी स्त्री को सती होने के लिये विवश नहीं किया जाता था,

युवावस्था

अर्थशास्त्र के लेखक ने लड़कों के लिये १६ वर्ष और लड़कियों के लिये १२ वर्ष युवा होने की अवस्था बतलाई है। किन्तु इससे यह उचित नहीं समझा जाता कि उस समय इस अवस्था में विवाह होने के विषय में किसी यूनानी यात्री ने नहीं लिखा है।

तिलाक

के सम्बन्ध में यह लिखा है कि परस्पर की स्वीकृति से अथवा चिरकाल की अनुपस्थिति से विवाह समाप्त हो जाते थे। इसके विषय में शास्त्रों में आज्ञायें दी गई हैं।

स्त्री धन।

स्त्री को जो वस्तुयें मिलती थीं अथवा जो कुछ उसके नातेदार देते थे अथवा जो आभूषण उसका पति देता था वह स्त्री-धन होता था।

विधवा विवाह।

विधवाओं को विवाह करने का अधिकार था।

मृतक संस्कार।

मृतक संस्कार की प्रथा यूनानियों को आश्चर्यजनक ज्ञात होती थी। उस समय भारतवासी मृत-शरीर के चिन्ह न बनाते थे। विश्वास यह था कि उनके गुण स्वयं उनके पूर्णतः चिन्ह हैं।

दासत्व।

यूनानियों ने लिखा है कि उस समय भारत में दास न थे। किन्तु कई नैतिक ग्रन्थों में दास का वर्णन आया है। अतः बहुधा यूरोपियन लेखक यह कहते हैं कि भारत में जिस प्रकार की दासता की प्रथा थी वह यूनानियों की दृष्टि में दासता न थी। वास्तविक बात यह है कि जिस प्रकार की दासता यूरोप और अमेरिका में उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही उस प्रकार की दासता कभी हिन्दू काल में भारतवर्ष के अन्तर्गत नहीं थी।

मनुस्मृति में सात प्रकार के दास लिखे गये हैं किन्तु यह विशेषता है कि कोई * आर्य्य दास नहीं बनाया जा सकता। इस प्रकार के दास बहुधा वे लोग थे जो ऋण न दे सकने के कारण स्वयं अपने को ऋणदाता के आधीन कर देते थे। अथवा जिनको माता पिता दरिद्रता के कारण अन्य को समर्पण कर देते थे। अथवा प्रायः कई दशा में जो युद्ध में पकड़े जाते थे। परन्तु प्रत्येक दशा में दास को अधिकार था कि अपने स्वामी की सेवा के अतिरिक्त किसी प्रकार के उद्योग-धन्धे करके अपनी स्वतंत्रता क्रय करले। अन्य जन भी उसके स्थान पर ऋण चुका कर उसको स्वतन्त्र करा सकते थे। यदि कोई स्वामी दासी से प्रसङ्ग करता था वह स्त्री और उसकी सन्तान उसी समय से स्वतंत्र हो जाती थी।

पशुओं के साथ व्यवहार

एक यूनानी लेखक लिखता है कि भारतीय किसी दशा में किसी पशु को बनैला हो अथवा घरेलू कष्ट देने की प्रथा नहीं थी।

घुड़ दौड़

घोड़ों और गाड़ियों की दौड़ और अन्य पशुओं के परस्पर

---

* यहाँ पर आर्य्य से मतलब कदाचित द्विज—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य से हैं।

युद्ध के दृश्य भी उस समय होते थे और उनमें वर्तमान यूरोपियन प्रथा के अनुसार जुआ भी खेला जाता था।

सामाजिक जीवन

उस समय के हिन्दुओं के सामाजिक जीवन का जो चित्र यूनानी लेखकों ने खींचा है उससे ज्ञात होता है कि हिन्दू भली भाँति जीवन सफल करते थे और वे ऐसे दुखी न थे और न ऐसा उदासी का जीवन व्यतीत करते थे जैसा कि आजकल विशेषतया देखी जाती है। यूनानियों ने स्थान स्थाम पर लिखा है कि पर्व के अवसरों के सिवाय हिन्दू खाने पीने में बहुत अल्प व्ययी और साधारणतः * विचार शील होते थे। केवल उनके वस्त्र में सुख के चिन्ह पाये जाते हैं। किन्तु धर्मशाला, भोजनालय और द्यूतगृह असंख्य थे। प्रत्येक समुदाय के शिल्पकारों की अपनी अपनी पञ्चायतें अथवा सम्मिलित-स्थान हैं और वे शिल्पकार कभी कभी मिलकर भोजन करते हैं। नृत्य करने वालों, गाने वालों और खेल करने वालों की भी कमी नहीं थी। और ये लोग गाँवों में भी जाते थे। ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त के समय में प्रत्येक गाँव में इस प्रकार के थियेटर अथवा सम्मिलित हाल बने हुये थे जहाँ तमाशे इत्यादि किये जाते थे और सभायें होती थीं। (योरोप में इस प्रकार के थियेटर हाल इस समय में उनके सामा-

* The people were frugal in their diet and sober, except on occasion of festival, (Cam, H. Ind. P. 480.

जिक जीवन के विशेष चिन्ह हैं) अर्थशास्त्र के लेखक की दृष्टि में लोग खेलकूद में आवश्यकता से अधिक समय देते थे जिससे गृह-कार्य्य और कृषि कार्य में बाधा पड़ती थी। इसलिये उसने इस प्रकार के पञ्चायती स्थानों और हालों का विरोध किया है किन्तु यह भी लिखा है कि साधारण खेल कूद की सामग्री न इकट्ठा करना भी निन्दनीय है।

महाराज स्वयं बड़े बड़े खेलों और मल्लयुद्धों में आते थे और इन खेलों और युद्धों के लिये बड़े बड़े बहुमूल्य भवन † भी बनाते थे। नगरों में प्रकाश होता था और राजसी जुलूस निकलते थे। सारांश जीवन ऐसा उदासीन न था जैसा कि आजकल हो गया है। अथवा जैसा कि कई हिन्दुओं की सूक्ष्मदृष्टि से होना चाहिये। जीवन में उचित आनन्द और सुख भोगने की सामग्री और अवसर प्राप्त करना मनुष्य की और जातीय आवश्कयताओं में से है। हिंदुओं के पर्व और त्योहार इस विषय में उनकी जातीयता और बुद्धिमानी के प्रमाण हैं। कदाचित संसार में कोई ऐसी जाति होगी जो इतने पर्व मनाती हो, और जिनके पर्वों में एक भी ऐसा न हो जो शोक अथवा चिन्ता का अवसर हो। दासता और दरिद्रता ने वर्तमान हिन्दू जाति को शोचनीय और चिन्ताग्रस्त बना डाला है और अंग्रेजी शिक्षा ने जातीय पर्वों के उत्सवों को बिलकुल नष्ट कर डाला है। ग्रामों में न वह खेल होते हैं और न वह त्योहार मनाये जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षित समुदाय की उदासीन फिलासफी

† Amphitheatre,

ने उनको अपनी जातीय विशेषताओं से बिलकुल उदासीन और अपरिचित कर दिया है। बड़े आश्चर्य की बात है कि हिन्दुओं के जातीय जीवन में इस निराशा, शोक और उदासी की मात्रा अंग्रेजी शिक्षा से बढ़ गई है। क्यों कि जाति स्वयं अत्यन्त प्रसन्न रहने वाली और प्रत्येक दशा में अपने खेल कूद नाच रङ्ग और समुदायिक प्रसन्नता की सामग्री एकत्रित करने में अन्य जातियों से आगे रहती है। अङ्गरेज युद्ध में जायँ अथवा यात्रा के निमित्त, उनके यहाँ शोक हो अथवा उत्सव सारांश कैसा ही उत्सव का अवसर हो अथवा विपत्ति पड़ी हो किन्तु वे सर्वदा नाच, रङ्ग, खेल-कूद की सामग्री एकत्रित कर लेते हैं। अन्तिम युद्ध में प्रत्येक युद्ध करने वाली जाति ने अपने सैनिकों के लिये खेल-कूद और नाच, रङ्ग की सामग्री अधिकता से प्राप्त किये थे। महाराज अशोक के समय के हिन्दू आजकल के हिन्दुओं से कम फ़िलासफ़र न थे। फिलासफ़ी उस समय भी उन्नति पर थी। साधु, सन्यासी, बानप्रस्थ और वैरागी उस समय भी अधिक थे। किन्तु तौ भी साधारणतः जातीय-जीवन को ऐसे आनन्द से भोगना जानती थी जो उचित सीमा के भीतर ही था। और जो निरुद्यम और दुराचार की सीमातक न पहुँच सकता था। जैसी नीरसता और उदासी हिन्दुओं में आजकल बढ़ती जाती है ऐसा कदाचित पूर्वकाल में कदापि नहीं हुआ था। इसका कारण भविष्ये का सोच और राजनीतिक व आर्थिक दासता है। साधारणतः यह विचार है कि आय घटती जाती है और व्यय

बढ़ता जाता है। इस समय उत्तरदायित्व की वृद्धि होती जाती है किन्तु मेरे विचार में इस साईकोलोजी * का उत्तरदायित्व शिक्षित नेताओं पर ही है जिन्होंने जीवन को सीमा से अधिक गम्भीर और आनन्द रहित बना दिया है।

ब्राह्मण-फ़िलासफर साधु-सन्यासी

यूनानियों ने जो चित्र उस समय के ब्राह्मणों फिलासफरों साधुओं सन्यासियों का खींचा है वह बहुत ही रोचक है। किन्तु मैं पूर्णतः उसको सत्य स्वीकार करने को सहमत नहीं ‡।

---

* आन्तरिक दशा।

‡ इस अवसर पर यह वर्णन कर देना आवश्यक है कि एशिया निवासी के गृह-कार्य्य और उनके अपने गृह-जीवन इतने खुले रूप में न थे। जैसा कि आजकल यूरोपियन और अमेरिकन लोगों का है। कोई पुरुष किसी अन्य देश में जाकर दो चार वर्ष में उस देश की रीति, नीति, रहन, सहन, और वहाँ के समाजिक, आचारिक प्रथा का पूर्ण अनुभव नहीं प्राप्त कर सकता। हम यूरोप और अमेरिका में कई वर्ष रहते हैं उनके घरों में रहते और निवास करते हैं उनकी स्त्रियों से सभ्यता के साथ साधारण रीति से मिलते जुलते हैं। उनके साथ हँसते खेलते हैं। उनके खेल और तमाशों में सम्मिलित होते हैं। उनके गृह-जीवन को हर प्रकार से देखते हैं। उनके सामाजिक जीवन का कोई अङ्ग मुझसे परोक्ष नहीं रहता। सारांश बड़ी स्वतन्त्रता से उनके साथ रहते हैं। किन्तु तो भी हम लोग उनके आचरण और उनके जीवन के सम्बन्ध में असंख्य भूल करते हैं। योरोपियन लोग तो निरकुल हम लोगों से पृथक रहते हैं।

मेगस्थनीज़ ने हिन्दू बस्ती को सात समुदायों में विभाजित किया है। प्रथम सब से प्रतिष्ठास्पद किन्तु संख्या में कम समुदाय

इनको हमारे घरों की कुछ दशा ज्ञात नहीं होती। हमारी स्त्रियों से कभी उनको मिलने जुलने का अवसर नहीं मिलता। वे बीस पच्चीस वर्ष बल्कि तीस चालीस वर्ष तक हमारे बीच रहते हुये भी अपरिचित की भाँति रहते हैं। न उनको हमारी भाषा पर पूरा अधिकार होता है और न उनको पूर्णतः हमारे जीवन और हमारी रीति-नीति का ज्ञान होता है।

वे हमारे देश का ज्ञान और हमारे सामाजिक जीवन का ज्ञान पुस्तकों से प्राप्त करते हैं अथवा इधर उधर देखकर और सुनकर। बहुत से कम बुद्धि भारतवासी उनको प्रसन्न करने के लिये अनेक विरुद्ध बातें भी कह देते हैं, और अपनी जाति के कल्पित अवगुण भी बतला देते हैं। इसी प्रकार योरोपियन लोगों को एशियाई लोगों के अन्तः जीवन और समाजिक रीति नीति का ज्ञान केवल ऊपरी होता है और वे कई स्थानों पर हास्य-युक्त और महान् भूलों के कारण होते हैं। हम यह मानते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त व महाराज अशोक के समय में हिन्दुओं की स्त्रियों में इतना पर्दा नहीं था जैसा कि आजकल, किन्तु उनके गृह जीवन और सामाजिक जीवन आधुनिक योरोपियन और अमेरिकन जीवन की भाँति खुले होने के हमारे पास कोई कारण विश्वास करने योग्य नहीं। अतः उस समय के यूनानी दूतों और यात्रियों के लेखों में भूलों का समावेश होना ऐसा ही है जैसा कि आधुनिक योरोपियन लेखकों, और यात्रियों के साक्षात् वृत्तान्त और कार्य्य हैं। हम इस बात के लिये सहमत हैं कि यूनानियों ने जो कुछ हमारे विषय में लिखा है उसको हम भूलों से पृथक मान लें उदा-हरण के लिये मैं यह वर्णन आपके सम्मुख रखता हूँ जो स्वयम्बर की

ब्राह्मणों, सन्यासियों का था जिसको वे फिलासफरों का समुदाय कहते थे। इस समुदाय के वर्णन में मेगस्थनीज़ ने ब्राह्मणों और सन्यासियों के जो लक्षण बतलाये हैं वह लक्षण ठीक नहीं हैं। ब्राह्मणों को भी उनके उद्यम और कार्य्य से भिन्न समुदाय में

प्रथा के विषय में लिखा गया है और जिसका प्रथम वर्णन आ चुका है। हमारे लिये ये वर्णन दो कारणों से माननीय है। प्रथम इस कारण से कि वह एक अन्यपक्ष के लिखे हुये हैं जिनको हमारा पक्षपात करने का कोई कारण नहीं था और अपने देशवासियों के लिये इस देश की दशा का चित्र खींच रहे थे। द्वितीय इस कारण से कि वह एक उचित सीमातक हमारी अपनी पुस्तकों के वर्णन का समर्थन करते हैं। हमारी यह बड़ी भूल होगी यदि यह टेव पड़ जायगी कि प्राचीन इतिहास, लेखकों और यात्रियों ने जो कुछ हमारी प्रशंसा लिखी है उसको हम सत्य समझ लें और जो कुछ हमारी बुराइयों और त्रुटियों के विषय में लिखा है उन पर हम दृष्टि न दें और असत्य कहकर उसकी उपेक्षा कर दें।

कोई मनुष्य अथवा कोई जाति उन्नति नहीं कर सकती जो अपनी त्रुटि और बुराइयों की ओर से दृष्टि हटा लेती है। और सर्वत्र प्रशंसा सुनने ही की इच्छुक रहती है। हम आकाश से नहीं उतरे हम में प्राचीन काल में भी बुराइयाँ, त्रुटियाँ और अवगुण थे उनको भली भाँति जानकर और समझकर फिर उनको दूर करने का उद्योग करें। इसमें केवल सन्देह यह है कि ऐसा न हो कि हम यूरोप के अन्ध विश्वसनीय अनुकरण में गुण को भी अवगुण समझ कर छोड़ दें। हमें यह प्रस्तावना इस लेख के आरम्भ में लिखना चाहिये था किन्तु तो भी इस अवसर पर भी अनुचित नहीं।

लिखा है। उनके विषय में वह लिखता है कि यह लोग किसी प्रकार के उद्योग धन्धे नहीं करते और न कर देते हैं उनका काम यह है कि जनता की राय से यज्ञ करावें। मुहूर्त निकालें अथवा भविष्य सोचें। प्रति वर्ष के आरम्भ में नवीन दिन को वे राज्य भवन के सामने एकत्रित होते हैं और आगामी वर्ष के भविष्य को सोचते हैं। इनमें से एक समुदाय के विषय में जिनको वह सयाने * कहता है वह लिखता है कि यह लोग हर ऋतु में नग्न रहते हैं। जाड़े में ठंडक और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य्य की गर्मी में रहते हैं। खेतों में अथवा वृक्षों के नीचे अथवा दालानों में जीवन व्यतीत करते हैं †। वे फल अथवा वृक्षों की पत्तियाँ खाते हैं जो अस्वादिष्ट नहीं होते और जिनमें खजूरों से कम भोज्यशक्ति नहीं होती।

इन ब्राह्मणों, फिलासफरों अथवा साधुओं के वह कई भेद बतलाता है। एक भेद तो शिव और कृष्ण के उपासकों का है। दूसरा भेद ब्राह्मण और शर्मन का है। ब्राह्मणों के जन्म और शिक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त ध्यान रक्खा जाता है। गर्भाधान के समय से विशेष ध्यान आरम्भ कर देते हैं। ‡ और जन्म से

---

* Wise men.

† यह बात नोट करने योग्य है कि वह पहाड़ों का वर्णन नहीं करता। कदाचित किसी यूनानी यात्री अथवा दूत ने हिमालय की यात्रा नहीं की। मगध में कोई ऊँचा पर्वत नहीं।

‡ यह विचार गृह्यसूत्र में अङ्कित है। और प्रत्येक जाति के लिये

उसकी शिक्षा और सुधार का प्रबन्ध हो जाता है। उसकी अवस्था जितनी बढ़ती जाती है उसी प्रकार गुरु भी बदलता जाता है।

विद्वान् ब्राह्मण बहुधा नगरों से बाहर वाटिकाओं अथवा वृक्ष समूह के नीचे रहते हैं। पृथ्वी पर सोते हैं। पत्तियों अथवा पशुओं की खालों का विस्तर बनाते हैं। अत्यन्त साधुता से रहते हैं। सूक्ष्म भोजन करते हैं। मांस से बिल्कुल पृथक् रहते हैं। स्त्री के निकट नहीं जाते। एक दूसरे के साथ धर्म्म चर्चा करते हैं।

पृथक पृथक है। यहाँ तक कि पथ्य भी नियत किया गया है जो माता को गर्भवती रहने के समय देना चाहिये। मैंने इस लेख को जिसको आजकल अङ्गरेजी में Eugenies के नाम से पुकारा जाता है विशेष ध्यान से अवलोकन नहीं किया। किन्तु जितना मैंने उसको देखा है उससे मैंने यह विचार निर्णय किया है कि इस विषय में जितनी उन्नति हिन्दुओं ने की थी कदाचित आज तक किसी दूसरी जाति ने नहीं की। अच्छे बालक उत्पन्न करने के विज्ञान में हिन्दुओं की विशेष योग्यता थी। इसके दो भेद थे। एक तो पुरुष स्त्री का चुनाव विवाह करने के निमित्त और दूसरा गर्भ के दिनों में माता के विचार और भोज्य सामग्री। ऐसा ज्ञात होता है कि मेगस्थनीज ने इस विषय में कुछ सन्देह सा विचार किया था, वह लिखता है कि ज्योंही कोई ब्राह्मणी गर्भवती होती है विद्वान् पुरुष उसके पास जाकर शिक्षा देते हैं कि बालक का जन्म माता और सन्तान दोनों के लिये सुखदायी हो। हमारे विचार में यह संकेतः उन शिक्षाओं की ओर है जो हिन्दू शास्त्रों में बहुधा गृहसूत्रों में विशेषत गर्भ की रक्षा और गर्भाधान के विषय में दिया गया है।

गृहस्थियों को धर्म्म चर्चा सुनने की आज्ञा है। किन्तु उसको सभा में अथवा उनके आश्रमों में अथवा उनके निकट थूकने इत्यादि की आज्ञा नहीं। और न वे चर्चा में कुछ बोल सकते हैं। जब इस प्रकार रहते हुये सैंतीस वर्ष * की अवस्था हो जाती है तो फिर ब्राह्मण अपने गृह लौट आता है। अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण पहनता है सम्पत्ति उत्पन्न करता है। घरेलू और पालतू पशुओं को छोड़कर अन्य पशुओं का माँस भी खाता है किन्तु अधिक तीव्र अथवा तीक्ष्ण अथवा तप्त भोजन से वञ्चित रहता है। वह अनेक विवाह करता है। क्योंकि दास न होने के कारण उनकी सन्तान ही उनकी सेवा सुश्रुषा करती है। वह अपनी स्त्रियों को अपना ब्रह्मज्ञान नहीं देते क्योंकि उनपर यह विश्वास नहीं कि वे उसको पचा सकें अथवा वे अनाधिकारियों को बता देती हैं अथवा स्वयं साधु होने के लिये तैयार हो जाती हैं।

नोट—ब्राह्मणों के विवाहों और उनकी स्त्रियों के सम्बन्ध में जो वर्णन है वह सन्देह युक्त और अपूर्ण है। कदाचित मेगस्थनीज के विचार ने कुछ भूलें की हों। ब्राह्मणों की फिलासफी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसको हम बहुत प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखते क्योंकि उसका उत्तमोत्तम ज्ञान हमको

---

* ऐसा ज्ञात होता है कि यह वर्णन उन आश्रमों का है जिनमें ब्रह्मचारी रहते हैं। प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य्य तीन प्रकार का था। एक २५ वर्ष तक, दूसरा ३६ वर्ष तक, तीसरा ४८ वर्ष तक।

ब्राह्मणों की पुस्तकों से मिलता है। तो भी इस यूनानी यात्री ने यह बात नोट की है कि जीने, मरने जीवन और जीव के विषय में उनकी फिलासफी किसी सीमा तक यूनानी फिलासफी के समान थी। श्रमण लोगों के विषय में जो बातें हैं उससे प्रगट होता है कि इस समुदाय में वह साधुओं और योगियों को सम्मिलित करता था। वह लिखता है कि इस समुदाय में से सब में प्रतिष्ठित वे हैं जो वनों में निवास करते हैं वृक्षों की छाल से शरीर ढाँकते हैं और फलों पर जीवन निर्वाह करते हैं। मदिरा का प्रयोग नाम मात्र को नहीं करते और जिनको राजा लोग बहुधा राय लेने के लिये बुलाते हैं * और जिनसे वे पूजा पाठ में सहायता लेते हैं।

इनकी द्वितीय श्रेणी पर वह एक और समुदाय का वर्णन करता है। जिनको वह मेडीकल फिलासफर नाम से संबोधन करता है। और जो स्त्रियों को बच्चे उत्पन्न करने अथवा पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करने में सहायता देते हैं। उनकी औषधि विशेष प्रकार का भोजन है। वे औषधि का आंतरिक प्रयोग नहीं करते और औषधि के आंतरिक प्रयोग को हानिकर समझते हैं। औषधि का ऊपरी प्रयोग अथवा मालिश इत्यादि को वह लाभदायक समझते हैं। † मेगस्थनीज़ के लेखानुसार यह

---

* इस समुदाय से प्रायः उन ऋषियों और वानप्रस्थियों से अभिप्राय है जो वन में आश्रम बनाकर रहते हैं।

† यह वर्णन बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि यह संकेत गृहसूत्र

समुदाय भी अत्यन्त सूक्ष्म भोजन करता है। बहुधा चावल और दूध पर ही निर्वाह करता है, जो उनको आसानी से प्राप्त हो जाता है क्योंकि जिससे वह माँगते हैं उपस्थित कर देता है।

तृतीय समुदाय वह है जो जादू टोने का प्रयोग जानता है और भूत प्रेतों की विद्या का भी ज्ञाता है। यह लोग बहुधा भीख माँगते हैं। ग्राम और नगर में भ्रमण करते हैं। किन्तु सबसे पवित्र और उत्तम श्रेणी का वह समुदाय है जो कि आत्मविद्या के अध्ययन में लीन है और जीवन की पवित्रता और विद्वत्ता का आदर्श है। किंतु वे भी नर्क और स्वर्ग को मानते हैं।

स्त्रियों को भी साधु बनने की आज्ञा है।

रास टोबलस कुछ साधुओं का वर्णन करता है। जो उसने तक्षशिला में देखे थे। उनमें से एक समुदाय केशधारियों का था और दूसरा मौनों का। उनको बाजार में से वस्तु सेंत मिल जाती थी। जब वह किसी के गृह पर जाते थे तो लोग उनके आगे तेल डालते थे ‡ (युनानी लिखता है कि उनके शरीर पर तेल डालते थे यहां तक कि आँखों से तेल चूता था किन्तु

की उन शिक्षाओं की ओर है जिनमें सन्तान उत्पन्न करने की विधी बतलाई गई है। और जिनमें पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करने के लिये भिन्न प्रकार के भोजन और मालिश भी नियत की गई हैं। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि इस लेख के सम्बन्ध में मेगस्थनीज जादू अथवा टोने का कोई वर्णन नहीं करता।

‡ हिन्दुओं में तेल से अतिथि सत्कार करने की अब तक प्रथा है

७

यह वर्णन भ्रमयुक्त ज्ञात होता है) वह लोग मधु ले जाकर अपना भोजन तैयार करते थे। उनको जब सिकन्दर ने बुलाया तो प्रथम तो सब लोगों ने जाना स्वीकार न किया। उसके पश्चात् कई उसके पास गये। उनमें से एक को सिकन्दर अपने संग ले गया। जब वह ईरान अथवा एशिया-कोचक में पहुँचा तो बीमार हो गया और चिता बनाकर भस्म हो गया। सिकन्दर और अन्य युनानियों ने बहुत रोका किन्तु उसने न माना और कहा जो शरीर रोगी हो जावे वह रखने योग्य नहीं है। सिकन्दर की सेना में एक भारतीय सेनाध्यक्ष की स्त्री भी सती हुई थी। जिस दृढ़ता और निर्द्वन्दता बल्कि प्रसन्नता और अभिमान के साथ इन दोनो ने अपने आपको जीवित जलाया और आह! तक न की—युनानियों को अत्यंत आश्चर्य में डाल दिया।

भारतीय विद्वानो में से सबके सब भगवत भक्त और आस्तिक न थे। उनमें से कई एक स्वतंत्र विचार के नास्तिक और चोर-भी थे जो बहुधा शास्त्रों पर विश्वास रखने वाले ब्राह्मणों से झगड़ते रहते थे और शास्त्रार्थ करते रहते थे और प्रथाओं को व्यर्थ बनाते थे।

एक यूनानी ने लिखा है कि अनेक साधुओं के मुँह नहीं हैं और वह केवल सुगन्ध पर जीवन निर्वाह करते हैं !! केम्ब्रिज

जसे जब प्रथम दिवस दूल्हा दुलहिन गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तो देवढ़ी से बाहर तेल चुवाया जाता है)

इतिहास लेखक का प्रश्न है कि क्या उन जैन साधुओं की ओर तो संकेत नही जो सदैव अपने मुँह पर पट्टी बाँधते हैं? इन बातों से प्रगट होता है कि यूनानियों के लेख पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। कई बातें उन्होंने भ्रम और भूल से बिना सोचे समझे लिख डाली अथवा सुनी सुनाई हाँक दी है।

कृषक

वस्ती का द्वितीय समुदाय जिसको मेगस्थनीज़ ने लिखा है वह कृषकों का समुदाय है। यूनानी दूत लिखता है कि राजा सारी भूमि का स्वामी है। (यह वर्णन बिल्कुल ग़लत है)। इसमें केवल इतनी शुद्धता है कि राजा भूमि की उपज का एक भाग कर के निमित्त लेता था। वह यह भी कहता है कि लगान के अतिरिक्त उपज का चौथा भाग "कर" के तौर पर लेता है। यह वर्णन भी स्पष्ट नहीं। सम्भव है कि खेतों के दो विभाग हों एक जागीर और दूसरी गैर जागीर। जागीर भूमि गवर्नमेंट के अधिकार में होगी और गैर जागीर समुदाय के हाथ में। जागीर भूमि से लगान लिया जाता होगा और गैर जागीर से मालगुज़ारी। अर्थशास्त्र में अधिक से अधिक मालगुजारी उपज का छटाँ भाग लिखा है। किंतु युद्ध काल में इससे अधिक भी लेने के लिये लिखा है। हम यह मानने के लिये सहमत नहीं कि इस विषय में चन्द्रगुप्त चाणक्य की आज्ञाओं के विरुद्ध कार्य करता होगा अतः इस विषय पर अधिक प्रकाश की आवश्कता है।

अन्य समुदाय

तीसरा समुदाय शिकारियों अथवा पहाड़ी और बनैले चर-वाहों का था जो ढंगर ढोर रखते थे और विशेष सेवा करते थे। कहा गया है कि इस समुदाय में ग्रामीण कमीनशला, कुम्हार, नाई, लोहार, और तरखान इत्यादि सम्मिलित थे।

चौथे समुदाय में व्योपारियों, शिल्पकारियों और नौकाओं के चलाने वालों का वर्णन है। आने जाने के लिये सरकारी सड़कें थीं। दस २ स्टेडेम† पर दूरी के चिन्ह और दिशायें स्थापित की होती थीं। उत्तरी और पश्चिमीय सीमा से लेकर पाटलीपुत्र तक एक राजसी विशाल सड़क थी जो वर्तमान ग्रेण्डट्रङ्क रोड के सदृश समझनी चाहिये। हरकारे डाक ले जाते थे। सरकारी कार्यों के लिये पृथक सड़कें थीं और व्यापार के लिये पृथक। पुल, घाट और धर्म्मशालायें सब नियमानुसार शासन में थीं। आने जाने में हर प्रकार का सुभीता था।

इस समुदाय में हर प्रकार के उद्यमशील और शिल्पकार कारीगर थे जिनके भेद अनेक हैं। इस समुदाय में व्यापारियों के अध्यक्ष भी सम्मिलित रहते थे जिनको सेठ कहा गया है। यह सेठ अपनी अपनी पञ्चायतों के सरपञ्च थे और सारे कार्यों में उनका मान था। व्यापारियों, दुकानदारों और उद्यमवालों की

---

† ८० स्टेडम को ६॥ मील के समान भी लिखा गया है। जिससे ज्ञात होता है कि १० स्टेडम से १ मील से कुछ अधिक दूरी का अभि-प्राय है।

पञ्चायतें सोलजायफ की स्थायी विशेषता थीं। उनको श्रेणियाँ कहते थे और उनके क्लबों को पूग। व्यापार के लिये इस प्रकार के सम्मिलित समुदाय भी रहते थे जैसे आजकल कम्पनियाँ हैं। व्यापार विस्तृत रूप से होता था और अनेक प्रकार का था। और उनका शासन-प्रबन्ध पूर्ण रूप से होता था। (१)

सोना चाँदी और हर प्रकार के मसाले खाने वाले अथवा शृङ्गारवाले भारत के सब दिशाओं से आते थे। मोती और रत्न दक्षिणीय भारत, संघालियन और समुद्र पार से आते थे। चमड़े और खाल मध्य एशिया और चीन से, मलमल और रेशमी कपड़े चीन से और भारतवर्ष के अन्य भागों से आते थे। (यह वर्णन पाटलीपुत्र के व्यापार का है जो राजधानी थी)

व्यापार पर भिन्न भिन्न कर थे अर्थात् देश में आने और बाहर जाने के कर और चुंगी के भी क्रय विक्रय पर पूर्ण देख भाल होती थी। कई वस्तुओं के आने जाने की रोक थी। राजा स्वयं कार्यालयों का कार्य करता था। और साधारणतया क्रय विक्रय करता था। जैसे जागीर की भूमि, घरों और बनों की उपज विक्रय करता था। मुद्रा का निर्माण करना केवल गवर्नमेण्ट का कर्त्तव्य था। बहुधा कई देशों में प्राइवेट कम्पनियों को मुद्रा ढालने की आज्ञा हुआ करती है।

---

(१) Trade was active various and minute regulated केंम्ब्रिज इतिहास पृष्ट ४७८।

क्षत्री

पाँचवाँ समुदाय युद्ध करने वालों का था। यूनानी लिखते हैं कि कृषकों से द्वितीय श्रेणी पर यह समुदाय संख्या के विचार से था। किंतु यह वर्णन शुद्ध नहीं हो सकता अतिरिक्त इस बात के कि राजधानी में हो सकता है।

छठवें सातवें समुदाय में सर्कारी कर्मचारी थे जिनके विचार और सत्यता का यूनानी बड़ाई करते हैं।

मेगस्थनीज के बस्ती-विभाग से ज्ञान होता है कि विभागी करण केवल उसके अपने मस्तिष्क का अविष्कार था। उस समय के हिन्दूपट्टों और शास्त्रों से इस प्रकार के विभाग का कोई पता नहीं चलता। उसने जिन मनुष्यों को देखा उनको अपने विचार के अनुसार भिन्न भिन्न समुदाय में विभाजित कर दिया। यूनानियों ने भारतवर्ष के पशुओं, खानिज पदार्थ, वनस्पति और उपज के विषय में जो कुछ लिखा है उसका वर्णन हमारी इस छोटी सी पुस्तक की सीमा से बाहर है।

ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय प्रायः नदियों में जलयान चलते थे। इस विषय में यूनानियों को पूर्ण रूप से ज्ञान न था किन्तु मेगस्थनीज लिखता है कि ५८ नदियों में जलयान चलते थे।

उपज में सोने, रत्न, मोतिओं का विशेष रूप से वर्णन आता है। और गन्ने की चीनी और रूई का भी। इन दोंनो वस्तुओं को देखकर यूनानियों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। ऐसा ज्ञात होता

है कि उस समय योरोप में मीठा केवल मधु ही का था। गन्ने से चीनी बनाने की ओर कभी उनका ध्यान ही नहीं गया था। कदाचित गन्ना उन्होंने कभी देखा तक भी नहीं था। इसी प्रकार उन्होंने रूई कभी नहीं देखी।

यूनानी यह भी कहते हैं कि उस समय भारतवर्ष में असंख्य ग्राम और नगर थे और कई एक तो बहुत विशाल थे। केवल पोरस के राज्य में दो सहस्र नगर थे।

नगरों के भेद निम्न लिखित थे:—

प्रथम—संग्रहण जो दस गांवों के बराबर गिना जाता था।

द्वितीय—खारवटिक अथवा द्रोणमुख २०० अथवा ४०० गाँवों की संख्या के समान जाना जाता था।

तृतीय—प्रान्त का विशाल नगर जिसको स्थानीय अथवा थाना कहते थे। चतुर्थ—नगर अथवा पुर। पञ्चम—पट्टण अथवा बन्दरगाह। षष्ठम—राजधानी।

प्रायः नगरों के चारों ओर खाई थी और उनकी रक्षा के लिये दीवारें, गढ़, बुर्ज और मोर्चे थे। इन नगरों में पक्की सड़कें खुली हुई गलियाँ और रास्ते स्वच्छता और जल के लिये नालियाँ और नलें और नहरें बनी हुई थीं। प्रायः नगर चौरस अथवा चौपड़ की शकल के थे और चार भागों में विभाजीत किये जाते थे। प्रत्येक में एक निरीक्षक नियत था। नगर उस समय प्रायः लकड़ी के होते थे। गृहभवन बहुधा दो और तीन मन्जिला थे और बहुधा घरों में कई आँगन थे। कई नगर पक्की

ईंट और चूने के भी थे। आन्तरिक आवरण, रक्षा और स्वच्छता के विषय में विस्तृत रीतियां थीं। गलियों में गन्दगी फैलाना, पानी को मैला करना अथवा दुर्गन्ध फैलाना दण्डनीय समझा जाता था। अग्नि लगने पर बुझाने का भी प्रबन्ध उचित था, प्रत्येक गली में सहस्रों की संख्या में पात्र जल से भरे हुए रक्खे जाते थे और प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य था कि वह बिगुल बजने पर घर से निकल कर अग्नि शान्त करने में सहायता करे। सारांश यह कि प्रचलित समय के पुलिस विभाग और म्युनिसिपल बोर्ड के सब शासन और रीतियां किसी न किसी अंश में प्रचलित थीं। जिससे कि साधारण जनता के सुख चैन में बाधा न पड़े। लेखन-कला अधिकता से थी और लिखने का क़ागज़ बहुत ही सुन्दर बनाया जाता था।

४
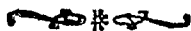
महाराज अशोक की कथा और उनकी घोषणा
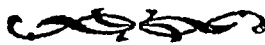
चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार के विषय में कुछ कथायें।

जैसा कि पहले वर्णन किया गया है अशोक महाराज चन्द्रगुप्त का पोता और महाराज बिन्दुसार का पुत्र था अथवा मौर्य्यवंश का तृतीय राजा था। चन्द्रगुप्त के वृत्तांत अधिकांश यूनानी लेखों के सहारे ज्ञात होते हैं। अशोक के वृत्तांत उसके अपने लेख से ज्ञात होते हैं किन्तु बिन्दुसार का माध्यमिक

काल ऐतिहासिक दृष्टि से एक अंधकारमय है। जिसका स्पष्ट हाल किसी को ज्ञात नहीं। (१)

पुस्तकों में और विष्णु पुराण में भी चन्द्रगुप्त के पुत्र और स्थानापन्न का नाम विन्दुसार दिया है। अन्य पुराणों में उसको नन्दसार अथवा विन्दुसार लिखा है। यूनानी पुस्तकों में उसको अमित्रघात लिखा है। अमित्र संस्कृत शब्द है। और उसके अर्थ हैं जो मित्र नहीं—अथवा वैरी। अमित्रघात का अर्थ है वैरी का घातक।

क्या चन्द्रगुप्त जैन था ?

पुराणों में विन्दुसार का राज्य-काल २५ वर्ष लिखा है। अन्य पुस्तकों में २७ अथवा २८ वर्ष भी लिखा है। इस वंश के राजाओं का राजत्व-काल केवल अनुमान ही से वर्णन किया

---

(१) यह सर्वदा स्मरण रहे कि जब हम यह कहते हैं कि ज्ञात नहीं हुये अथवा ज्ञात नहीं तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि हमारे ज्ञान के अधिक होने की कोई सम्भावना नहीं और यह वर्णन निश्चित रूप से अन्तिम है; हिन्दू इतिहास से दिनों दिन पर्दा उठता जाता है। गत बीस वर्ष में हमारे ज्ञान की बड़ी वृद्धि हुई है और हमको पूरी आशा है कि जिस समय हिन्दू पण्डितों ने इस ओर अपने ध्यान को फेरा और भारतवर्ष ही में एक उचित संख्या पुरातत्व ज्ञाताओं की इस खोज में लगी तो इन ज्ञानों की दिनों दिन वृद्धि होती जायगी। हमें आशा है कि महाराज विन्दुसार के राज्य काल का स्पष्ट हाल किसी प्रकार ज्ञात हो जायगा।

जाता है। सिकन्दर ईसा मसीह से ३२३ वर्ष पूर्व परलोक सिधारा। चन्द्रगुप्त उस वर्ष अथवा उसके १ वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा। कहा जाता है कि उसने २४ वर्ष राज्य किया।

जिससे उसके राज्य की समाप्ति २९७ अथवा २९८ में होती है। उसके राज्य को समाप्ति किस प्रकार हुई। उसकी मृत्यु हो गई अथवा राजपाट छोड़कर जैन साधु हो गया। ये प्रश्न हैं जिनका संतोषजनक उत्तर किसी इतिहास लेखक ने नहीं दिया। जैनी पुस्तक और जैनी समाचार लेखक चन्द्रगुप्त को जैन बतलाते हैं और यह घोषणा करते हैं कि वह राजपाट त्याग कर अन्य जैन साधुओं के साथ दक्षिण चला गया। और वहाँ १२ वर्ष तक जीवित रहा और क्रमशः अपने भोजन में कमी करता गया; यहां तक हुआ कि भोजन की कमी से ही उसने प्राण त्यागे! यह तो अत्यन्त असम्भव सा प्रतीत होता है कि चंद्रगुप्त अपने राज्यकाल में जैन मत का अनुयायी हो। उसके जीवन की घटनायें स्वयं इस बात का विरोध करती हैं; कोई जैनी मृगया नहीं खेल सकता और न मांस भक्षण कर सकता है। चन्द्रगुप्त के भोजनालय के लिये प्रति दिन सैकड़ों जीवों की हत्या होती थी और चन्द्रगुप्त बड़े ठाट बाट के साथ मृगया खेलने जाता था, चन्द्रगुप्त के दण्ड नितान्त पाशविक और निर्दयता पूर्ण थे। यह तो हम स्वीकार करते हैं कि उसको राज्य के लिये उस समय की राजनीति के अनुसार यह दण्ड देना पड़ता था किन्तु हम यह स्वीकार करने के लिये सहमत नहीं

कि जैन होकर उसका शिकार खेलना अथवा मांस खाना तथा भोजनालय के लिये सैकड़ो जीवों की हिंसा करनी आवश्यक थी।

"अहिंसा" के विषय में जैन मत के के सिद्धान्त बौद्धों से अत्यन्त कठोर हैं। बौद्धों के यहां जीवहिंसा करने की आज्ञा नहीं है। किन्तु मांस खाने की आज्ञा भी नहीं रोकी। बौद्ध फिलासफर इन दोनों में किसी प्रकार का विरोध नहीं देखते। सुना जता है कि महात्मा बुद्ध ने स्वयं मांस खाया। बौद्धदेश में अब बौद्ध जनता अधिकांश मांस खाती है। मास खाना जीवहिंसा की शिक्षा देता है। जैनी इस विषय में बड़े कट्टर हैं। उनके यहां मांस खाना बिल्कुल बन्द है। जैनी जिन जिन स्थानों पर हैं मांस खाने को अत्यन्त घृणित समझते हैं और यही दशा पूर्वकाल में भी थी। अतः हम विश्वास नहीं कर सकते कि चन्द्रगुप्त जैनी था, किन्तु यह सम्भव है कि चन्द्रगुप्त अन्तिम अवस्था में जैनी होकर राजत्याग किया हो। मिस्टर बेन्सटन स्मिथ का विचार है। २९७ अथवा २९८ में चन्द्रगुप्त पचास वर्ष से अधिक आयु का न था अतः यह सम्भव है कि वह जैनी हो गया हो। अभी यह घटना प्रमाण युक्त नहीं कही जा सकती।

विन्दूसार और यूनानी शाह शाम

विन्दुसार के राज्यकाल की केवल थोड़ी घटनायें यूनानी पुस्तकों से ज्ञात हुई हैं। यूनानी स्तकों से ज्ञात हुआ है कि

BVCL 10455
954.0143
L147S(H)

विन्दुसार की सभा में यूनानी राजा एशिया कोचक और शाम का दूत "डिमास्कस" आया था और विन्दुसार व यूनानी राजा से पत्र व्यवहार भी होता था। इस पत्र-व्यवहार के सम्बंध में यह कथा प्रसिद्ध है कि विन्दुसार ने शाम के राजा से उसके देश की मदिरा और खजूरें मांगी थीं और एक फ़िलासफ़र के क्रय करने की इच्छा भी प्रगट की। प्रथम की दोनों वस्तुयें तो भेज दीं किन्तु फिलाफर के विषय में लिखा है कि यूनानी विद्वान मूल्य देकर नहीं मिलते। हम यह विश्वास नहीं कर सकते कि विन्दुसार ने यूनानी फिलासफर मूल्य देकर मांगा हो। हिन्दू इतिहास के किसी समय में फिलासफरों अथवा विद्वानों के क्रय विक्रय की प्रथा नहीं थी यदि ऐसी प्रथा रहती तो हम मान लेते कि विन्दुसार ने अपने देश की प्रथा के अनुसार यह विचार किया कि अन्य देश में भी विद्वान विक्रय होते होंगे किंतु प्रथा के न होने में विन्दुसार ऐसी मूर्खता का कार्य्य किस प्रकार कर सकता है। सम्भव है कि यूनानियों ने इसका अर्थ अशुद्ध समझा हो उसने लिखा होगा कि जिस प्रकार से हो सके लालच देकर भी किसी विद्वान् को भारत-यात्रा के लिये उद्यत किया जावे। जिससे उसकी अभिलाषा प्रगट करने का अभिप्राय होगा। सम्भव है कि यूनानी राजा ने इस लेख को "क्रय-विक्रय" का विचार समझा हो।

विन्दूसार की विजय

पण्डित तारानाथ साहेब का विचार है कि बिन्दुसार ने
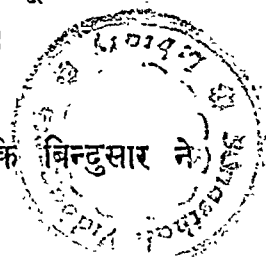
दक्षिण को जीत करके मौर्य्य-राज्यमें मिलाया। सम्भव है कि यह वर्णन ठीक हो क्योंकि अशोक ने कलिङ्ग के अतिरिक्त और कोई युद्ध नहीं किया और उसके राज्य में सारे दक्षिण और पूर्व में मद्रास के नीचे तक और पश्चिम में मैसूर राज्य का उत्तरी भाग भी सम्मिलित था।

अशोक के भाई-बहिन

महाराज अशोक २७३ अथवा २७४ ई० पूर्व गद्दी पर बैठा किंतु अभिषेक-नियम चार वर्ष पश्चात् किये गये। अर्थात् २६९ अथवा २७० ई० पूर्व में। संवालियन के बौद्ध लेखकों का कहना है महराज बिन्दुसार के १०१ पुत्र थे। जिनमें से ९९ को अशोक ने मार डाला केवल एक छोटे भाई को जीवित छोड़ा। सब इतिहास लेखक इस वर्णन को असत्य ठहराते हैं। मैंने यह सारी कथा पढ़ी है। इसमें अनेक असत्य बुद्धि के विरुद्ध और असभ्य वर्णन हैं। कोई बुद्धिमान पुरुष उसको उचित और सत्य नहीं कह सकता। ऐसे कई अत्यन्त असह्य और असम्भव घटनाओं का भी वर्णन है। संसार का इतिहास कहता है कि इस निर्बलता से किसी धर्म्म के इतिहास लेखक पृथक नहीं। वह अपने धर्म की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये जब किसी पुरुष के धर्म्म परिवर्तन की कथा वर्णन करते हैं तो उसके पूर्व आचरण और जीवन का ऐसा चित्र खींचते हैं जिससे ज्ञात हो कि वह अत्यन्त पापी और दुष्कर्मी था और नवीन धर्म ग्रहण

करते ही उसमें विचित्र परिवर्तन हो गये। मुझे यह स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं कि कभी कभी ऐसा हो भी जाता है किन्तु जब इस प्रकार के वर्णन अन्य असत्य और बुद्धिविरुद्ध वर्णन के साथ मिले हुये हों तो उनका ठीक ठीक विश्वास करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। और वह बिना किसी सत्यता के ऐतिहासिक घटना नहीं समझी जाती।

अशोक के विषय में इस प्रकार का संदेह होना केवल उन लेखों के अन्तः प्रमाणों ही से नहीं सिद्ध है। बल्कि महाराज अशोक के अपने लेख और लेख-समुदाय के प्रमाणों से भी यह फल निकलता है। जैसे महाराज अशोक एक से अधिक अनेक बार अपने लेख में अपने भाई-बहिनों का वर्णन करते हैं और उनके आदर-सत्कार के लिये अपने अध्यक्ष कर्मचारियों को जनाते हैं। उनके लेखों में उनके परिवारों का बहुधा वर्णन आता है। और अपने पुत्रों का वर्णन करते हैं। अपनी रानियों का वर्णन करते हैं। और अपने भाई बहिनों का वर्णन भी करते हैं। ऐसी दशा में स्पष्ट है कि संघालियन वाला वर्णन बिल्कुल असत्य है।

अशोक का राज्याभिषेक

कुछ लोगों का विचार है कि चूंकि महाराज अशोक की राजगद्दी और राज्याभिषेक में चार वर्ष का अन्तर है। अतः सम्भव है कि चार वर्ष उनको अपनी राजगद्दी के लिये

युद्ध करने में व्यतीत हुआ हो, किन्तु इतिहास लेखक इस मत को भी ठीक नहीं मानते। मिस्टर हेवल के कथनानुसार सम्भव है कि अनेक हिन्दू राजाओं का राज्याभिषेक उस समय तक न होता था जब तक कि प्रजा और मंत्रीवर्ग सब उसकी योग्यता को न देख लेते थे। जैसे की महाराज हर्ष का राज्याभिषेक भी उनकी राजगद्दी से कुछ समय पश्चात् हुआ था * इस बात का उचित प्रमाण सब के सम्मुख है कि हिंदुओं में राजा का ज्येष्ठ पुत्र निश्चित रूप से अपने पिता का युवराज नहीं समझा जाता था। उसके युवराज पद की निभरता प्रजा की स्वकृति पर थी। युवराज बनाने के समय भी प्रजा की स्वीकृति ली जाती थी। जैसा कि रामायण में लिखा है कि जब राजा दशरथ ने श्री रामचन्द्र जी के युवराज होने के सम्बंध में अपनी सभा के सभासदों और अध्यक्षों का मत लिया तो फिर उन्होंने एक दिन सब प्रजा की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये नियत किया। राज्याभिषेक के ठाट बाट और सफलता प्रजा के सम्मिलित होने पर निर्भर थी और यह प्रगट है कि पूर्वकाल में हिंदू जाति ऐसी बेबस और हतोत्साह न थी जो वह अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी राजा के अभिषेक में सम्मिलित होने के लिये विवश की जाती। अतः यही आवश्यक था कि राजगद्दी और राज्याभिषेक के मध्य इतना समय दिया जावे जिससे प्रजा के हृदय में अपने राजा के लिये श्रद्धा और भक्ति प्रगट करने का अवसर प्राप्त हो।

कलिङ्ग का विजय और उसके अपूर्व व विचित्र फल

मेगस्थनीज़ के लेख से ज्ञात होता है कि अंध्र और कलिङ्ग के राज्य महाराज चन्दगुप्त को कर देते थे। महाराज अशोक ने कलिङ्ग के विरुद्ध चढ़ाई की। इसके ४० वर्ष के राजत्वकाल में यही एक प्रारम्भिक और अन्तिम चढ़ाई है। उसके पश्चात् उन्होंने न तो कोई ऐसा युद्ध ही किया और न कोई अन्य राज्य ही जीता। कलिङ्ग क्यों जीता गया इसका उत्तर भी इतिहास में नहीं मिलता किंतु यह घटना सब पर प्रकट है कि कलिङ्ग की विजय से महाराज अशोक के हृदय पर कठोर आघात पहुँचा। इस आघात का जो प्रभाव हुआ वह महाराज अशोक के अपने शब्दों में लिखा हुआ मौजूद है। यह लेख संसार के लेख में अपनी समता नहीं रखता। संसार के नैतिक इतिहास में यही एक प्रमाण है कि किसी शासक ने चढ़ाई और देश-विजय को बुरा ठहराया हो। अपने अपराध के लिये सत्य और शिक्षा पूर्ण पश्चात्ताप करके जिसने अपनी सन्तान को यह शिक्षा दी हो कि वह कभी चढ़ाई और देश को विजय करने की अभिलाषा न करें और उन पापों के भागी न हों जो अन्य जीते हुये देश के जीतने और उनपर चढ़ाई करने से विजयी के शुद्ध-जीवन पर कालिमा लगाता हो।

अब तक संसार की आचरण-सम्बन्धी-नीति राजाओं, शासकों, सेनापतियों और जातीय नेताओं को ऐसे कार्य्य करने की आज्ञा देती है जो विशेष जीवन से व्यक्ति-गत पुरुष अथवा

समुदाय के लिये नीतिविरुद्ध और अपराध समझे जाते हों। जैसे जहाँ एक दरिद्र भूखे और उपवास किये हुये मनुष्य के लिये एक टुकड़ा रोटी चुराना भी उचित नहीं और उसका यह कार्य्य आचारिक और नैतिक दोनों रीतियों से दण्डनीय घृणित समझा जाता है वहाँ एक राजा को अन्य राजा के देश पर चढ़ाई करके उसको वश में कर लेना अथवा दूसरी जाति अथवा देश की स्वतन्त्रता को छीन लेना केवल घृणा के अयोग्य ही नहीं समझा जाता बल्कि इतिहास में उसके गीत गाये जाते हैं। सब इतिहास लेखक सिकन्दर कैसर, शार्लिमेन, नैपोलियन बोनापार्ट तैमूर, चंगेज़ खाँ, महमूद, बाबर, चन्द्रगुप्त इत्यादि के राग अलापते हैं और उनकी संसार के महापुरुषों में गणना करते हैं। जातियों में श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित जाति वही है जो अन्य जाति के देश और सम्पत्ति पर अधिकार, जमाये हो। सांराश साधारण जीवन में जो वस्तु पाप, अपराध, घृणित और दण्डनीय है वह नैतिक संसार में प्रतिष्ठा, स्मरण और अभिमान योग्य है। अन्य राजाओं का देश जीतना, जाति की स्वतन्त्रता पर अनुचित दबाव डालना, कुमार का निरीक्षक बनकर उनके देश पर शासन करना, और खड़्ग के बल अन्य जाति को नष्ट करना, उनके पुरुषों और बालकों को मार डालना, उनके गाँव और घर जला देना, उनकी जीविका पर अधिकार कर लेना यह सब कुछ उचित और प्रतिष्ठास्पद है। संसार का सब इतिहास सब महद्वीपों और देशों की इस प्रकार की कार्य्य

वाही से भरा है। इससे हिन्दू, मुसलमान, इसाई, बौद्ध, जैनी, पारसी, जापानी और चीनी में से कोई वञ्चित नहीं हैं। इस समय तक संसार के वीरों की सूची में उन लोगों के नाम आदर से लिये जाते हैं जिन्होंने सहस्रों बल्कि लाखों मनुष्यों की हत्या की और देशों को जीता, नैतिक सफलता के लिये अनेक प्रकार के अनुचित और घृणित व्यवहार किये, प्रतिज्ञा तोड़ी पिता पुत्र और भ्राताओं की हत्या की, उनको चक्षुहीन किया स्त्रियों के साथ निर्लज्जता का व्यवहार किया, उनको कष्ट दिया कौन-कौन से निरपराध बालकों की हत्या की, सारांश अत्याचार नहीं किये किन्तु इस पर भी संसार के बड़े बड़े कवि लेखक और इतिहासज्ञ उनकी बड़ाई और गुणगान करते रहे और उनकी कथायें सुनाते रहे और भविष्य में आने वाली सन्तान को उनकी कार्य्यवाही सुनाकर उनके पद-चिन्ह पर चलने को उत्तेजना देते रहे हैं। संसार की धार्मिक पुस्तकें इस प्रकार की शिक्षा से रिक्त नहीं। नैतिक आचरण साधारण आचरण से बिल्कुल पृथक समझा जाता है। साधारण-आचरण में असत्य बोलना, डाकामारना, चोरी करना, व्यभिचार करना, प्रतिज्ञा भङ्ग करना, शरण में आये हुओं को मारना, धोका देना, छल-कपट करना, पीठ पीछे बुराई करना, भेदिया होना इत्यादि यह सब महान् पाप हैं। समाज इन अपराधियों को दो प्रकार से दण्ड देता है—प्रथम सामाजिक असहयोग करता है। द्वितीय बन्दी-गृह में डाल देता है और हत्या की दशा में फाँसी भी देता है, उनकी सम्पत्ति

भी छीन लेता है किन्तु नैतिक उद्देश्य के लिये यह सब कार्य्य केवल उचित ही नहीं वल्कि प्रशंसा योग्य है जिसने अधिक से अधिक मनुष्यों को अपने वश में किया हो, मंत्रियों में उस मन्त्री की प्रशंसा है जिसने ऐसा करने में अपने स्वामी की सहायता की हो। सेनापतियों में उसकी प्रशंसा है जिसने अधिक से अधिक विजय प्राप्त की। यात्रियों और दूतों में उसकी प्रशंसा है जिसने धोखा छल कपट और घूस देकर अपने राजा के बैरियों के भेद जान लिये और अपना वास्तविक भेद प्रगट न होने दिया। चंद्रगुप्त के समय के हिन्दू निर्बलताओं से वञ्चित नहीं थे जैसा कि इसका पूर्ण-चित्र कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है।

जिस संसार के नैतिक आचरण का यह चित्र है उसमें कलिङ्ग की विजय के सम्बन्ध में महाराज अशोक का पश्चात्ताप और अपनी संतान को उपदेश, एक अद्वितीय विकास है जिसका प्रकाश चिरकाल तक केवल अमिट ही नहीं वरंच भविष्य में अधिक प्रकाशित होगा। यह एक ऐसा प्रकाशित तारा है जिसके संग का दूसरा तारा इस संसार में नहीं आया। हमको इस बात का अभिमान है कि यह तारा भारतवर्ष ही में प्रगट हुआ। यह तारा वंश और सभ्यता में प्राचीन हिन्दू-आर्यों की सन्तान है। और उसको यह पद बौद्धमत के अनुयायी होने से प्राप्त हुआ। संसार में ऐसे राजा हुए हैं जिन्हों ने राज्यत्याग कर सन्यास लिया। संसार में ऐसे भी राजा हुये हैं जिन्होंने

अपना जीवन अत्यंत साधारणरूप से व्यतीत किया है और ऐसे भी राजा हुये हैं जिन्होंने कदाचित् किसी के ऊपर चढ़ाई न की हो। क्योंकि ऐसा अवसर ही नहीं आया। किंतु हमें स्मरण नहीं कि संसार में कोई ऐसा भी राजा (नहीं नहीं राजाधिराज) हुआ जिसने किसी देश को विजय करके पश्चात्ताप किया हो और भविष्य के लिये नवीन विजय करने से मुखमोड़ा हो और अपनी संतान के लिये यह उपदेश किया हो कि अन्य जीते हुये देश को विजय करने से पृथक रहना चाहिये। अशोक की विशेषता इस बात में है कि राजा होते हुये भी उसने अपने राज्य वृद्धि के इस कार्य्य पर शोक प्रगट किया और भविष्य के लिये क्षमाप्रार्थी हुआ। मैं उस लेख का एक एक शब्द इस अवसर पर लिखता हूँ। जिससे कि मेरी पुस्तक के पाठक देख सकें कि हमने जो कुछ लिखा है वह ठीक है अथवा नहीं। शिला-लेखों में यह नम्बर तेरह पर गिना जाता है।

"सच्ची विजय"

"महाराज देवानाम् प्रिय * प्रियदर्शी ‡ ने कलिङ्ग को उस समय जीता जब उनके अभिषेक † को आठ वर्ष व्यतीत हो गये थे। उस अवसर पर डेढ़ लाख मनुष्य पकड़े गये थे, एक लाख

---

* देवताओं का प्यारा जिसका अनुवाद वेंसन्ट स्मिथ Sacred से करता है।

‡ प्रियदर्शी प्रसन्न चित्त हँसमुख जिसका अनुवाद वेंसन्ट स्मिथ Gracious अर्थात दयालु से करता है।

† राज्याभिषेक की प्रथा।

मनुष्य मारे गये और उससे कई गुने अधिक मर गये। कलिङ्ग की विजय से महाराजा देवानाम् प्रिय ने सत्य तुरन्त धर्म्म * की रक्षा और उस धर्म्म का प्रचार करना आरम्भ किया। इसी कारण महाराज देवानाम् प्रिय को कलिङ्ग की विजय पर पश्चात्ताप हुआ। क्योंकि किसी अन्य जीते हुये राज्य को जीतने से हत्या और प्राण-हानि होती है और लोग बन्दी होते हैं। महाराज देवानाम् प्रिय के लिये यह घटना अत्यन्त शोक और चिन्ता की है। किन्तु एक और कारण से महाराज को और भी अधिक चिन्ता हुई। और वह यह कि इस प्रकार की विजय से उन ब्राह्मणों और अन्य मत मतान्तरों के मनुष्यों और गृहस्थों को हानि पहुँचती है अथवा उनकी हत्या होती है अथवा अपने सम्बन्धियों से पृथक हो जाते हैं जो इन धार्म्मिक कर्तव्यों का पालन करते हैं या जो इस धर्म का पालन करते हैं, जिसका वर्णन निम्नाङ्कित है—

यानी—अपने से बड़ों की बात को सुनना।

अपने माता पिता की बात को सुनना।

अपने गुरुओं की बात को सुनना।

अपने मित्रों, परिचितों, साथियों, सम्बन्धियों, सेवकों और दासों से श्रद्धा पूर्वक मिलना और बर्ताव करना। †

---

* सत्यधर्म्म से बुद्धधर्म्म का अभिप्राय है।

† इन धार्मिक कर्तव्यों का वर्णन महाराज अशोक ने बार बार

अथवा उन लोगों के मित्रों, परिचितों, साथियों और सम्बन्धियों को हानि पहुँचती हो जो स्वयं तो सुरक्षित हैं किन्तु जिनका प्रेम अपने इन सम्बन्धियों के लिये किसी प्रकार से कम नहीं हुआ इस प्रकार उनको भी इस तरीक़े से हानि पहुँचती है।

और इस प्रकार की हानि के लिये जो कुल मनुष्यों में विभाजित हो जाती है महाराज देवानाम् प्रिय को शोक है क्योंकि ऐसा हो नहीं सकता कि कोई भी मनुष्य किसी न किसी मत का अनुयायी न हो *। जैसा कि उस समय जितने मनुष्यों की हत्या हुई अथवा मारे गये अथवा बन्दी किये गये उनके सौवें अथवा हज़ारवें भाग को यदि अब भी वही संकट सम्मुख आवे तो वह घटना देवानाम प्रिय के लिये शोक का कारण होगा।

अपने घोषणा पत्र में किया है और इस कारण यहाँ भी उन्हीं को दुहराया है। यह नोट करने योग्य है कि मातृसेवा, पितृसेवा और आचार्यसेवा के अतिरिक्त महाराज के निकट अपने मित्रों, सम्बन्धियों, परिचितों, साथियों, यहाँ तक कि सेवकों और दासों से भी अच्छा वर्ताव करना धर्मात्मा होने के लिये आवश्यक है।

* अभिप्राय यह है कि विजित राज्य का कोई मनुष्य भी ऐसा नहीं बचता जिसको राजा की चढ़ाई से हानि न पहुंचती हो। किसी को अपने निजी में, किसी को अपने मित्रों, सम्बन्धियों अथवा सेवकों में, धर्मात्मा, अधर्म्मात्मा उनके सम्बन्धी, मित्र, सेवक सबको किसी न किसी प्रकार से हानि पहुँचती है। हालां कि उनमें सब अपने विचार के अनुसार धार्मिक कर्तव्य करते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त यदि कोई मनुष्य महाराज के साथ अधिकता भी करे तो भी जहाँ तक सम्भव हो सके महाराज को सहन करना चाहिये। महाराज देवानाम् प्रिय को अपने राज्य के असभ्य लोगों पर भी प्रेम की दृष्टि है और वे चाहते हैं कि इन लोगों के विचार भी शुद्ध हो जावें नहीं तो महाराज को पछतावा होगा। उनको समझाया जाता है कि वे अपने व्यवहार को छोड़ दें जिससे कि उनको बार बार दण्ड देने की आवश्यकता न पड़े क्योंकि महाराज की यह इच्छा थी कि सब प्राणधारी सुरक्षित हो जावें और उनमें सहनशीलता आ जावे और उनको शान्ति व प्रसन्नता प्राप्त हो। महाराज देवानाम् प्रिय के मत में सत्य-धर्म की जय ही संसार में सब से बड़ी विजय है। जिसको महाराज केवल अपने ही राज्य में नहीं बल्कि छः सौ प्रसङ्ग तक अपने पड़ोसियों के राज्य में प्राप्त कर लिया है। जहाँ यूनानियों का राजा एन्ट्यूकस * रहता है और शाम में भी जहाँ चार राजा निम्न लिखित रहते हैं अर्थात् टॉलमी ‡ ऐन्टीगोनस, मागस और इसकन्दर।

---

* एन्टयूकस शाम और पश्चिमी एशिया का बादशाह सन् २६१ वर्षपूर्व से २४६ पूर्व तक शासक था।

‡ टुलमी फीलडलफस मिश्र का बादशाह सन् २५८ वर्ष पूर्व से २४७ वर्षपूर्व तक, मागस बादशाह साइरियन (जो उत्तरी अफरीका में है) टुलोसमी का भाई२८९ वर्ष पूर्व से २८५ वर्ष पूर्व तक, एन्टीगोनस बादशाह मकदूनिया २७७ वर्ष पूर्व से २३९ वर्ष पूर्व तक। इसकन्दर बादशाह एपरीस २७२ पूर्व वर्ष गद्दी पर बैठा। देखो वेंसन्ट स्मिथ का अशोक तृतीय बार का छपा पृष्ठ ४३।

दक्षिण में भी चोल † पाण्डिया लोगों के बीच ताम्रपर्णी नदी तक और महाराज की अपनी प्रजा यवन * कम्बोज, नाभक के नाभपन्ती, भोज, पितेनिक, आन्ध्र, पुलिन्द लोगों में, अभिप्राय यह कि प्रत्येक स्थान पर लोग सत्यधर्म्म के अनुयायी थे। जहाँ महाराज के यात्री और दूत नहीं पहुँचते थे वहाँ भी लोग सत्य धर्म के विषय में महाराज की आज्ञा और घोषणा को सुनकर उनके अनुसार कार्य करते हैं और भविष्य में करेंगे। इस प्रकार से प्राप्त की गई प्रत्येक स्थान की जीत आनन्द को देने वाली है। धर्म्म की विजय में आनन्द मिलता है। किन्तु आनन्द तो एक छोटी सी बात है। महाराज देवानाम् प्रिय समझते हैं कि इससे मुख्य फल वही है जो परलोक के लिये प्राप्त होता है।

---

† मैंने एक स्थान पर वर्णन किया है कि दक्षिण में चोल और पाण्डिया नाम के स्वतंत्र राज्य थे। ताम्रपर्णी नदी जिला तिनावली में है।

* यवन लोगों से अभिप्राय उन यूनानी निवासियों से है जो हिन्दूकुश के समीप रहते थे और महाराज अशोक की प्रजा में गिने जाते थे। कम्बोज पश्चिमी हिमालय के रहने वालों का नाम है। भोज बरार में एलिचपुर के राज्य में रहते थे। आन्ध्र उड़ीसा के दक्षिण और मद्रास के उत्तर भाग का नाम है। पुलिंद उसी राज्य के असभ्य जातियों को कहा जाता है। नाभयन्ती व पितेनक अज्ञात है देखो वेंसन्ट स्मिथका अशोक पृष्ठ १८८। केम्ब्रिज हिस्ट्री में (५१४) परतोपन्तिका को हैदराबाद दक्खिन में औरङ्गाबाद का निवासी कहा गया है।

अतः इसी अभिप्राय से यह धर्म्म-मर्य्यादा लिखी गई है जिससे कि मेरे पुत्र-पौत्र जो मेरे बाद आवें वह किसी नवीन देश को विजय करने की चेष्टा न करें।

किन्तु यदि किसी संयोग से यह किसी नवीन विजय के प्राप्त करने की इच्छा रक्खें तो उनको चाहिये कि कोमलता और सहनशीलता से काम लें। क्योंकि असली विजय धर्म की विजय ही है। वह दोनों लोक में काम आती है। उनको सुख पुरुषार्थ नहीं समझना चाहिये क्योंकि वह इस लोक में और परलोक में दोनों स्थानों में काम आता है।

नोट—कलिङ्ग या पत्तनलिङ्ग उस देश का नाम है जो गोदावरी और महानदी के बीच बङ्गाल की खाड़ी के किनारे स्थित है। लगभग सम्पूर्ण उड़ीसा उसी में सम्मिलित है। इस घोषणा में जिन नियमों का प्रचार किया गया है और जिन बातों पर प्रकाश डाला गया है उनको हम संक्षेप में पृथक करके नीचे लिखते हैं।

(१) महाराज का कलिङ्ग विजय पर पश्चात्ताप।

(२) अविजित देशों के विजय करने के नियम का विरोध।

(३) उसकी मनाही।

(४) उसके कारण जिनमें इस विषय पर प्रकाश डाला गया है कि विजित राज्य की मनुष्य-संख्या के प्रत्येक भाग को किसी अन्य शासक की चढ़ाई से किसी न किसी दशा में अवश्य हानि पहुँचती है और इससे उनको दुःख होता है।

(५) मातृमान, पितृमान, आचार्यमान और अपने सम्बन्धियों, मित्रों, साथियों, सेवकों और दासों से अच्छे बर्ताव के नियम।

(६) महाराज का यह विश्वास है कि प्रत्येक धर्म में यह सिद्धान्त माननीय है।

(७) महाराज की यह धारणा है कि यदि फिर ऐसा हो तो महाराज को बहुत दुःख होगा।

(८) महाराज का उपदेश अपने राज्य के सीमान्त के असभ्य जातियों को।

(९) महाराज का यह विश्वास कि यदि मुझे कोई हानि भी पहुँचाये तो मुझे सहन करना चाहिये।

(१०) सब जीवधारियों के प्रति महाराज की मंगल कामना थी अर्थात् वे सुरक्षित हो जावें, उनमें सहनशीलता की शक्ति आवे और उनको शान्ति और सुख की प्राप्ति हो।

(११) महाराज की मित्रता अन्य देशों के महाराजाओं से और अन्य देशों में धर्म का प्रचार।

(१२) महाराज की सीमा पर के राज्य की प्रजाओं का वर्णन।

(१३) यह सिद्धान्त कि "धर्म की जय" सब से बड़ी विजय है।

(१४) धर्म्मपालन से आनन्द मिलता है। किन्तु इस लोक का आनन्द परलोक के आनन्द की अपेक्षा तुच्छ है।

(१५) यह अभिलाषा कि मेरे स्थानापन्न किसी अन्य देश को विजय न करेंगे ।

(१६) यदि वे ऐसा करने से न मानें तो उनको कोमलता और सहनशीलता की शिक्षा ।

(१७) पुरुषार्थ की महिमा और उसका फल ।

(१८) धर्म का वास्तविक गुण अर्थात् वह जिससे लोक और परलोक दोनों का सुख मिले । *

हमारी दृष्टि में महाराज अशोक की कुल घोषणाओं में यह घोषणा और उनकी सारी कार्यवाहियों में यह उपदेश ही इस प्रकार का है जो उनको संसार के इतिहास में अमर अथवा अमिट बनाने के लिये पूर्ण है और जो उनको संसार के कुशल शासकों की सूची में शिरोमणि का पद देता है ।

महाराज अशोक का बौद्ध मत में सम्मिलित होना ।

कलिङ्ग की चढ़ाई अभिषेक के नवें वर्ष हुई और उस समय से महाराज को पश्चात्ताप आरम्भ हुआ और उनका विचार बौद्ध धर्म की ओर हुआ । ढाई वर्ष तक वह प्रारम्भिक साधनों में लीन रहे (अर्थात पूजा पाठ करते रहे) उसके पश्चात् पुनः वह कुछ दिनों नियमानुसार बौद्ध धर्म में सम्मिलित रहे । कदाचित भिक्षु (साधु) बन गये । चार वर्ष के अन्त में उन्होंने धर्म का नियमा-

---

* कणाद मुनि के वैशेषिक दर्शन में यही परिभाषा धर्म की लिखी हुई है ।

नुसार प्रचार आरम्भ कर दिया और घोषणा प्रचारित करने लगे। बहुधा लोगों को इस विषय पर आश्चर्य होता है कि यह किस प्रकार हो सकता है कि महाराज साधु होकर राजा बने रहे, क्योंकि राजा और साधु के कर्तव्य में बड़ा अन्तर है। इसके अतिरिक्त महाराज के बाल बच्चे थे इनको भी उन्होंने न त्यागा। एक गूढतत्व है जिसका सिद्ध करना आवश्यक है। वास्तविक बात यह है कि जिस प्रकार आर्यों के यहाँ यज्ञोपवीत के संस्कार से वैदिक धर्म में नियमानुसार प्रवेश होता है उसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी साधु अथवा भिक्षु बनने से प्रवेश होता है। वैदिक धर्म के अनुसार प्रत्येक आर्य-बालक के लिये आठ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक ब्रह्मचारी बनना आवश्यक है। ब्रह्मचारी बनते ही वह अपना घर और अपने माता, पिता, भ्राता और भगिनि को त्याग कर गुरुकुल में अथवा आचार्य के आश्रम में चला जाता है। जहां कम से कम २५ वर्ष की आयु तक रहना चाहिये। हम नहीं कह सकते कि प्राचीन-काल में कहां तक इस पर कार्य होता था किन्तु यह हम जानते हैं कि वर्तमान काल में इसके अनुसार कार्य बिलकुल नहीं होता। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वणिकों के बालकों को यज्ञोपवित दिया जाता है। उनके शरीर पर मृगछाला डाली जाती है। उनके हाथ में दण्ड दिया जाता है। भिक्षा भी उनसे मँगवाई जाती है। एक दिन में सब प्रथाओं की समाप्ति हो जाती है। और दक्षिणा गुरू को दी जाती है। बस इसके

पश्चात् पुनः वह अपने घर में रहता है और ब्रह्मचर्य्य समाप्त हो जाता है।

बौद्ध लोगों की यह रीति है कि वह प्रत्येक बालक को नियमानुसार प्रवेश कराते हैं और उसको रीति के अनुसार साधुआश्रम में भरती कर देते हैं वह वहाँ जाकर कुछ दिन तक धर्म का साधन करता है। कुछ सप्ताह, कुछ महीने अथवा कुछ वर्ष रहकर लौट आता है। और पुनः अपना गृह कार्य आरम्भ करता है। उनके यहां साधु होकर पुनः गृहस्थी बनना वर्जित नहीं है जैसे आजकल भी ब्रह्मा तथा अन्य बौद्ध-देशों में ऐसा ही होता है। अतः हमारा मत है इस प्रकार महाराज अशोक ने भी बौद्ध-धर्म्म में प्रवेश किया। वह नियमानुसार साधु बने। कुछ दिन अर्थात वर्ष भर अथवा इससे न्यूनाधिक आश्रम में अथवा विहार में रहे और साधुओं का जीवन व्यतीत किया उसके पश्चत् पुनः वे अपने गृह-भवन में आये और पुनः सारा जीवन गृहस्थी-बौद्ध रहे। तिब्बत के लामा उस राज्य के शासक हैं। एक मुगल भी एक बार लामा हुआ था। इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उदाहरण हैं कि बौद्ध-भिक्षु बड़े बड़े देशों के शासक हुये हैं।

बौद्ध-इतिहास में यह बात कोई आश्चर्य-जनक नहीं है। वेन्सन्ट स्मिथ और अन्य इतिहास लेखक यह स्वीकार करते हैं कि महाराज अशोक चर्च में धर्म्म की संस्था क भी प्रधानाध्यक्ष थे जैसे कि रोमन कैथोलिकक धर्म्म का पोप होता है।

अथवा जैसे अंग्रेजी चर्च में आर्चविशप आफ कन्टरबरी राजा का स्थानापन्न समझा जाता है। इंगिलस्तान का राजा इङ्गलैण्ड के चर्च का प्रधानाध्यक्ष है। मुसलमानों में भी वर्तमान-खलीफा पैगम्बर का स्थानापन्न समझा जाता है। और उसकी पदवी "अमीरुल-मोमनीन" अतः नमाज़ में उसका लेख पढ़ा जाता है। मेरे अनुमान से महाराज अशोक उसी प्रकार बौद्ध चर्च के प्रधानाध्यक्ष अथवा खलीफ़ा अथवा पोप थे। उन्होंने जो घोषणायें प्रचारित की वे राज-पद से की। नियमों का नैतिक-पालन उनके सेवकों ही तक निर्भर था। प्रजा के लिये केवल उपदेश था। बौद्ध धर्म्म के तीन स्तम्भ हैं जो सब से श्रेष्ठ माने जाते हैं। १-भगवान बुद्ध, २-धर्म्म के नियम, ३-संघ अथवा पन्थ। समुदायी-पद से जिस कार्य्य को भिक्षुओं का समुदाय करता है केवल एक घोषणा है जिसके वाक्य से यह प्रगट होता है कि महाराज ने चर्च के आरगेनिजेशन * में हाथ बटाया, जहाँ उन्होंने विरोधी, मुँह मोड़ने वाले लोगों के निकाले जाने का घोषणा-पत्र दिया है किन्तु मेरे विचार में यह आज्ञा भी "संघ ही की आज्ञा" के अनुसार थी। उसके शब्दों की हम आगे व्याख्या करेंगे। यहाँ पर केवल यह दिखलाने का अभिप्राय था कि महाराज अपने राज-पद से बौद्ध-भिक्षु न हुये थे।

कलिङ्ग विजय करने और बौद्ध धर्म्म में सम्मिलित होने

* धर्म के प्रचार का संघ या संस्था।

से पूर्व महाराज के जीवन-वृत्तान्त किसी को ज्ञात नहीं। अभिषेक से नवें वर्ष में उन्होंने बौद्ध-धर्म्म में प्रवेश किया और राज्याभिषेक गद्दी पर बैठने के चार वर्ष पश्चात् हुआ अर्थात् इस बारह तेरह वर्ष का कोई ऐतिहासिक वृत्तान्त किसी को ज्ञात नहीं। इसके पश्चात् के लेख अन्तिम काल तक के पाये गये हैं। कहा जाता है कि इस समय में वे सनातनधर्म्मी † हिन्दू थे। शिकार खेलते थे, सभायें रचते थे और मांस खाते थे। उस समय के हिन्दू शास्त्रों ने शिकार खेलने, जुआ खेलने, अन्य स्त्रियों के साथ प्रसंग करने, मद पान करने की बुराई की है। कौटिल्य ने भी मृगया में अत्यन्त लिप्त रहने को बुरा लिखा है। और यह भय दिखलाया है कि यदि जनता नाच रंग में अधिक लिप्त हो गई तो संदेह है कि प्रजा विलास-परायण होकर कृषी और व्यापार के कामों में भूलें करने लगे और उससे देश-दशा पर हानि न आवे। किन्तु उसने यह भी लिखा है कि शिकार खेलने में लाभ भी है।

यह प्रत्यक्ष है कि राजा चन्द्रगुप्त शिकार खेलते थे और उनके समय में नाच रंग की सभायें भी बैठती थीं। जनता के खेल भी होते थे। कहाँ तक उस समय मदिरा की चलन थी इसके विषय में कोई पक्का प्रमाण नहीं है। यूनानी लेखकों ने

† यहाँ पर सनातन धर्मी शब्द का प्रयोग ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त किया है। शेष का वर्णन योरोपियन इतिहास लेखकों ने किया है जिसके लिये कोई प्रमाण नहीं केवल अनुमान है।

कई बार लिखा है कि हिन्दुओं के स्वस्थ्य रहने का यह कारण था कि वे मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे केवल एक स्थान पर यह लिखा है कि वे धार्मिक प्रथाओं में मदिरा † पीते थे। मेरे विचार में यह असम्भव है कि धार्म्मिक प्रथाओं में मदिरा का प्रयोग होता हो। कदाचित सोमरस को मदिरा कहा हो अथवा कोई अन्य ऐसी ही वस्तु होगी जो धार्म्मिक प्रथाओं में प्रयोग की जाती हो। जिसका मदिरा नामकरण गया हो। वेन्सन्ट स्मिथ एक स्थान पर ‡ लिखता है कि "महराजा अशोक शिकार खेलते थे मांस खाते थे और अपनी राजधानी की प्रजा को यह आज्ञा देते थे जिसमें भोज, गाना और मदिरा का समावेश हो।"

इस लेख के लिये उन्होंने दो घोषणाओं का प्रमाण दिया है। अर्थात् शिला लेख न० १ व ८, इन दोनों लेखों में मदिरा का कोई वर्णन नहीं। महाराज मांस खाने और शिकार खेलने का वर्णन करते हैं किन्तु मदिरा का कहीं वर्णन नहीं। मेरे विचार में यह मत ठीक नहीं कि महराज स्वयं मदिरापान करते थे। अथवा अपनी प्रजा को इस प्रकार के भोग विलास की आज्ञा देते थे—जिसमें मदिरा पी जाती थी। इससे यह भी परिणाम नहीं निकलता कि उस समय इस देश में कोई मदिरा नहीं पीता था। हमारे अभिप्राय के लिये यह काफी है कि मदिरा का पीना,

* केम्ब्रिज हिस्ट्री पृष्ठ ४१२

† अशोक संस्करण ३, पृष्ठ २३

जुआ खेलना और अन्य स्त्री के साथ प्रसंग करना दुराचार समझे जाते थे। केवल शिकार के सम्बन्ध में कुछ विरोध था जैसा कि ऊपर प्रगट किया गया है।

बौद्धधर्म्म में प्रवेश होने के पश्चात् उन्होंने अपनी धार्मिक घोषणाओं का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। इन घोषणाओं का क्रमबद्ध स्थिर करना कठिन है। किन्तु जहाँ तक इनके लेख से इस विषय में सहायता मिलती है उस सहायता से इतिहास लेखकों ने उसका क्रम दिया है।

अशोक की घोषणायें।

अशोक की घोषणायें तीन प्रकार की हैं प्रथम वह जो शिला लेखों पर हैं। द्वितीय वह जो स्तम्भों पर लिखी गई हैं जिनको लाट कहते हैं। तृतीय स्फुटित।

पहली घोषणाओं के भी चार भेद हैं।

(अ) वह जिनको छोटी छोटी शिलाओं की घोषणा कही गई हैं जो संख्या में तीन हैं।

(ब) वह जो भावरू घोषणा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(ज) चौदह घोषणायें वह जो साधारणतः शिलाओं पर की घोषणायें कहलाती हैं।

(द) वह जो कलिंग की घोषणायें कहलाती हैं। स्तम्भों की घोषणाओं में (अ) सात बड़ी घोषणायें हैं (ब) चार छोटी तराई की स्मरणीय घोषणायें।

एक ही घोषणा अनेक स्थान पर लिखी हुई है। और लेखों में कई स्थान पर शब्दों में भी अन्तर है।

इन घोषणाओं के लेखों को परिष्कृत करने और उनका अर्थ निकालने में योरोपियन पण्डितों ने बड़ा ही परिश्रम किया है। तौभी अनेक भाग अभी तक संदेहयुक्त हैं। इस अध्याय में हम उन घोषणाओं का सारांश वर्णन करेंगे क्योंकि वास्तव में ये घोषणायें ही महाराज अशोक की कथा की जान हैं। उससे महाराज के जीवन वृत्तांत ज्ञात होते हैं यही एक दर्पण हैं जिनमें महाराज के आचरण व कार्यवाहियों का प्रतिबिम्ब उतरता है।

प्रथम की दो घोषणायें।

कलिंग की घोषणा में जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। और पहाड़ी घोषणाओं में महाराज अपने बौद्ध धर्म्म में सम्मिलित होने की कथा लिखते हैं।

प्रथम घोषणामें वह बताते हैं कि दो वर्षतक वह साधारण गृहस्थी-शिष्य बनकर धर्म में परिश्रम करते रहे। किन्तु अब वर्ष से अधिक समय व्यतीत हुआ कि वह संघ में नियमानुसार सम्मिलित होकर ईश्वराराधन कर रहे हैं।

प्रथम जो देवता * लोग जम्बूद्वीप के लेखकों से पृथक थे अब वह मिल गये हैं यह पुरुषार्थ का फल है। यह फल केवल

* देवताओं से उन दिव्य और पवित्र शक्तियों से अभिप्राय है जिन्होंने अपने अटूट सत्कर्म्म, आराधना और परिश्रम की सहायता से अपने आपको देवता पद प्राप्त करने योग्य बना लिया है। बौद्धधर्म्म में हिन्दुओं के देवी देवता को नहीं माना गया है। बल्कि आत्मज्ञानी और त्यागी मनुष्यों की श्रेणी ही को देवता कहा गया है। हिन्दुओं में दवता शब्द उन पूर्वजों के

बड़े होने से प्राप्त नहीं होता। यदि निम्न श्रेणी का मनुष्य भी पुरुषार्थ करे तो उसको भी स्वर्गीय † सुख प्राप्त हो सकता है।

अतः यह घोषणा की * जाती है कि सब छोटे बड़े को (धर्म्म के मार्ग में) पुरुषार्थ करना चाहिये।

लिये भी प्रयोग होता है और ईश्वर के उन उज्वलित शक्तिशाली और शुभ कार्य्यों के लिये भी प्रयोग होता है जो संसारिक जनों के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। उनको कविता द्वारा मनुष्य शरीर मान कर एक प्रकार का कल्पित पुरुष समझते है। यहां पर महाराज अशोक के अभिप्राय से यह ज्ञात होता है कि उस समय तक देवता लोग जंबूद्वीप, अर्थात् भारतवर्ष के लोगों से पृथक रहते थे। सम्भव है, यह अभिप्राय हो कि उनसे अप्रसन्न थे और उनसे किसी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध न रखते थे। किन्तु अब मेरे अन्य और पड़ोसियों के उद्योग और परिश्रम से वह और हम हिल मिल गये हैं और हमको उनकी सन्निकटता और उनकी प्रसन्नता प्राप्त हो गई है। प्राकृतिक शब्द जिनका अनुवाद मिले हुये अथवा पृथक रक्खे हुये किया गया है (मिसा) या (अमिसा) हैं उनकी सन्निकटता और प्रसन्नता से यह अभिप्राय है कि हम भी उनके पद को पहुंच गये।

* आत्मिक आनन्द और प्रसन्नता

† उद्योग परिश्रम और साहस

मेरे पड़ोसियों को भी यह शिक्षा † ग्रहण करनी चाहिये कि यह पुरुषार्थ चिरकाल तक स्थिर रहे।

इस मन्तव्य * की वृद्धि होगी और अवश्य होगी कम से कम डेवढ़ी तो अवश्य होगी। और इस मन्तव्य को जहाँ जहाँ स्थान मिले पर्वतों पर लिखना चाहिये। और मेरे राज्य में भी जहाँ २ पत्थर के स्तम्भ हैं वहाँ भी यह लिखा जावे।

इस घोषणा के नीचे का वाक्य प्रगट करता है कि यह घोषणा केवल महाराज की ओर से ही नहीं प्रचारित किया गया बल्कि इस घोषणा के करने वाले २५६ प्रचारक थे।

ब्रह्मगिरि में जो घोषणा इसके साथ की गई है, वह महराज अशोक के आज्ञानुसार दक्षिण की स्वर्ण नगरी के वाइसराय और प्रधानाध्यक्षों की ओर से और अन्य अध्यक्षों के नाम से हैं।

द्वितीय घोषणा

द्वितीय घोषणा में उस धम्म की व्याख्या की गयी है जिसका प्रचार अथवा जिसका विस्तार महाराज का मुख्य उद्देश्य था। अर्थात—

(१) माता पिता की बात सुनना चाहिये (मातृ मान पितृमान)

(२) इसी प्रकार सब जीवधारियों पर दया करने का मुख्य उद्देश्य निश्चित करना चाहिये।

---

† शिक्षा अथवा पाठ * धम्मं, विश्वास या भक्ति।

(३) सत्य बोलना चाहिये।

(४) शिष्यों को गुरुओंका आदर सत्कार करना चाहिये।

(५) सम्बन्धियों के साथ सदाचार का व्यवहार होना चाहिये।

यह वह धर्म्म की नींव है जिन पर कार्य्य करना चाहिये। यही प्राचीन धर्म है और इसी से दीर्घ-जीवन प्राप्त होता है और इसके अनुसार मनुष्यों को कार्य्य करना चाहिये।

यहाँ पर हम यह भी बता देना चाहते हैं कि प्राचीन भारत में धर्म्म से अभिप्राय किसी मुख्य सिद्धांत से अथवा नियमों से नहीं था और न नियमों के मानने और सिद्धांतों पर हस्ताक्षर कर देने से कोई पुरुष धर्मात्मा बन जाता था। हिन्दुओं का यह विश्वास है कि धर्म्म कोई मशीन अथवा मशीन से गढ़ी हुई कोई वस्तु नहीं है जो सारे संसार के लिये एक हो। वैयक्तिक धर्म्म प्रत्येक पुरुष का पृथक २ होता है। और धर्म्म शब्द केवल मनुष्यों पर ही नहीं लागू होता बल्कि संस्कृत में उसका प्रयोग अत्यन्त विस्तृत है। जैसे कहा जाता है कि अग्नि का धर्म्म प्रज्वलित होना है। पानी का धर्म बहना है इत्यादि। प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य को जो प्राकृतिक कार्य्य बताया है, वही उसका धर्म्म है। मनुष्य के प्रति धर्म्म शब्द का व्यवहार करते हुये उससे उन कर्तव्य-संग्रह से अभिप्राय है जो उनका स्वभाव उन पर स्थिर करता है। स्वाभाव का सम्बन्ध अनेक वस्तुओं से है, जैसे पैतृक-सम्पत्ति से, शिक्षा से, अनुभव से सामाजिक और नैतिक पोजिशन से, संगत के प्रभाव से, अवस्था से और उद्यम इत्यादि से।

बालक का जो धर्म्म है वह कई बातों में युवा और वृद्ध पुरुषों के धर्म्म से भिन्न है। आचारिक धर्म्म प्रायः सब के लिये समान है और वह वस्तु जो सभ्यता अथवा स्वभाव के नाम से पुकारी जाती है प्रत्येक देश और जाति में जल-वायु जातीय विशेषताओं, प्रथाओं, आचारिक और आत्मिक परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन होती रहती हैं। आत्मिक-जगत में धर्म्म से अभिप्राय उस सम्बन्ध से है जो प्रत्येक मनुष्य उस अपरिमित, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, अनन्त शक्ति से स्थापित करता है। जो इस सारे संसार के कारण का कारण है। और जिसको न कोई समझ सकता है और न वर्णन कर सकता है। संसार अपार है असीम है इसी प्रकार वह शक्ति भी असीम और अपार है। वेदों ने अत्यन्त सत्यता और स्पष्टता से कह दिया है कि कोई कह नहीं सकता कि वह शक्ति क्या है? यह है अथवा वह है—यह शक्ति न गुण गान करने से प्रसन्न होती है न अवगुण निकालने से अप्रसन्न होती है। इस शक्ति को कोई माने अथवा न माने, न मानने वाले को स्वर्ग मिलता है और न नहीं मानने वाले को नरक मिलता है। मनुष्य के आत्मिक बल का अनुमान उसकी अपनी प्राकृतिक शक्ति से है। जिस मनुष्य में जितनी ही प्राकृतिक शक्ति है उतनी ही आत्मीयता उसमें समझी जाती है। आत्मीयता मनुष्य के कर्तव्य पर, उसके स्वभाव और परोपकार की शक्ति पर निर्भर है न कि भिन्न भिन्न सिद्धांत मानने, भिन्न २ रीतियों से पूजा पाठ करने,

भिन्न भिन्न पंथो और अवतारों को मानने से और किसी पुस्तक को ईश्वर वाक्य कहने से आत्मीयता समझी जाती है। (Creative Power) केवल विश्वास अथवा सिद्धान्त का वास्तविक सम्बन्ध आत्मा से नहीं है, सिद्धान्तों को मानना न मानना एक मस्तिष्क सम्बन्धी व्यायाम है । हाँ संसार में पवित्र-जीवन रखना किसी को कष्ट न पहुँचाना स्वार्थ, लोभ, क्रोध और भोग से दूर रहना, संसार की व्यर्थ वासनाओं से पृथक हो जाना आत्मीयता की कसौटी है।

बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों अर्थात् मजहबी विश्वासों के विरुद्ध एक प्रोटेस्ट था किन्तु शोक है कि बौद्ध धर्म को भी लोगों ने नियमवद्ध कर दिया । बौद्ध धर्म के प्रचारक का अभिप्राय वादा विवाद करना, शास्त्रार्थ करना, तर्क करना, सिद्धान्तों का निश्चित करना अथवा सिद्धान्तों का प्रचार न था । उसका अभिप्राय यह था कि जनता को शुभ कर्म्मों की ओर आकर्षित किया जावे । जैसे महाराज अशोक की सारी घोषणाओं में हम कहीं उन अन्धविश्वासों का नाम तक नहीं पाते जो सारे धार्मिक मतों में सिद्धान्त समझे जाते हैं । उन्होंने ईश्वर की सृष्टि और प्रलय के विषय में कुछ वर्णन नहीं किया है और न उन्होंने आत्मा की कहीं चर्चा की है, न इलहामी पुस्तक अथवा अवतारों की। उन्होंने वार वार यही शिक्षा दी है कि मनुष्य को चाहिये कि अपने माता पिता का मान करे उनकी सेवा करे, अपने गुरुओं का सत्कार करे । अपनी माता के साथ उदारता और दयालुता का वर्ताव करें प्रत्येक जीवधारी की रक्षा करें, सत्य

बोलें अपने संबन्धियों मित्रों और सेवकों के साथ दया भाव रक्खें। भिन्न २ मत मतांतरों के साथ झगड़ा न करें। सब मत मतांतरों की प्रतिष्ठा करें। सब के साथ सर्वप्रियता का वर्ताव रक्खें।

हमने संसार में भ्रमण करके यह देखा है कि बहुत से धर्म रहित मनुष्यों में ईश्वर-भक्तों और आस्तिक मनुष्यों की अपेक्षा अधिक आत्मीयता, सत्यभाषण और सत्कर्म पर है, किसी सिद्धान्त पर नहीं। सत्य-भाषण और सत्कर्म्म स्वयं एक ऐसा शस्त्र है जो मनुष्य का इस मर्त्यलोक में आत्मीयता की ओर ले जाता है।

सत्य सब से श्रेष्ठ और सच्चा और पवित्र धर्म्म है। जिस समय यहाँ के हिन्दू सत्य बोलते थे और सत्कर्म करते थे वह निर्विघ्न थे। धन से परिपूर्ण थे। और आत्मीयता में संसार की सारी जातियों में अग्रसर थे। नैतिक दासता में पड़ने पर भी लगभग पंद्रह सौ वर्ष तक संसार के यात्री यह कहते हैं कि भारतवर्ष के लोग सत्यभाषी और विश्वसनीय हैं। भारत में अन्य जातियाँ आईं और हिन्दुओं ने उनको अपना बना लिया। किन्तु जब से हिन्दुओं ने सिद्धांतों के झगड़े में पड़कर सत्य-भाषण और सत्कर्म को छोड़ा और सिद्धान्तों को धर्म्म के सिंहासन पर बैठा दिया तब से उनकी अवनति आरम्भ * होने लगी और वह अन्य जातियों के दास बन गये।

---

* धर्म्म के विषय में एक संक्षेप विवरण एक पृथक अध्याय में इस पुस्तक के अन्त में लिख रहा हूं। जिसमें इसी विचार को विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

यहां पर यह नोट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मैं इस बात का प्रचार नहीं कर रहा हूँ कि लोगों को बुद्धिविज्ञान बिल्कुल छोड़ देना चाहिये और जीवन और मृत्यु के प्रश्न पर विचार न करना चाहिये। मैं केवल यह कर रहा हूँ कि यह मस्तिष्क सम्बन्धी जमनाष्टिक मेरे विचारानुसार धर्मात्मा बनने के लिये आवश्यक नहीं। मैं महाराजा अशोक को इस लिये संसार के महापुरुषों के शिखर की श्रेणी में गिनता हूं कि उन्होंने बौद्ध-धर्म्म के सिद्धांतों का प्रचार ही नहीं किया वरंच सत्य-भाषण, सत्कर्म्म, हिन्दुओं के प्राचीन सत्य-सनातन-मंत्र, मातृमान पितृमान आचर्य्यमान का भी प्रचार किया। हमारे प्रति यह बात भी अभिमान योग्य है कि इस संक्षिप्त उपदेश में महाराजा अशोक सेवकों और दासों को भी न भूले। दास उस समय भारतवर्ष में किस प्रकार के थे? उसका वर्णन उस समय के आर्य्य सभ्यता के चित्र में आ चुका है। उनके साथ और साधारण दासों के साथ दया भाव रखने को धर्म्म का अंग बनाना, महाराजा अशोक के उदारचित्त का पक्का प्रमाण है। मैं आशा करता हूँ कि आधुनिक समय के हिन्दू उनकी शिक्षा के इस भाग को स्वर्णाक्षरों से अपने हृदयरूपी दर्पण पर लिख लेंगे।

आज कल के बड़े बड़े धर्मात्माओं की यह रीति है कि सेवकों के साथ कठोरता का व्यवहार करते हैं और उनके साथ दयालुता का व्यवहार सभ्यता का अंग नहीं समझते। पहले लेख में महाराज ने पुरुषार्थ, पराक्रम, परिश्रम और साहस

को धर्म्म की नींव मानी है । और यह भी बतलाया है कि इसमें बड़ाई छोटाई का कुछ विचार नहीं, जो कोई धर्म्म के कार्य में परिश्रम करेगा उसको फल मिलेगा । वह फल क्या है? उसको देवता-पद प्राप्त हो जायगा । दूसरे लेख में यह घोषणा स्पष्ट कर दी है कि उनके विचार में वह धर्म्म क्या है । क्या कोई कह सकता है कि इस शिक्षा में कहीं भी कोई चिन्ह रूढ़ि की शिक्षा का, किसी मुख्य रूढ़ि धर्म्म के प्रचार का अथवा किसी सम्प्रदाय के पक्ष का दिखलाई दिया है ? संसार के जितने महान राजाओं से महाराजा अशोक की समता की जाती है उनमें से एक के सम्बन्ध में भी यह नहीं कहा जा सकता । किसी ने इस्लाम धर्म्म का प्रचार किया, किसी ने इसाई धर्म्म का, किसी ने बौद्ध-धर्म की रूढ़ि का किन्तु महाराजा अशोक ने अपनी सारी नैतिक शक्ति को अटल सत्य के प्रचार करने में व्यय कर दिया । हमारा यह कहना नहीं है कि महाराजा अशोक बौद्ध नहीं थे अथवा यह कि उन्होंने अन्तिम समय तक रूढ़ि सिद्धांतों की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया । किन्तु हमारा यह कहना अवश्य है कि उनकी उन सारी घोषणाओं में जो इस समय तक प्राप्त और छप चुकी हैं केवल दो एक स्थान पर ऐसी झलक पड़ती है जिससे यह संदेह होता है कि अन्तिम अवस्था में कट्टर बौद्ध धर्म्म के पक्षपाती हो गये थे नहीं तो साधारणतः इन घोषणाओं में केवल व्यावहारिक सत्यता की शिक्षा है ।

चौदह पहाड़ी घोषणायें।

चौदह पहाड़ी घोषणाओं में सब से प्रथम अहिन्सा की शिक्षा दी गई है।

अहिन्सा-लेख।

महाराज की आज्ञा है कि यज्ञ के निमित्त किसी जीवधारी की बलि न करें और न कोई ऐसा उत्सव मनाया जाय जिसमें पशुओं की हत्या अथवा उनके मांस का प्रयोग अवश्यक हो।

महाराज अशोक की घोषणाओं की अनुपम विशेषता यह है कि जब किसी आज्ञा का प्रचार करते हैं तो प्रथम अपने अवगुण प्रगट कर देते हैं। फिर उस अवगुण के त्याग देने की प्रतिज्ञा करते हैं। तदनन्तर लोगों से प्रार्थना करते हैं कि "आप सज्जन मेरी शिक्षाओं पर कार्य करें" जैसे कि चौदह पहाड़ी घोषणाओं में से प्रथम घोषणाओं में ही पशुओं की बलि के लिये रोका है। इससे अनुमान हो सकता है कि उस समय तक वे यज्ञ किया करते थे और उनके यज्ञों के लिये पशु हत्या होती थी। उसके साथ ही अथवा कुछ काल पश्चात् उन्होंने मृगया भी त्याग दिया। इस घोषणा द्वारा उन्होंने यह प्रथा उठा दी किन्तु इससे यह सम्भव नहीं होता कि उन्होंने अपने सारे राज्य में यज्ञ के अवसर पर परशु-हत्या राजाज्ञा से बिलकुल बन्द कर दिया। इसी प्रकार मांस खाने के विषयमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि पहले उनके भोजनालय के लिये सहस्रों जीवों का

प्रतिदिन वध होता था फिर उन्होंने घटा कर केवल तीन जीवों के वध करने की आज्ञा दी (दो तोते एक मृग) किन्तु इस घोषणा के समय से उसे भी त्याग दिया। इस घोषणा में दूसरे को कोई शिक्षा मांस त्याग देने को नहीं दी गई। मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ कहते हैं कि इस घोषणा में जो वर्जित यज्ञों में पशु-हत्या करने की अथवा भोग विलास न करने के सम्बन्ध में है—वह केवल राजधानी अर्थात् पाटलि-पुत्र के लिये है। हमारा विचार है कि वह केवल राज्य परिवार के प्रति थी; जनता के प्रति तो जो नियम अहिन्सा के लिये कहा गया है–वह है जिसमें यह लिखा है कि अभिषेक से अट्ठाईसवें वर्ष में यह आज्ञा दी गई। इस आज्ञा के अनेक भाग हो सकते हैं।

प्रथम भाग में उन पशुओं का विवरण है जिनकी हत्या निश्चित रूप से वर्जित है।

द्वितीय भाग में वे पशु हैं जिनकी हत्या बहुधा दशाओं में वर्जित है। (अर्थात् दूसरी दशा में सम्भव है)

तृतीय विभाग में कई पशुओं को बीज-हीन करना अनुचित ठहराया गया है। जिनके बीज-रहित करने की आज्ञा दी गई है उनके सम्बन्ध में शर्तें लगा दी गई हैं।

एक सूची उन दिनों की दी गई है जिनमें किसी पशु को बीज-हीन अथवा हत्या करना बिल्कुल वर्जित है। इन दिनों का योग $\frac{1}{4}$ वर्ष के समान होता है। उसी प्रकार ५६ दिन निश्चय किये गये हैं जिनमें मछली का पकड़ना अथवा विक्रय

करना बन्द किया गया है । इन दिनों मृगया के निमित्त रक्षित क्षेत्रों में भी पशु-हत्या वर्जित थी । मुर्गों का मारना एक दम बन्द कर दिया गया। इस आज्ञा में यह लिखा गया है कि भूसों के ढेर में अग्नि न लगाई जावे यदि उनके भीतर जीवित पशु हों । और न जीवों की हत्या के निमित्त बनों में अग्नि लगाई जावे ।

यह बात नोट करने योग्य है कि महाराजा अशोक जैसे प्रतिभाशाली और चक्रवर्ती राजा को भी यह साहस न हुआ अथवा उन्होंने उचित न समझा कि मांस खाना अथवा विक्रय करना और पशुओं की हत्या बिल्कुल बन्द कर दी जावे। कदाचित महाराज ने यह अनुभव किया कि वे इस आज्ञा से जनता की स्वतन्त्रता में बाधा डालते है। अतः उन्होंने सीमाबद्ध उचित हस्तक्षेप किया किन्तु साधारणतया एक दम कानूनी रोक नहीं की । बहुत से लोगों का विचार है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म की इस शिक्षा ने भारतवासियों को ऐसा कोमल हृदय कर दिया कि वे संसार के नैतिक-युद्ध में भली भांति सामना करने के अयोग्य हो गये। यह कहना बहुत कठिन है कि इस विचार में कहाँ तक सत्यता है। किन्तु एक बात अवश्य वर्णन करने योग्य है और वह यह है कि अहिन्सा की शिक्षा के इस भाग का एक फल अवश्य हुआ और वह यह हुआ कि कुछ हिन्दुओं, जैनियों और बौद्धों की दृष्टि में पशुओं को मनुष्यों से उच्च पद प्राप्त है । महाराज अशोक ने कई पशुओं की हत्या तो बिल्कुल बन्द कर दी किन्तु मनुष्यों के

लिये मृत्युदण्ड नहीं रोका। इस समय भी भारत में बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो मनुष्यों के कष्ट के सामने खटमल-मच्छड़ अथवा सर्प-बिच्छू आदि जानवरों के कष्ट पर अधिक ध्यान रखते हैं। हम इसको उचित नहीं समझते, किन्तु इस विषय पर विस्तार से इस समय नहीं लिखते। इस घोषणा में एक छोटा वाक्य है जो ध्यान देने योग्य है। महाराज का कहना है कि प्राणधारी को प्राण-धारियोंका भोजन न बनाना चाहिये। वर्नार्डशा जो मांस नहीं खाता, यह कहा करता है कि मनुष्यों के पेट पशुओं के मृतागार नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि महाराज अशोक के वाक्य के सम्बन्ध में वर्नार्डशा का लेख अत्यन्त सत्य है क्योंकि प्राणधारी किसी अन्य प्राणधारी को नहीं खाता जब तक कि वह उसको मार नहीं लेता। मृत शरीर प्राणधारी नहीं कहाजा सकता।

मनुष्यों और पशुओं के प्रति सुख का प्रबन्ध

अहिंसा की शिक्षा पृथक है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्य को कष्ट न दिया जावे किसी प्राणधारी को मारा न जावे किन्तु प्रगट है कि केवल विवर्जित-धर्म्म मनुष्य को सदाचारी और धर्मात्मा बनानेके लिये पूर्ण नहीं। जहां यह बतलाना आव-श्यक है कि क्या न किया जावे वहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि क्या किया जावे। धर्म्म के दोनों अंग हैं—इसमें मनाही भी है और आज्ञा भी है।

अतः चौदह पहाड़ी घोषणाओं में न० २ में उन प्रबन्धों का वर्णन है जो महाराज ने मनुष्यों और पशुओं के प्रति

किया है । जिनमें से प्रथम मनुष्यों और पशुओं के रोग दूर करने के लिये चिकित्सालय खोले गये । यह चिकित्सालय केवल महाराज के राज्य में ही नहीं खोले गये वरंच उनसे भारतवर्ष का वह भाग भी लाभ उठाता जो महाराज के अधिकार में नहीं था । चोल* पाण्डय, सातीयपुर, केरलपुर का तो विशेष नाम से वर्णन आया है किन्तु "सीमा" शब्द साधारणतः उन स्थानों और जातियों को सम्मिलित करता है जो सीमा पर थी किन्तु महाराज के अधिकार में न थी । यूनान के राजा एन्टयूकस के राज्य का विशेष वर्णन है और एन्टयूकस के सन्निकट राज्यों का भी वर्णन आया है ।

चिकित्सालय खोलने के अतिरिक्त महाराज ने इन सारे देशों में औषधि वाली जड़ी बूटियाँ भी लगवाईं, फल वाले वृक्ष लगवाये और जहां जहां इन वस्तुओं का अभाव था वहां अभाव को दूर किया । सड़कों पर भी मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिये वृक्ष लगवाये और कुएँ खुदवाये ।

---

* वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है कि चोल राज्य कोरोमण्डल के किनारे था जिसमें मदूरा और तिनावली के जिले सम्मिलित थे । मदूरा वा तिनावली जिले में मदुरा उसकी राजधानी थी । सातीयपुर कोयम्बटूर के एक भाग का नाम है । जिसकी सीमा मैसूर, मालावार, कुर्ग और कोयम्बटूर से मिलती है । केरलपुत्रों का राज्य मालावार था जो अब कुछ बम्बई और कुछ मद्रास अहाते में सम्मिलित है । एन्टयूकस की जातिओं से कदाचित उस जाति का अभिप्राय है जिनका वर्णन लेख न० १३ में आया है ।

स्तम्भ शिला लेख नं० ७ में महाराज के जीवन के अनेक कार्य्य की एक संक्षिप्त सूची दी गई है। उनमें वृक्षों और कुँओं के अतिरिक्त यात्रियों के लिये धर्मशालाओं का भी वर्णन है। उस लेख में लिखा है कि मैंने सड़कों पर पीपल के वृक्ष लगवाये, प्रति आधे कोस पर कुँए खुदवाये, धर्मशालायें बनवाईं और अनेक जलाशय मनुष्यों और पशुओं के सुख के निमित्त निर्माण कराये। इसके अतिरिक्त महाराज ने इस कार्य्य के लिये अध्यक्ष और कर्म्मचारी नियत किये थे कि वे राज्य में भ्रमण करके धर्म्म का ही प्रचार न करें वरंच दरिद्र मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूर्ण करें। अतः इन उद्देश्यों के लिये जिन लोगों को नियुक्त किया गया उनसे दो अर्थ प्रगट होते हैं। अर्थात् जहां एक ओर धर्म की उन्नति और धर्म्म का प्रचार उद्देश्य है, वहां दूसरी ओर उन अध्यक्षों और कर्मचारियों को काबू में रखना भी उद्देश्य है। इस उद्देश्यसे जिन आज्ञाओं का प्रचार किया गया है उनका सारांश नीचे लिखा जाता है—

पर्वतीय * लेख नं० ४ में यह वर्णन है कि प्रत्येक स्थान पर मेरे राज्य में सूबों के गवर्नरों (राजूक) जिले के अध्यक्ष (प्रादेशिक) और मातहत कर्म्मचारियों को आज्ञा है कि वे प्रति पाँच वर्ष में जब उनकी † बदली हो (अथवा अन्य सर्कारी कार्य्य

---

* यह आज्ञा अभिषेक से बारहवें वर्ष में दी गई है। यह बात लेख में भी लिखी गई है।

† श्रीमान् जैसवाल साहब का मत इस प्रकार है और इससे यह ज्ञात

के लिये बाहर जावें) विशेष रूप से इस धर्म्म का प्रचार करें—

(श्र) माता पिता के वचन अङ्गीकार करना अत्यंत कल्याणकारी है।

(म) मित्रों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और साधुओं के साथ उदारता का व्यवहार मंगलदायक है।

(ज) जीवधारी पशुओं की हत्या न करना असीम कल्याणकारी है।

(द) कम एकत्रित करना और थोड़ा व्यय करना अत्यन्त अच्छा है।

कौन्सिल ‡ अर्थात् परिषद् का भी यह कर्तव्य है कि वह लेखा विभाग * के कर्मचारियों को इस नियम और इस आज्ञा की ओर ध्यान दिलावें।

होता है कि मौर्य्य वंश के राज्य में प्रति पांचवें वर्ष गवर्नरों और अन्य बड़े बड़े कर्म्मचारियों की बदली होती थी जिससे कि एक स्थान पर चिरकाल तक रहने से जो अवसर अन्याय और अधिकता के मिल सकते हैं उनको रोका जावे। आश्चर्य की बात है कि इस विषय में भी मौर्य्यों की नीति वही थी जिस पर इस समय अंग्रेज सर्कार कार्य्य करती है। इस मत से वेन्सण्ट स्मिथ सहमत है।

* कौन्सिल अथवा परिषद् से भी श्रीयुत जैसवाल की राय में 'मन्त्री परिषद्" अथवा सभामन्त्री से अभिप्राय है और इससे भी मिस्टर स्मिथ सहमत हैं।

‡ लेखा-विभाग के विशेष वर्णन से क्या अभिप्राय था ?

इस सिलसिले की पाँचवीं घोषणा भी इस वर्ष में प्रचार की गई। उसमें प्रथम यह वर्णन किया गया कि चिरकाल अर्थात् शताब्दियों से यज्ञों में पशुओं का बलिदान, प्राणियों की हत्या, सम्बन्धियों के साथ दुर्व्यवहार, ब्राह्मण और साधुओं का अपमान बढ़ गया था। किन्तु अब महाराज के धर्माचरण से युद्ध-बिगुल के स्थान धर्म-डंका बजने लगा और अन्य खेल तमाशों के बदले महाराज ने विमानों, हाथी की प्रदर्शिनी, प्रकाश और अन्य ऐसी ही सुन्दर और रोचक प्रदर्शिनी स्थापित कर दीं।

इस लिये अब पशुओं का बलिदान, प्राणियों की हत्या, संबन्धियों से दुर्व्यवहार और ब्राह्मणों और साधुओं का अपमान बहुत कम हो गया (अथवा इस प्रकार कहें कि मनुष्यों में इन घृणित कार्य्यों से पृथक रहने का आचरण उन्नति पर है)। इस प्रकार और कई अन्य कारणों से भी धर्माचरण उन्नति

मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ के विचार से कदाचित इस विषय की ओर संकेत था कि एकाउन्टेन्ट जेनरल पांचवें वर्ष वेतनों का लेखा पास करता हुआ यह निरीक्षण करे कि बदली रीति के अनुसार हुई अथवा नहीं। मेरे मतानुसार यह विचार ठीक नहीं। कदाचित अन्तिम वाक्य का सम्बन्ध इस शिक्षा से है जिसको हमने (द) भाग में लिखा है। यह अवश्य था कि जिन नियमों की ओर वह लोगों के ध्यान दिलाते हैं उन पर स्वयं भी आचरण करें। आय व्यय का घनिष्ठ सम्बन्ध लेखा विभाग से है। उनका ध्यान आज्ञा के शब्द और उसकी रिपोर्ट की ओर दिलाया हैं।

करता गया, और महाराज इस उद्योग में हैं कि इस उन्नति की और भी वृद्धि होती जावे (उनकी यह आशा है) कि उनके पुत्र पौत्र और पर-पौत्र भी इसी प्रकार कल्प के अन्त तक इस उद्योग में लगे रहेंगे ताकि धर्माचरण में लोग उन्नति करते जावें। स्वयं धर्म और आचार में दृढ़ होकर धर्म का प्रचार करें। क्योंकि सब कार्यों में यह कार्य श्रेष्ट है अथवा उत्तम है। बुरे मनुष्य धर्माचरण नहीं कर सकते अतः धर्माचरण में यदि उन्नति हो तो भी अच्छा । और यदि धर्माचरण में कमी न हो तौ भी कल्याण है ।

नोट—वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है कि विमान से अभिप्राय धार्मिक जलूसों और रथों से है । जिसमें देवताओं को बैठाया जाता था। अगि खंधानि जिसका अनुवाद रोशनी की गई है और जिसका अर्थ अतिशबाजी भी हो सकता है । इसी लेख की एक और प्रति जो शहबाज़ गढ़ में पाई गई है अगिखंधानि के स्थान पर ज्योति खंधान शब्द आया है।

वेन्सन्ट स्मिथ के मत में महाराजा अशोक को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि लोगों के लिये मन बहलाव की ऐसी सामग्री की जावे जिसमें जातीय प्रदर्शिनी के बदले धार्मिक दृश्य हों । हमारे विचार में यह मत ठीक है । महाराज चन्द्रगुप्त के समय में सेना-युद्ध के खेल होते थे। जानवरों के युद्ध होते थे। घोड़ों और गाड़ियों के दौड़ होते थे । जनता भिन्न २ रीति से उत्सव मनाती थी । महाराज अशोक ने इन सब को

बन्द कर दिया और जनता के प्राचीन उत्सव की प्रथा को रोक दिया । अतः उनके प्रति आवश्यक हुआ कि कोई नवीन प्रबन्ध प्राचीन प्रथा के स्थान में किया जावे जो जनता की रोचकता और मन वहलाव के लिये हो । चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है कि बौद्ध लोग प्रतिवर्ष दूसरे महीने की आठवीं तिथि को मूर्तियों का जलूस निकालते हैं एक चार पहियों का रथ सजाते हैं । उसपर बाँस बाँध कर पाँच मंजिल का भवन निर्माण करते हैं । चांदी सोने पन्ने आदि का मिश्रण कर के देवताओं की मूर्तियां बनाते हैं । उन पर रेशम के आवरण और चंदवा तानते हैं । इस रथ के चारों कोनों में एक मूर्ति बुद्ध की रखते हैं । एक बोधिसत्व की मूर्ति उनकी सेवा में खड़ी करते हैं । इस प्रकार के अनेक रथ होते हैं । कई बार उनकी संख्या बीस तक हो जाती है । किन्तु प्रत्येक एक दूसरे से भिन्न होता है । नियत अवसर पर बाहर से भिक्षु और गृहस्थ आकर एकत्रित होते हैं । राग वाले अपनी राग अलापते हैं । लोग पुष्प, धूप दीप आदि चढ़ाते हैं ।

ब्राह्मण लोग बौद्ध लोगों का स्वागत करते हैं और उनको नगर में प्रवेश करने को आमन्त्रित करते हैं । दो दिन तक यह उत्सव रहता है । लोगों के घरों में प्रकाश रहता है । पूजा सामग्री चढ़ाई जाती है । प्रेमी प्रेमालाप करते हैं । यह प्रथा अन्य देशों में भी है । हम नहीं कह सकते कि देवताओं की मूर्तियों के जलूस की जो प्रथायें फाहियान के समय तक दृढ़

हो गई थीं वह महाराजा अशोक के समय में आरम्भ हो गई थीं अथवा नहीं । मेरे मतानुसार इस लेख के वाक्य से इससे विशेष फल नहीं निकाला जा सकता कि महाराजा अशोक ने प्राचीन जंगी व अन्य मेलों और खेलों के स्थान में नये उत्सव स्थापित किये, जिनमें प्राचीन खेलों और मेलों की अपेक्षा धार्म्मिक झलक थी ।

धर्म्म विभाग

पहाड़ी घोषणा नं० ५ से ज्ञात होता है कि अभिषेक के तेरहवें वर्ष में महाराज अशोक ने एक समुचित विभाग धर्म प्रचार ओर धर्माचरण के निरीक्षण के लिये स्थापित किया । और जिस प्रकार अन्य विभागों में अध्यक्ष और कर्मचारी थे उसी प्रकार इस विभाग में भी क्रमानुसार अध्यक्ष और कर्मचारी नियत किये । इस विभाग के अध्यक्षों को मन्त्री अथवा महा * मन्त्री कहा गया है । उनके कर्तव्य निम्नलिखित थे:—

प्रथम

सारे मत मतान्तरों के लोगों में धर्म का प्रचार और धर्म

---

* अंग्रेजी अनुवादकों ने इन अध्यक्षों के प्रति सेन्सर Censor का प्रयोग किया है

इतिहास से ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन रोम में भी Censor होते थे ।

की वृद्धि, धर्म-विभाग के अधीन कर्मचारियों का निरीक्षण, पश्चिमीय सीमा के यवन, कम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितेनिक और अन्य जातियों में धर्म का प्रचार करें।

द्वितीय

स्वामी, सेवक, ब्राह्मण, धनवान, वृद्ध, निर्बल और धर्म विभाग के अधीन कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रबन्ध।

तृतीय

दण्ड—कारागार, मृत्यु और अन्य दण्डों का निरीक्षण करना।

(१) नीति (२) बाल बच्चों की उपस्थिति (३) उत्तेजना (४) बुढ़ापा।

चतुर्थ

पाटलिपुत्र तथा अन्य प्रदेशों की राजधानियों में मेरे भ्राताओं भगिनियों और अन्य सम्बन्धियों के स्त्री-कर्मचारियों पर ध्यान रखना।

यह महामात्र (अफ़सर) लोग मेरे राज्य में प्रत्येक स्थान अपने विभाग के अधीन कर्मचारियों का निरीक्षण, धर्म-विभाग के साधारण कार्य और धर्म की स्थिति और सदाव्रत के कार्य में लगे रहते हैं।

इस लेख में कई बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो

महाराजा अशोक ने इस प्रकार के विशेष-विभाग की स्थापना को आवश्यक समझा।

द्वितीय यह कि उनको विशेष रीति से अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को काबू में रखने की शिक्षा दी।

तृतीय यह कि उनके कर्तव्य को व्याख्या के सहित वर्णन किया और उनको ये अधिकार दिये गये कि प्रजा के प्रत्येक समुदाय की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दें और उनको पूर्ण करने का प्रबन्ध करें। इसमें कर्मचारियों का विशेष वर्णन किया गया है। स्वामियों और धनियों का क्यों वर्णन किया गया? या तो इन शब्दों का ठीक अर्थ नहीं समझा गया अथवा इसका अर्थ यह है कि जिस मनुष्य को आवश्यकता हो यदि वह धनाढ्य ही क्यों न हो उसकी आवश्यकता पूर्ण की जावे।

भृतिमयेषु, भटिमयेसु—कर्मचारी।

ब्राह्मणाभ्येषु, बाभननियेसु—स्वामी, ब्राह्मण।

अनाथेषु, अनाथेसु—अनाथ और असहाय।

यह धवली के पाठ के अनुसार है।

महाराज अशोक के हृदय में बौद्ध होने पर भी ब्राह्मणों के विरुद्ध कोई पक्षपात न था। यह उनके लेखों में बार २ ब्राह्मणों का वर्णन आने से प्रगट होता है। एक लेख में जिसका आगे चलकर वर्णन किया जावेगा इस बात का विशेष वर्णन किया गया है कि इस घोषणा में जो वर्णन (अधीनस्थ कर्मचारी धर्म-विभाग) आता है उसका अर्थ भी स्पष्ट नहीं है। अथवा यह

मत है कि उनकी प्रतिष्ठा और आदर का भी विचार रक्खा जावे। जिसमे उनको धर्म मार्ग से विचलित होने की कोई आवश्यकता और उत्तेजना न हो। पश्चिमीय सीमा के निवासियों का विशेष वर्णन किया गया है। यवन से अभिप्राय यूनानियों से है। कम्बोज हिमालय के उत्तरीय पश्चिमीय निवासियों से, गान्धार कन्धार के रहने वालों (कन्धारियों) से है।

मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ लिखते हैं कि राष्ट्रिक लोगों से अभिप्राय महाराष्ट्र लोगों से है किन्तु क्या उनको पश्चिमीय सीमा का निवासी कहा जा सकता है। शब्द पतेनिक का अर्थ स्पष्ट नहीं है। पश्चिम शब्द अपरान्त का अनुवाद किया गया है।

दण्डों का निरीक्षण और दण्डों से पृथक अथवा मुक्ति के सम्बन्ध में जो आज्ञा है वह अत्यन्त विचित्र है और महाराज अशोक के उदारता और आत्मीयता का बड़ा प्रमाण है अर्थात् बन्दी-जनों और अन्य दण्डनीय व्यक्तियों के प्रति उनको इतना ध्यान था कि उनके लाभ के निमित्त उन्होंने-विशेष प्रबंध किया और यह कार्य धर्म-विभाग के अधीन किया। और उनको बतला भी दिया कि वह किन किन कारणों पर उनके मुक्ति का उद्योग करें—

प्रथम—इस कारण पर कि उनका मत हत्या अथवा अपराध का न था।

द्वितीय—इस कारण पर कि उनकी सन्तान इस कार्य पर इच्छित है कि उनको मुक्त कर दिया जावे।

तृतिय—इस कारण पर कि उन्होंने किसी की उत्तेजना से यह हत्या नहीं की।

चतुर्थ—इस कारण से कि वह वृद्ध है।

राजाओं के सम्बन्धी अधिकांश अन्याय और अत्याचार करने की ओर झुक जाते हैं-विशेषतः उनके कर्मचारी। महाराज अशोक ने इसका भी प्रबन्ध किया और इन अध्यक्षों को अधिकार दिया कि विशेष कर उनका नीरीक्षण किया जावे।

हमारे मत में यह घोषणा महाराज अशोक और उनके समय की सभ्यता का दृढ़ प्रमाण है।

सभ्यता, स्वभाव और धर्म्म की कुछ शिक्षायें

अब हम कुछ आज्ञाओं को उद्धृत करते हैं। जिनमें साधारण शिक्षायें मनुष्यों के आचरण को उच्च बनाने और उनको धर्म के मार्ग में स्थिर करने की दी गई है।

लेख न० ७ में प्रथम तो उन्होंने साधारण उपदेश परस्पर प्रेम रखने के निमित्त दिया है जो हिन्दू व बौद्ध, राजाओं और अन्य धार्मावलम्बी शासकों से पृथक करता है। अर्थात् यह कि प्रत्येक धर्म्म और पंथ के मनुष्य जहां इच्छा हो रहें। उनपर किसी प्रकार का बन्धन अथवा कठोरता नहीं थी।

द्वितीय—यह स्वीकार किया गया है कि सारे धर्मों का उद्देश्य यह है कि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को बस में रक्खें और अपने मन और हृदय को पवित्र रक्खें (भिन्नता इस

कारण होती है) कि मनुष्यों की इच्छायें और आवश्यकतायें भिन्न भिन्न होती हैं।

तृतीय—साधारणतः मनुष्य की प्रकृति को अपूर्ण समझ कर उपदेश किया गया है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के लिये यह उचित है कि वह अपने इन्द्रियों को बस में रक्खे, अपने हृदय को पवित्र करे। हृदय में प्रेम और भक्ति की शक्ति उत्पन्न करे और दृढ़ता से भक्ति करे चाहे वह स्वयं अपने हाथों से दान न कर सके। यहाँ भक्ति से अभिप्राय किसी प्रकार की पूजा से नहीं है बल्कि यह अभिप्राय है कि अपने कर्तव्य-पालन और पुण्य-कर्मों में दृढ़ता से डटा रहे।

वेन्सन्ट स्मिथ इस घोषणा की व्याख्या करता हुआ अर्थ-शास्त्र की उस रीति * का प्रमाण देता है जिसमें यह प्रथा है कि कुल धर्मशालाओं के प्रबन्धकों का यह कर्तव्य है कि जब कभी कोई पाखण्ड अथवा यात्री वहां आकर ठहरे तो उसका समाचार "गोप" अर्थात् थानेदार को दिया जावे। साधुओं, वैद्यों विद्वानों को केवल उस दशा में रहने दे जब उनके विषय में यह ज्ञात हो कि वे विश्वास करने योग्य हैं।

---

* अर्थशास्त्र अधिकरण २ अध्याय ३६ प्रकरण १४४ धर्मशालाओं के प्रबन्धकों, नास्तिकों (पाशिण्डों अथवा यात्रियों) के आने का समाचार जब वे वहां निवास के लिये आये हों गोप को जाकर देंगे। वह साधुओं और वेद वेत्ताओं को केवल इस दशा में रहने देंगे जब कि वे शुद्धाचरण हों।

(१) Pasanda deosnot mean a traveller or heretic

वेन्सन्ट का अभिप्राय उस प्रमाण से यह है कि अर्थशास्त्र को अस्वीकार करने वालों, पृथक रहनेवालों और साधुओं को प्रत्येक स्थान पर रहने की आज्ञा न थी। किन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता। पहले वाक्य में पाशंड शब्द का अर्थ नास्तिक Heretic से किया गया है। दूसरे वाक्य में निरीक्षण के निमित्त वेद के विद्वान विशेष कर चुने गये हैं। मेरे मतानुसार यह दोनों परिणाम ठीक नहीं। क्योंकि ऋषि बौद्ध नहीं था बल्कि "वेदवेत्ता" वेद का परिडत था। उसे यह आज्ञा नहीं की जाती थी कि वह वेद के विरुद्ध इस प्रकार के अन्याय युक्त-नीति को प्रचारित करे। मेरे मत में पहले वाक्य में किसी प्रकार का धार्मिक बन्धन नहीं है। वह एक साधारण सूचना है कि यदि किसी धर्मशाला में कोई पाशिण्ड अथवा यात्री आवे तो उसका समाचार थाने में दिया जावे। यह नियम बृटिश गवर्नमेन्ट ने भी बनाया है। और साधारण रक्षा का नियम है। यह धार्मिक विरोध अथवा पक्षपात नहीं। प्रायः देखा गया है कि चोर डाकू इत्यादि साधुओं का वस्त्र पहन कर धर्मशालाओं अथवा अन्य धार्मिक भवनों में आकर टिक जाते हैं। क्योंकि उनको यह भरोसा होता है कि वहां पर कोई उनका सन्देह न करेगा और वहां उनको अपने काम के लिये विशेष अवसर प्राप्त होंगे। अतः दूसरा नियम भी जहां तक उसका सम्बन्ध साधुओं से है समझ में आता है। साधुओं के बाद का शब्द जिसका उल्था

"वेद वेत्ता" किया गया है वह पुस्तक की भूल है अथवा उल्था की भूल है।

तीर्थ यात्रा

लेख न० ८ में यह लिखा है कि पूर्वकाल में राजा लोग ऐसा भ्रमण करते थे जिनमें आनन्द मनाया जाता था, शिकार खेलने जाते थे और अन्य सामग्री विनोद और मन बहलाव के लिये ले जाते थे किन्तु अभिषेक से दसवें वर्ष वर्तमान महाराज ने बुद्ध गया की यात्रा की। उस समय से धर्म की यात्रायें आरम्भ हो गईं। उन यात्राओं में ब्राह्मणों के दर्शन करके उनको दान दिया जाता था। पूर्वजों की सेवा में उपस्थित होकर उनको भेंट दिया जाता था और उस प्रान्त के लोगों के लिये उपदेश और धर्म चर्चा की जाती थी। सारांश यह कि उस समय से महाराज के आनन्द की सामग्री का परिवर्तन हो गया।

नोट—इस घोषणा से प्रगट होता है कि "देवानाम् प्रिय" राजाओं की साधारण पदवी थी; केवल महाराज अशोक ही पर नहीं निर्भर थी।

इस घोषणा का यह भी अर्थ हो सकता है कि जनता भी महाराजा के अनुकरण में ऐश्वर्य-पूर्ण साधारण यात्रा को छोड़कर धर्म-यात्रा किया करे और इसी में सुख समझें इसलिये यह प्रगट है कि हिन्दुओं में साधारणतया सुख के निमित्त यात्रा करने की प्रथा नहीं; वे या तो कार्यवश अथवा व्यापार व

अन्य आवश्यकताओं के निमित्त यात्रा अथवा धर्म-यात्रा करते थे। साधारणतया उनके धर्मस्थान ऐसे स्थानों पर स्थित हैं जहां प्रकृति की अनोखी छटा है। और जहां का जल-वायु मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर को स्वस्थ और शक्तिशाली बनाता है। योरोप के प्रायः अमीर अथवा अन्य जन जब छुट्टी मनाते हैं तो पेरिस जाते हैं अथवा समुद्री या पहा ी स्थानों पर जाते हैं। उनमें बहुसंख्यक अपनी छुट्टियों को सुख चैन के निमित्त समझते हैं। यदि समुद्र के किनारे जाते हैं अथवा पहाड़ को जाते हैं तो भी उसको सुख-चैन का अवसर समझते हैं। हिन्दुओं और बौद्धों में यह प्रथा थी कि वे जब कभी सांसारिक कार्यों से निवृत्त होते थे तो धर्मयात्रा के निमित्त जाते थे—वहां अपने धार्मिक, कर्तव्य का भी पालन करते थे; साधुओं और विद्वानों के प्रसङ्ग से लाभ उठाते थे। और कुछ दिन निश्चिन्तता पूर्वक समय यापन करके अपने स्वास्थ्य को ठीक करते थे। हिन्दुओं ने अपने तीर्थ हिन्दुस्तान के अच्छे स्थान पर स्थापित किये हैं। जहां प्राकृतिक छटा मनुष्य के मन को अपनी मनोहरता और सुन्दरता से मोहती है और उनके शोक और व्यग्रता को भी पृथक करती है। हिन्दू जब छुट्टी पाते हैं तो वे हरद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, मार-तण्ड, नर्वदा, रामेश्वर, ज्वालामुखी इत्यादि स्थनों को जाते हैं। अब हिंदू राजा और महाराजाओं ने तीर्थों का जाना छोड़ दिया; अब वह प्रत्येक वर्ष अपनी प्रजा का लाखों रुपया पेरिस,

लन्दन * बर्लिन और न्यूयार्क में व्यय करते हैं और वहां से अनेक प्रकार के उपहार शारीरिक और मस्तिष्क सम्बंधी लाते हैं। हमें इस बात की चिंता है कि हिंदुओं के तीर्थ भी इस समय अपवित्रता, बुराई और दुराचार के स्थान हो गये हैं। तो भी अपवित्रता और दुराचार के लिये वहां पर वह सुख और स्वतंत्रता नहीं मिलती जो पेरिस, बर्लिन लंदन और न्यूयार्क में मिलती है और न वहां किसी प्रकार की विद्या और धर्म की ही चर्चा होती है।

रीतियां अथवा संस्कार

हिंदुओं में सोलह संस्कार मुख्य माने गये हैं जिनका विधान शास्त्रों में है किंतु इन संस्कारों के अतिरिक्त असंख्य अन्य प्रथायें हमारी जाति में ऐसी प्रचरित हो गई हैं जो सारासर व्यर्थ और अयोग्य हैं। महाराज अशोक ने संस्कार पर भी एक घोषणा की थी जिसका अनुवाद निम्न प्रकार है—

---

* हम योरोप और अमेरिका की यात्रा के विरोधी नहीं किन्तु जिन अभिप्रायों से हमारे राजा महाराजा वहां जाते हैं और जिस निर्दयता स्वच्छंदता और गैर जिम्मेदारी से वे अपनी प्रजा की गाढ़े पसीने की कमाई का वहां व्यय करते हैं और जिन कार्य्यों को वे करते हैं हम उनको तुच्छ और घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हम किसी प्रकार देशाटन के विरोधी नहीं बल्कि हमारी इच्छा है कि हमारे देशवासी जितना अधिक देशाटन करें उतना हमारे जातीय उपकार के प्रति अच्छा है और न हम इस प्रकार के सुख चैन के विरोधी हैं जिसमें अपवित्रता और अपव्ययता न हो।

पुत्र पुत्रियों के पैदा होने में तथा यात्रा करने जाते समय, स्त्रियां असंख्य रीतियां करती हैं। जिनमें से कई एक अत्यन्त व्यर्थ और तुच्छ होती हैं। किन्तु संस्कारों का करना आवश्यक है। सारांश यह कि इस प्रकार की रीतियों का फल थोड़ा होता है इसके विपरीत धर्मके संस्कार बहुत फलदायक होते हैं।

जैसे सेवकों और दासों के साथ उचित बर्ताव *।

शिक्षक और गुरुओं का मान।

प्राणधारियों के साथ दयालुता और नम्रता।

साधुओं और ब्राह्मणों के निमित्त दान।

यह और इस प्रकार की अन्य प्रथायें धर्म्म की प्रथायें कहलाती हैं। अतःप्रत्येक मनुष्य का चाहे वह पिता हो या पुत्र या भाई, स्वामी, मित्र, साथी, पड़ोसी कोई भी हो—यही कर्तव्य है कि जब तक इच्छानुसार अपनी इच्छा पूर्ण नहीं होती तब तक इसी प्रकार की प्रथायें की जायँ। सांसारिक प्रथाओं का लाभ संदेह-युक्त है। कदाचित उनसे हमारा सांसारिक उद्देश्य पूर्ण हो अथवा न हो किन्तु धर्म की प्रथायें अत्यन्त उत्तम हैं क्योंकि यदि उनसे हमारा सांसारिक उद्देश्य भी न पूर्ण हो तो उनका फल परलोक में अवश्य मिलता है। उनका फल इसलोक में भी मिलता है और परलोक के लिये भी वह काम आते हैं।

---

* अर्थ शास्त्र में दासों और सेवकों के साथ वर्ताव करने के सम्बन्ध में और उनके अधिकार के विषय में निम्न उपदेश दिये गये हैं।

नोट—इस घोषणा की बहुधा प्रतियों में अन्तिम वाक्य के स्थान यह आता है—

दान अत्यन्त उत्तम है किन्तु कोई दान धर्म दान के समान नहीं अतः प्रत्येक मित्र, प्रेमी, सम्बन्धी और सङ्गी का यह

दास—आर्य कभी दास नहीं बनाया जा सकता + + + एक दास को धोखा देना अथवा ऐसे अधिकार से उसे वञ्चित रखना जो कि वह एक आर्य्य होने के कारण रख सकता है—एक अपराध है। और ऐसा अपराध करने वाले को दण्ड भी देना पड़ेगा जिसका दण्ड-कर उस दास के मोल का आधा होगा + + + यदि एक सेवक से मृत-शरीर उठवाया जाय अथवा मल मूत्र उठवाया जाय, उसे नङ्गा रक्खा जाय अथवा उसे शारीरिक दण्ड दिया जाय और गाली दी जाय अथवा एक दास-स्त्री का पातिव्रत भङ्ग किया जाय तो उनके प्रति अदा होनेवाला ऋण जब्त कर लिया जायगा और दास स्त्रियों का पतिव्रत भंग किया जायगा तो उनका छुटकारा तुरन्त कार्य्य रुप में होगा।

एक आर्य्य दास की संतान आर्य्य कहलायेगी। दास को इस प्रकार की आय अपने पास रखने का पूरा अधिकार होगा जो कि उसने अपने स्वामी के पास रहकर अन्य अवकाश पाये हुये समय में कमाई हो। वह अपने पिता से दायभाग का प्राप्त किया हुआ धन भी अपने पास रख सकता है।

वेतनवाले दास—दास को नियत वेतन मिलता रहेगा × × × वतन के सम्बन्ध में झगड़ों का निपटारा साक्षी के कथनानुसार होगा। यदि स्वामी अपने दास का वेतन नहीं देगा तो उससे इस धन से दस गुना दण्ड-कर लिया जायगा। अर्थशास्त्र अधिकरण ३ अध्याय १३

कर्तव्य है कि वह अपने मित्रों और सम्बन्धियों को उत्साह दिलावे कि यही दान करना चाहिये। इससे स्वर्ग का प्राप्त होना सम्भव है। और स्वर्ग से उत्तम कोई वस्तु नहीं।

इस घोषणा पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

यश और कीर्ति।

घोषणा न० १० में वास्तविक यश और उसकी महिमा बतलाई गई है—"महाराज यह नहीं मानते कि यश और कीर्ति से बहुत लाभ होता है। सिवाय इसके कि अब वर्तमान और भविष्य में लोग मेरा धर्मोपदेश सुनें और उनका अनुसरण करें। केवल इसी अभिप्राय से महाराज यश अथवा कीर्ति चाहते हैं।" अथवा महाराज यही यश और प्रसिद्धि चाहते हैं।

महाराज जो कुछ उद्योग करते हैं वह अधिकांश परलोक के निमित्त करते हैं। जिससे प्रत्येक मनुष्य आगामी खटकों से स्वतंत्र हो जावे। यह खटका बुराई का खटका है। इस खटके से मुक्त होना बहुत कठिन है। चाहे (मुक्ति का अभिलाषी पुरुष) बड़ा आदमी हो अथवा छोटा, अतिरिक्त इसके कि शेष के सारे उद्देश्य को छोड़ कर, मनुष्य इसी के लिये अटूट उद्योग करे। किन्तु बड़े आदमियों के लिये ऐसा करना कठिन है।

महाराज बार बार अपनी घोषणाओं में परलोक की चर्चा करते हैं। क्या इससे यह अभिप्राय है कि इस जन्म के सुख तुच्छ दृष्टि से देखने योग्य हैं। बौद्धधर्म के सारे उपदेश इस

विचार का समर्थन करते हैं। किन्तु सुख दो प्रकार के हैं—उचित और अनुचित (धर्मानुसार, तथा धर्म्म विरुद्ध)। क्या वह सुख भी निन्दीनीय हैं जो उचित हैं और धर्म्म जिनकी आज्ञा देता है। मेरे विचार से सारी प्रकृति हमको यह शिक्षा देती है कि इस संसार में वहाँ तक सुख की इच्छा उचित और धर्मानुकूल है जहाँ तक सुख चाहिये और जिसे प्राप्त करने में हम किसी अन्य को हानी नहीं पहुँचाते और धर्म्म के किसी नियम के विरुद्ध कार्य्य नहीं करते। जहाँ हमारा यह कर्तव्य है कि हम कोई ऐसा कार्य्य न करें जो परलोक में हमारे दुख और बन्धन का कारण हो अथवा जो अन्त में हमारी मुक्ति के मार्ग में बाधक हो अथवा जो हमको मनुष्यता से च्युत करे वहाँ संसार के सारे भोगों का त्याग करना न उचित है न आवश्यक है। यश और कीर्ति की इच्छा कोई उच्च इच्छा नहीं है। भगवद्गीता में भी यही उपदेश है और हमारे मत में इसका यह अर्थ नहीं है कि यश और कीर्ति की इच्छा करना पाप है। किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि वास्तविक उच्च कर्म्म वही है जो बिना यश और कीर्ति की इच्छा के किया जावे। धर्म्म-कार्य्य इस कारण करना चाहिये कि वह धर्म्म-कार्य्य है। और उनका करना हमारा धर्म्म है। यह विचार भी कि इससे हमको परलोक में सुख मिलेगा हमारे विश्वास का भाग न होना चाहिये और न हमारी इच्छा का। यदि इच्छा और विश्वास को पृथक करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त ही कठोर विषय अवश्य है।

वास्तविक दान ।

घोषणा नं० ११ में सत्य-दान के अर्थ बतलाये गये हैं । "ऐसा कोई दान नहीं जैसा धर्म का दान । धर्म्म में मित्रता, धर्म्म में दान और कर्म्म का सम्बन्ध है ।"

धर्म्म का दान क्या है ।

सेवकों और दासों के साथ उचित बर्ताव करना, माता, पिता, मित्रों, साथियों, सम्बन्धियों, साधुओं और ब्राह्मणों को देना । यज्ञ में पशुओं की बलि न करना । प्रत्येक पिता पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र और साथी को चाहिये कि दान दे और यही कहे कि ऐसा ही करना श्रेष्ठ कर्म्म हैं । इस प्रकार का अनुसरण करने से मनुष्य इस संसार को भी जीत लेता है और परलोक में भी धर्म्म दान से अमृत-फल को पाता है ।" अर्थात् ऐसा फल उसको मिलता है जो कभी समाप्त नहीं होता (अथवा वह अपने लोक परलोक दोनों को प्राप्त कर लेता है) । वेन्सन्ट स्मिथ ने दो उदाहरण अन्य देशों से इस प्रकार की शिक्षा के सम्बन्ध में दी है । एक उदाहरण सिंहलद्वीप के राजा निश्शंक मल की, जिसने ईसा की बारहवीं शताब्दी में इस प्रकार की एक घोषणा का प्रचार किया था । दूसरा करामुएल की । करामुएल ने रोमन कैथोलिक ईसाइयों पर जो अत्याचार किये उनसे इतिहास के पन्ने रङ्गे हुए हैं । आयरलैण्ड की जन-संख्या आज तक इसको नहीं भूली । हम आश्चर्य्य में हैं कि इसाई लेखक क्यों बारबार करामुएल की

समता अशोक से करते हैं। करामुएल की आत्मीयता को अशोक की आत्मीयता से क्या सम्बन्ध हो सकता है? उसकी आत्मीयता ने कभी मनुष्यों की हत्या से मुँह न मोड़ा। मेरे मत में धर्म के नाम पर रक्त-पात करना ऐसा ही निन्दनीय है जैसा देश-विजय और धन लेने में। जैसे कि घोषणा न० १२ में इसी विषय का उपदेश है।

सब धर्मों से प्रेम-भाव।

महाराज देवानाम प्रियदर्शी, मनुष्यों की चाहे साधु हो अथवा गृहस्थी दान से अथवा अन्य किसी प्रकार से पूजा करते थे। महाराज दान की और बहि: रीति से पूजा का इतना विचार नहीं करते जितनी कि इस कार्य्य के वास्तविक तत्व से। इस तत्व के भिन्न-भिन्न भेद हैं किन्तु जिह्वा की तपस्या अर्थात् जिह्वा को वश में रखना सब का मूल है। जैसे किसी मनुष्य को उचित नहीं कि अपने मत की प्रशंसा करे और अन्य मत की निन्दा विना किसी कारण करे। निन्दा किसी विशेष कारण ही पर की जा सकती है। क्योंकि प्रत्येक मत किसी-न-किसी कारण से अवश्य पूजनीय है।

ऐसे आचरण से मनुष्य अपने मत का पद उच्च करता है और अन्य मतों की भी सेवा करता है। इसके विरुद्ध आचरण करने से वह अपने मत की हानि करता है और अन्य मतों को हानि पहुँचाता है। जो मनुष्य केवल अपने मत के मोह के

कारण और उसका ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये अन्य मतों की निन्दा करता है वह अपने आचरण से अपने मत को अत्यन्त हानि पहुँचाता है।

इस विषय में एक दूसरे का विचार रखना ही फलदायक है। अर्थात् अन्य मनुष्यों के ग्रहणात्मक-धर्म्म को भी सुनना चाहिये। क्योंकि महाराज की यही इच्छा है कि सब मतवाले भलीभाँति धार्मिक शिक्षा से जानकारी प्राप्त करें और वास्तविक सत्य बात पर विश्वास रखें।

अतः आवश्यक है कि सारे धर्म्म के अनुयायिओं को यह ज्ञात रहे कि महाराज दान का अथवा बहिः पूजा का इतना विचार नहीं रखते जितना इस कार्य के वास्तविक तत्व का और इस बात का कि सब लोग सब धर्म्मों का मान करें।

प्राकृत शब्द जिनका अनुवाद हमने एक दूसरे का विचार किया है। 'समवायो है'।

'बहुका' का अनुवाद मान अथवा स्तुति है।

और लहुका का अनुवाद निन्दा किया गया है।

सेन्सरों के सम्बन्ध में जो पहली घोषणा की थी। उसमें विशेष स्त्रियों के सेन्सरों का वर्णन नहीं लिखा। ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्रियों के सेन्सर बाद में रखे गये। इस घोषणा में एक शब्द 'दाज भूमिका' आता है। जिसका अनुवाद चारागाहों के अध्यक्ष किया गया है। किन्तु प्रगट है कि घोषणा के विषय से चारागाहों के अध्यक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

सम्भव है कि इस शब्द से उन लोगों से अभिप्राय होगा जिनके अधिकार में यह कार्य था कि जहाँ कहीं धार्मिक चर्चा अथवा शास्त्रार्थ की सभायें हो अथवा जहाँ भिन्न-भिन्न मत मतान्तरों के लोग किसी धर्म चर्चा के लिये एकत्रित हों वहाँ वह देख भाल करें।

इस घोषणा का विषय इस योग्य है कि उसको स्वर्णाक्षरों में लिखकर प्रत्येक धार्मिक उपदेशकों के कमरे में लटका देना चाहिये। क्योंकि यदि सारी जनता इसका अनुसरण करने लगे तो संसार से बहुतसा झगड़ा वैर और निर्दयता दूर हो जावेगी। मेरा तो अपना स्वयं विचार यह है कि वास्तव में संसार में कोई मनुष्य धर्म के लिये न झगड़ा करता है न वैर, प्रत्येक धार्मिक झगड़ा और वैर की नींव में सांसारिक स्वार्थ और धन की लालच होती है। किन्तु तो भी इसमें सन्देह नहीं कि धर्म की ओट में बहुत कुछ किया जाता है जो अत्यन्त अनुचित और बुरा है। हमारा यह कहना है कि भारत में इस्लाम धर्म आने के पूर्व कभी धार्मिक युद्ध उस परिमाण में अथवा उस प्रकार का नहीं हुआ जैसा कि इसाई अथवा इस्लामी देशों में हुआ था। योरोपियन इतिहास लेखक भी इसको स्वीकार करते हैं। वेन्सन्ट स्मिथ अपनी पुस्तक अशोक के पृष्ठ १६२ पर लिखता है—"भारत के सारे धर्म पन्थों और मतों में बहुत कुछ ऐसा है जो सब में पाया जाता है। और प्राचीन राजाओं में से एक बड़ी संख्या बहुतधार्मिक

विभिन्नता को समभाव की दृष्टि से देखती थी। धार्मिक अत्याचार जो कभी होते थे तो वे घृणास्पद थे। इस लेखक के मत में इसका बड़ा कारण यह है कि इन सारे धर्मों में जो इस्लाम के आगमन से पूर्व, भारत-भूमि से उत्पन्न हुये, बहुत से सिद्धान्त और नियम ऐसे थे जो सब में पाये जाते थे। अथवा इस प्रकार कहिये कि उनका वास्तविक नियम एक ही था। जैसे सारे मत मतान्तर, कर्म और आवागमन के प्रश्न का स्वीकार करते थे और धर्म के वास्तविक तत्व पर सब एक थे। सब का अभिप्राय यह था कि जीवन को पवित्र बनाया जावे और लोगों को इन्द्रिय दमन की शिक्षा दी जावे। यही वास्तविक तत्व है जिस पर महाराज अशोक बार बार जोर देते हैं। इसी कारण से महाराज अशोक को कुछ कठिनाई न थी कि वह बौद्ध धर्म के अनुयायी होते हुये जैनियों, ब्राह्मणों और हिन्दुओं की भी सेवा करें। उनके पण्डितों और उपदेशकों का आदर करें, उनको दान दें और उनके पवित्र स्थानों की भी सहायता करें, जैसे कि बौद्ध होते हुये उन्होंने जैनी साधुओं के लिये बहुत द्रव्य व्यय करके गुफायें बनवाईं और भीतर से उन पर्वतों पर ऐसा रोगन कराया की वह दर्पण की भाँति चमकती थीं तथा असंख्य धन-धान्य व जागीरें दान में हिन्दू व जैन मन्दिरों और अन्य पवित्र-स्थानों को दिये। कश्मीर में महाराज अशोक ने बहुत से हिन्दू मन्दिर बनवाये और कितनों का पुनरोद्धार कराया। वास्तव में बहुधा शासकों का यही कर्तव्य था। और इति-

हास में अन्य राजाओं का भी वर्णन आता है। जिन्होंने धार्मिक कार्यों में इस प्राकार उदार चित्त होने का प्रमाण दिया।

इस विषय में उड़ीसा के राजा खारवेल का विशेष वर्णन करने योग्य है। जिन्होंने ठीक इसी प्रकार की आज्ञा का प्रचार किया था जैसा कि अशोक ने किया!

महाराज हर्ष और अन्य हिन्दू राजाओं ने भी इसी प्रकार का व्यवहार किया।

किन्तु अनेक दशाओं में अनेक राजाओं ने अपने से विभिन्न मतवालों पर अत्याचार भी किये।

वेन्सन्ट स्मिथ इस बात पर जोर देता है कि उस समय भारत में इसाई, इस्लाम और ज़ोराश्टर का नाम न था और इसलिये जब अशोक अन्य मतों से उदार भाव का उपदेश करते हैं तो उनका अभिप्राय ऐसे ऊपरी धार्मिक युद्ध से न था जैसा कि इस्लाम और इसाई धर्म में हैं बल्कि उन मतों से था जो हिन्दू धर्म की ही विभिन्न शाखायें थीं। और जिनके बहुत से सिद्धान्त एक ही थे॥

यह मत किसी प्रकार ठीक है किन्तु जब हम इस बात का विचार करते हैं कि महाराज अशोक ने अपनी घोषणाओं में किसी प्रकार के धार्मिक सिद्धान्तों का उपदेश नहीं किया बल्कि जो शिक्षायें दी वह ऐसी हैं जो पशुओं की हत्या के अतिरिक्त लगभग सब धर्मों में पाई जातीं हैं तो इसमें कुछ सन्देह नहीं रहता कि यदि महाराज अशोक के समय में भारत में

इसाई और इस्लाम धर्म भी होते तो वे इस प्रकार कार्य्य करते। जैसे इस्लामी राज्यकाल में भी कई एक हिन्दू राजाओं ने ऐसा ही किया। ग्वालियर राज्य में अब तक राज्य की ओर से मुहर्रम के दिन बहुत व्यय किया जाता है। महाराज अशोक ने जब 'बौद्ध धर्म ग्रहण किया उस समय रुढ़ी सिद्धान्त स्थापित हो चुके थे। किन्तु उन्होंने अपने राज्य सम्बन्धी घोषणा में कभी उनका व 'न नहीं किया। केवल परलोक की चर्चा की। उनकी एक घोषणा ऐसी है जिसमें उन्होंने बौद्ध शास्त्रों की विशेष चर्चा की और केवल एक घोषणा ऐसी है जिसमें बौद्ध चर्च अथवा संघ का वर्णन किया है। उसका वर्णन हम आगे करेंगे। अपनी घोषणा में महाराज बार-बार इस बात को स्वीकार करते हैं कि वह अपनी सारी प्रजा को अपनी सन्तान समझते हैं और वह बार बार यह उपदेश करते हैं कि ब्राह्मणों और अन्य मतों के पथ-प्रदर्शकों का आदर सत्कार करना चाहिये और उनके पवित्र स्थानों को दान देना चाहिये। और किसी धर्म की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

साथ ही इस घोषणा में धार्मिक चर्चा को बिल्कुल छोड़ नहीं देते परन्तु प्रेम और शान्ति से धार्मिक चर्चा के लिये मैदान खुला छोड़ते हैं और यही चाहते हैं कि धार्मिक चर्चा करते हुये पक्षपात और दलबन्दी को पृथक रक्खा जावे।

इस्लामी शासकों में अकबर बादशाह ने अपने अन्तिम समय में ऐसा ही किया। उन्होंने कुल धर्म के वर्णन सुने। सब

धर्म के उपदेशक और पादरी को अपने दर्बार में बुलवाये उनका आदर किया, उनको अपनी उदारता से दक्षिणायें दीं। उनके उपदेश सुने और लोगों को भी शिक्षा दी कि वे आपस में सर्वदा प्रेम भाव रक्खें।

चाणक्य ऋषि ने भी अपने अर्थशास्त्र में इस प्रश्न पर टिप्पणी लिखी है और लिखा है कि प्रत्येक राजा का यह धर्म है कि वह धार्मिक जीवन का आदर करे। और अपनी प्रजा के धार्मिक और जातीय सभाओं और उत्सवों में श्रद्धापूर्वक सम्मिलित हो।

दूसरे मत मतान्तरों और धर्मों को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखे और किसी के धार्मिक कर्म में किसी प्रकार से बाधक न हो। और किसी पुरुष से विभिन्न धर्मावलम्बी होने से घृणा और द्वेष न करे—यह हिन्दूइज्म की विशेषता है। और हिन्दू-रक्त में रमा हुआ है। बौद्ध इज्म प्रथम भारतीय धर्म है जिसने प्रचार के निमित्त भारत से बाहर मिश्नरी अथवा प्रचारक भेजे; नहीं तो वास्तव में हिन्दू इज्म में चर्च का ध्यान ही नहीं है। हिन्दू इज्म तो प्रबल रूप से यह सत्यता मानता है कि प्रत्येक मनुष्य का धर्म पृथक है, वह व्यक्तिगत है क्योंकि उसकी निर्भरता उसकी अपनी प्रकृति पर और अपनी आचारिक, आत्मिक और मानसिक वृद्धि पर है। उसपर उसके सामाजिक, नैतिक प्रभाव, उसके सदाचार का भी प्रभाव पड़ता है। हिन्दू सभ्यता में जनता की अधिक संख्या में एक-

त्रित होने के दो ही अवसर हैं—एक यज्ञ और दूसर तीर्थ। यह दोनों कर्म अंशमात्र ही धार्मिक और सामाजिक थे, नहीं तो पूजा तो प्रत्येक हिन्दू अपनी पृथक ही पृथक करता था। और अब भी पृथक ही पृथक करता है। अतः हिन्दू इज्म प्रत्येक मनुष्य का स्वाभाविक और जन्मसिद्ध अधिकार समझा जाता है कि प्रत्येक मनुष्य जो चाहे अपना धर्म रक्खे, जो सिद्धान्त इच्छा हो माने, जिस प्रकार से इच्छा हो पूजा करे किन्तु अपने सामाजिक व्यवहारों में नियमबद्ध रहे। यह धार्मिक और आत्मिक स्वतन्त्रता ही हिन्दू इज्म की शक्ति थी और इसीमें उसकी निर्बलता है।

शिलालेख न० १३ का सारांश हम पहले लिख चुके हैं उसका विषय कलिङ्ग-विजय से सम्बन्ध रखता है।

घोषणा न० १४ मानो इन सारे लेखों पर एक नोट है। जिसका विषय यह है कि "मेरी आज्ञा से यह शास्त्र पर्वत और शिलाओं पर खुदवाया गया है। उसका विषय कहीं संक्षेप और कहीं विस्तीर्ण है और कहीं माध्यमिक, क्योंकि मेरा राज्य विस्तृत है। मैंने बहुत कुछ लिखा है और बहुत कुछ अभी और लिखूँगा। प्रत्येक स्थान और प्रत्येक विषय को दोहराया गया है। कई शब्द और वाक्य बार बार प्रयोग किये गये हैं। क्योंकि उनमें मधु की सी मिठास है। और आशा की जा सकती है कि (बार बार दुहराने से) लोग उनपर आचरण करने के योग्य होंगे। यह सम्भव है कि कई लेख लिखने वालों की मूर्खता और भूल से अथवा किसी शब्द के इधर उधर हो जाने से अपूर्ण रह गई हों।

कई योरोपियन समालोचकों ने यह समालोचना की है कि महाराज अशोक की घोषणाओं में अनेक प्रकार की साहित्यिक त्रुटियाँ हैं। न उनकी भाषा शैली ठीक है और न उनका कोई क्रम ही है। अनेक बातें बार बार दुहराई गई हैं जो सुनने में बुरी मालूम होती हैं। किन्तु इस लेख में इन समालोचनाओं का उत्तर मिल जाता है।

महाराज अशोक ने यह लेख विद्वानों अथवा पण्डितों या नीतिशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये नहीं लिखे। जनता के लिये थे और उनका उद्देश्य भी यह था कि बार बार उनका ध्यान लेखों के विषय की ओर दिलाया जाय। जिस प्रकार ऊपर प्रगट किया गया है, उससे भी यही ज्ञात होता है। यदि महाराज का अभिप्राय साहित्यिक योग्यता का दिखलाना होता तो यह कार्य रीति से किया जाता। शिलाओं, पर्वतों और स्तम्भों पर इन घोषणाओं को खुदवाने का तो यही अभिप्राय था कि वह प्रत्येक छोटे बड़े के सम्मुख रहे और प्रत्येक उसको पढ़ सके। इन घोषणाओं की भाषा प्रगट करती है कि महाराज अशोक के समय में संस्कृत का प्रचार पूर्ण रूप से था। बौद्ध धर्म के सारे शास्त्र पालीभाषा में हैं और साधारणतः विद्वानों का यह विचार है कि उस समय शुद्ध संस्कृत नहीं बोली जाती थी बल्कि उस समय की साधारण बोली पाली अथवा प्राकृत थी जो संस्कृत की पुत्रियाँ हैं। यह विचार सत्य है तो इन लेखों की भाषा की साधारणता का कारण भी समझ में आ जाता है।

इस प्रकार तो धार्मिक शास्त्रों की भाषा सर्वदा साधारण होनी चाहिये। किंतु इस प्रकार की आज्ञाओं की भाषा का जो जनता के लिये हों विशेषतः साधारण होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक ही घोषणा देश के विभिन्न भागों में घोषित की गई, हिन्दूकुश से लेकर बङ्गाल तक और कश्मीर से लेकर रास-कुमारी तक यह घोषणायें फैली हुई हैं। कोई नहीं कह सकता कि कितने नष्ट हो गये, कितने पृथ्वी के नीचे दब गये, कितने गिरा दिये गये और कितने अभी तक वर्तमान हैं? किसी को ज्ञात नहीं। इसीलिये ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया था जो सरल थी। उसको आप प्राकृत कहें अथवा सरल संस्कृत कहें अथवा पाली इससे कुछ भेद नहीं पड़ता।

कहीं कहीं विषय में वाक्यों की बनावट में नाम मात्र की विभिन्नता भी है। उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त के शिला लेख * खरोष्ठी अक्षर में हैं और शेष सारे लेख ‡ ब्राह्मी लिपि में हैं।
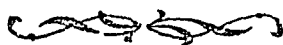
(*) अशोक पृष्ठ १४४

(‡) ब्राह्मी वर्तमान काल की देवनागरी की माता है। और खरोष्ठी लिपि फारसी की भाँति दाहिने से बायें को लिखी जाती है। योरोपियन पुरातत्व वेत्ताओं के मत में खरोष्ठी लिपि भारत में पश्चिमी एशिया और फारस से आई (केम्ब्रिज हिस्ट्री पृष्ठ ६२)। केवल मानसहरा, जिला एब्टाबाद व शहबाज गढ़ी के लेख खरोष्ठी भाषा में हैं, शेष ब्राह्मी में हैं

५

महाराज अशोक की राजनैतिक और अर्ध-राजनैतिक घोषणायें।

अब हम उन घोषणाओं का वर्णन करेंगे जो राज्य प्रबन्ध के उद्देश्य से प्रचारित किये गये। महाराज अशोक की दृष्टि में राज्य और शासन, धर्म का अङ्ग था और इसलिये वह अपने नैतिक प्रबन्ध में भी धर्म के पाबन्द थे और उनका राज्य और राजनैतिक अधिकार भी, धर्म के प्रचार और धर्म पर लोगों को दृढ़ करने के लिये था। कलिङ्ग की घोषणा में से घोषणा न० १ में महाराज, कलिङ्ग प्रान्त में नियत किये हुये राज कर्मचारियों को निम्नलिखित चेतावनी करते हैं—

सीमान्तिक लोगों के लिये घोषणा

यह घोषणा प्रधानाध्यक्षों (समाया) * के लिये है। इसमें महाराज कहते हैं "जो कुछ मेरा मत और मेरी इच्छा है उनपर आचरण किया जावे और उनको विशेष उपाय समझा जावे। मेरे मत में इन उपायों में से एक बड़ा उपाय मेरी घोषणा में हैं जो मैं तुम्हारे नाम घोषित करता हूँ—

"सारे मनुष्य मेरे पुत्र हैं, जिस प्रकार मेरी इच्छा है कि मेरी सन्तान हर प्रकार से लोक व परलोक में सुखी रहें वही मेरी अभिलाषा सब लोगों के लिये है।"

(यदि तुम पूछो कि सीमान्तिक लोगों के सम्बन्ध में महाराज की क्या आज्ञा है तो मेरा यह उत्तर है):—

"महाराज की इच्छा है कि वे मुझसे भयभीत न हों; वे मुझपर भरोसा रखें—उनसे मुझे सुख मिलेगा दुःख नहीं, वे यह भी समझ लें कि उनके साथ अत्यन्त सज्जनता का व्यवहार करूँगा और मेरी इच्छा है कि वह मेरे सन्तोष के निमित्त

---

* ऐसा ज्ञात होता है कि कलिंग को जीतने के पश्चात् महराज ने इस राज्य को उस राज्य के सहित जो कारोमण्डल पर अथवा उसके सन्निकट था एक वाइसराय के अधीन कर दिया था। यह वाइसराय महाराज का स्वयं पुत्र था। कलिङ्ग की राजधानी तौसाली थी जिसको अब धौली कहते हैं। दक्षिणी भाग का बड़ा स्थान जूनागढ़ था जहां यह लेख एक पर्वत पर खुदा हुआ मिला है। इसी को समाया कहते है। वेन्सन्ट स्मिथ, अशोक पृष्ठ १६३।

धर्म का आचरण करें और इस प्रकार लोक व परलोक दोनों को जीत लें।'

इस उद्देश्य से मैं आप लोगों को इन घोषणाओं द्वारा अपने दृढ़ विचार और उद्देश्य को वर्णन करके अपने कर्तव्य से पृथक होता हूँ, अब आपका कर्तव्य है कि इन आज्ञाओं का अनुसरण करके अपना कार्य करें। उन लोगों को मुझपर भरोसा करना सिखलावें और उनको इस सत्यता का विश्वास दिलावें कि महाराज हमारे पिता तुल्य हैं और उनको हमसे वैसा ही प्रेम है जैसा कि उनको अपने आपसे है। हम महाराज की सन्तान हैं। आप लोगों को अपना मत-विशेष, इच्छा और उद्देश्य बता देने से मुझे इस कार्य्य के निमित्त अनुभवी अध्यक्ष मिल जावेंगे क्योंकि आप लोग इस योग्य हैं कि उन लोगों के हृदय में मेरा विश्वास बैठा दें और उनको इस लोक में सुख और परलोक में जय प्राप्त करा दें और इस प्रकार आप भी हमारे ऋण से उऋण हो जावें। इस उद्देश्य के लिये यह धर्मशास्त्र यहाँ पर लिख दिया गया है कि मेरे प्रधानाध्यक्ष सर्वदा इसी उद्योग में रहें कि प्रजा उन लोगों का विश्वास करें और उनको धर्ममार्ग पर चलाते रहें। प्रत्येक चतुर्थमास तिष्य के दिन यह धर्मशास्त्र अवश्य सुनाया जावे, चाहे कभी एक एक मनुष्य को ही सुनाना पड़े। ऐसा करने से आप मेरी आज्ञा पर कार्य्य करेंगे।

नोट—यह स्मरण रहे कि जहाँ तक हमसे सम्भव है इन घोषणाओं का शाब्दिक उल्था करते हैं किन्तु किसी अवसर पर शाब्दिक

अनुवाद करना अत्यन्त असम्भव हो जाता है। इसलिये वाक्य को वर्तमान रखने और अर्थ को स्पष्ट करने के लिये कभी कभी शब्दों की न्यूनता और अधिकता की जाती है, किन्तु बहुत ही कम। भारतवर्ष में तीन ऋतुयें मनाते हैं अर्थात् प्रथम जाड़ा, द्वितीय ग्रीष्म, तृतीय बरसात—प्रत्येक के लिये चार २ महीने निमय हैं। बरसात को साधारणतः चौमासा कहते हैं।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में छः ऋतुयें गिनाई गई हैं किन्तु इस घोषणामें तीन ही का वर्णन है। इस घोषणा में महाराज कहते हैं कि सब प्रजा मेरी सन्तान है। भगवान बुद्ध ने कहा है—"सब प्राणी मेरे बच्चे हैं।"

सूबों के कर्म्मचारियों के नाम घोषणा।

घोषणा न० २ का विषय भी लगभग ऐसा ही है। कदाचित जब देखा गया कि पहली आज्ञा पर पूर्ण रूप से कार्य्य नहीं होता तो दूसरी बार यह घोषणा की गई जैसा कि उसमें लिखा है।

" + + आप लोगों ने भली भाँति इस सत्यता का अनुभव नहीं किया। कुछ मनुष्य केवल उसके एक भाग पर ध्यान देते हैं; सब पर नहीं। इसलिये आपका कर्तव्य है आप सब विषय पर अमल करावें क्योंकि गवर्नमेण्ट की यह प्रधान नीति है। अर्थात् यह कि राज्याज्ञा का पूर्ण रूपसे पालन किया जावे।

कई बार ऐसा भी होता है कि किसी मनुष्य को बन्दी किया

जाता है। अर्थात् उसको दण्ड दिया जाता है । जब कोई मनुष्य विना उचित प्रमाण मिले बन्दी किया जावे तो उससे बहुत से लोगों को महान् कष्ट होता है । इस दशा में तुम्हारा कर्तव्य है कि न्याय करो। अनेक मनुष्य स्वाभाविक डाह रखने वाले, उद्धत स्वभाव वाले, कठोर, असन्तोषी होते हैं। निरुत्साह और पुरुषार्थहीन होने से सफलता असम्भव है।

तुम्हारा यह कर्तव्य है कि इस बात की इच्छा रक्खो कि तुम्हारा स्वभाव ऐसा न हो। सारे कार्य का मुख्य तत्व यह है कि गवर्नमेण्ट-नीति पर कार्य्य दृढ़ता और स्थिरता से किया जावे। निरुत्साही अपने आप हाथ पैर हिलाना नहीं चाहता है तोभी यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपने हाथ पैर हिलावे आगे बढ़े और बढ़ता हुआ चला जावे।

इसी प्रकार आवश्यक है कि तुम अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दो और दूसरों को यह चेतावनी करते रहो कि महाराज की आज्ञा ऐसी है । इसलिये मेरी आज्ञाओं का सर्वदा ध्यान रक्खो उनको पूर्ण करने से महान् फल की प्राप्ति होती है । और उनको न पूर्ण करने से अनेक दुख भोगने पड़ते हैं । जो लोग इस काम में त्रुटि करते हैं उनको न तो परलोक ही मिलता है और न राज्य-प्रशंसा । कर्तव्य का पूर्ण रीति से बिना पालन किये तुम कदापि मेरी प्रसन्नता नहीं प्राप्त कर सकते। मेरी आज्ञाओं के अनुसार कार्य्य करने से तुमको परलोक भी प्राप्त हो जायगा और मेरी ओर से जो तुम पर ऋण है वह भी पूर्ण हो जावेगा।

नोट—पहले वाक्य में इस शास्त्र को लोगों को सुनाने के सम्बन्ध में वही शिक्षायें हैं जो घोषणा न० १ में थीं और फिर लिखा है कि "इस शास्त्र के लिखे जाने का यह उद्देश्य है कि ग्रामों के राज्य-कर्मचारी सर्वदा यह उद्योग करते रहें कि किसी मनुष्य को बिना उचित कारण के बन्दी न किया जाय और न दण्ड दिया जावे।"

जैसे कि इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये मैं पाँच वर्ष के बाद क्रमशः ऐसे आदमी भेजूँगा जो नम्र स्वभाव के और सहन-शील हों और जिनको जीव-रक्षा का ध्यान रहे और जो मेरी आज्ञानुसार कर्तव्य पालन करें।

उज्जैन से, राजकुमार इस प्रकार के राज्य-कर्म्मचारी इस उद्देश्य से बाहर भेजेगा जिससे तीन वर्ष न व्यतीत होने पावे। इसी प्रकार तक्षशिला से।

'जब प्रधान-कर्म्मचारियों की बदली बारी से हो तो उनका कर्तव्य है कि अपने साधारण राज्य-कर्तव्य का ध्यान रखते हुये इस बात की ओर भी ध्यान दें और महाराज की आज्ञा-नुसार कार्य्य करें।'

इस घोषणा में दो सूबों की चर्चा की गई है। अर्थात् तक्षशिला और उज्जैन। इससे पहली घोषणा में धौली और जूनागढ़ के प्रान्तों की चर्चा थी। जिससे ज्ञात होता है कि महाराज अशोक के राज्य में केन्द्र राज्य के अतिरिक्त शेष राज्य के चार भाग थे। जिनका प्रबन्ध वाइसरायों के अधीन था जो विशेषतः राजकुमार

हुआ करते थे । जैसे स्वयं महाराज अशोक भी अपने पिता के समय में तक्षशिला और उज्जैन के वाइसराय रह चुके थे ।

इस घोषणा से प्रकट होता है कि महाराज अशोक के समय में भी कर्मचारी अथवा अपराधी को दण्ड दिया जाता था । कदाचित महाराज उसको दूर करना चाहते थे किन्तु कर न सकते थे । इसलिये उन्होंने इस प्रकार की आज्ञाओं की घोषणा की जिससे उनके कर्म्मचारियों को सर्वदा ध्यान रहे कि इस विषय में महाराज की हार्दिक इच्छा क्या है ? अर्थात् किसी विना उचित कारण के कष्ट न पहुँचे । हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि फौजदारी नीतियों की कठोरता और कष्ट की प्रथा महाराज अशोक की मनुष्यता और उस समय की हिन्दू सभ्यता पर घृणित धब्बे हैं । और इस वात से हमको सन्तोष नहीं होता कि शेष संसार ने भी (जिनमें योरोपियन संसार भी सम्मिलित है) इस असभ्य प्रथा को केवल पिछली शताब्दी में ही छोड़ दिया है । इस घोषणा से यह भी प्रगट होता है कि यद्यपि प्रधानाध्यक्षों को प्रति पांच वर्ष पश्चात् वदल दिया जाता था किन्तु कुप्रबन्ध की दशा में कई कर्मचारियों को तीसरे साल भी वदल दिया जाता था ।

स्तम्भिक घोषणायें ।

इस समय तक जिन घोषणाओं का अनुवाद दिया गया है वह सब की सब सम्भव है कि अभिषेक से तेरहवें, चौदहवें अथवा पन्द्रहवें वर्ष में प्रचारित की गई थीं । इनमें से कई

घोषणाओं में तो प्रचारित-वर्ष लिखा है और कई एक में नहीं लिखा है। कई घोषणाओं के प्रचारित-वर्ष संदेहयुक्त हैं तो भी वह सारी घोषणायें जिनका अनुवाद नीचे लिखा जाता है वह अन्तिम समय के हैं अर्थात् २७,२८,२९ और तीसवें वर्ष के।

न० १—महाराज निम्न लिखित घोषणा करते हैं। जब मुझे अभिषेक हुये छब्बीस वर्ष व्यतीत हो गये तो मैंने यह धर्मशास्त्र प्रचारित किया—

धर्म पूर्वक अत्यन्त प्रेम किये बिना, अपनी अत्यन्त परीक्षा बिना, अत्यन्त आज्ञाकारी हुये बिना, अत्यन्त भयभीत हुये बिना, अत्यन्त पुरुषार्थ के बिना लोक परलोक का जीतना कठिन है।

तो भी मेरी घोषणाओं के कारण धर्म्म के प्रति लोगों की आकांक्षा और प्रेम दिन दिन बढ़ता है और बढ़ता जायगा।

मेरे कर्मचारियों ने चाहे उच्चपद के हों अथवा माध्यमिक अथवा निम्न पद के मेरी शिक्षा के अनुसार कार्य्य किया है और लोगों को उचित मार्ग का अनुसरण कराया है (क्योंकि उग्र स्वभाव मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगाना ही पड़ता है) और अन्त * महामात्राओं ने भी। क्योंकि नियम भी है कि धर्म की रक्षा से धर्म का फल मिलता है।

---

* अन्तमहामात्र से उन अध्यक्षों से अभिप्राय है जिनके अधीन सीमा की रक्षा थी। इसलिये वेन्सन्ट स्मिथ उसका अनुवाद Wardens of the Marches करता है।

न० २—महाराज निम्नलिखित घोषणा करते हैं—धर्म्म अत्यन्त उत्तम है। किन्तु धर्म क्या है? अर्थात् कम अधर्म्म करना, शुभ कर्म्म बहुत करना, दया करना, दान करना, सत्य बोलना और पवित्र रहना।

चक्षुदान (अन्तः अथवा आत्मा की आँखों का दान) मैंने कई प्रकार से किया है। मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों और जीवों के लिये मैंने बहुत कुछ किया है। यहाँ तक कि (उनके प्राणों की भी रक्षा की है अर्थात्) उनको प्राण दान भी दिये हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से उत्तम कार्य्य अथवा कल्याणकारी कार्य्य किये गये हैं। इस उद्देश्य से कि लोग धर्म्ममार्ग पर चलें और धर्म्म चिरकाल तक स्थिर रहे। मैंने धर्म्म-मर्य्यादा लिखवा कर प्रचारित किया है। जो कोई उस शिक्षाके अनुसार अपना आचरण रक्खेगा वह शुभ कर्म करेगा।

यह घोषणा मनुष्य की उस निर्बलता का प्रमाण है जो धर्मात्माओं को भी नहीं छोड़ती अर्थात् अपने शुभ कर्मों की अपने आप प्रशंसा करनी। हम इसको अभिमान तो नहीं कह सकते हाँ "अपने मुँह से अपनी करनी" कह सकते हैं।

न० ३ महाराज कहते हैं—

मनुष्य अपने शुभ कर्म्म देखता है और कहता है कि मैंने यह शुभ कर्म किये किन्तु वह अपने अवगुण नहीं देखता और वह यह नहीं कहता कि यह अधर्म मैंने किया है। इसलिये इस प्रकार की आत्म-परीक्षा अत्यन्त कठिन है।

तो भी प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह विचारे कि असभ्यता, निर्दयता, क्रोध, अभिमान और डाह ऐसी वस्तुयें हैं जो अधर्म्म की ओर ले जाती हैं ऐसा न हो कि उनके वश में पड़कर मैं पतित हो जाऊँ। यह विचारना चाहिये कि एक मार्ग से केवल संसार का सुख प्राप्त होता है; दूसरे मार्ग से दोनों लोक का।

न० ४—महाराज कहते हैं—जब मेरे अभिषेक को २६ वर्ष हो चुके थे तो मैंने निम्नलिखित धर्म्मशास्त्र का प्रचार किया—

जिन राज-कर्म्मचारियों को मैंने लाखों मनुष्यों पर शासन करने के लिये नियत किया उनको मैंने पारितोषिक और 'दण्ड देने में स्वाधीन कर दिया जिससे कि वह लोग विश्वास पूर्वक निर्भय होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें। प्रजा को सुख पहुँचावें और उन पर दया कर सकें। उनका यह कर्त्तव्य है कि वे सुख दुख के कारण का पता लगावें। और धर्म बिभाग के अधीनस्थ कर्मचारी के द्वारा प्रजा का ध्यान, धर्म की ओर दिलाता रहे जिससे उनको दोनों लोक में सुख मिले*।

मेरे राजकर्मचारी मेरे कार्य्य में अति उत्सुक हैं और अन्य कर्म्मचारी (पुलिसा) † भी मेरे अभिप्राय को जानते हुये मेरा कार्य्य करेंगे। और वह भी जब अवसर मिलेगा लोगों

* यह बात स्मरण रखने योग्य है कि बार बार महाराज वैशेषिक दर्शन के शब्द में दोनों लोकों के सुख पर जोर देते है।

† कृपात्र शब्द है।

को शिक्षा देते रहेंगे जिससे कि राज-कर्मचारी और भी अधिक उत्साह से मेरी प्रसन्नता प्राप्त करने की इच्छा करें। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य एक चतुर माता को अपना बच्चा समर्पण कर निश्चिन्त हो जाता है। और यह समझता है कि यह चतुर माता मेरे बच्चे के सुख के निमित्त प्रेम पूर्वक उद्योग करेगी। इसलिये मैंने राज-कर्मचारी देश के सुख और उसके कल्याण के लिये नियत किये हैं। इस उद्देश्य से कि वे निर्भय होकर, विश्वास और शान्ति पूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करें।

इसीलिये मैंने इन अध्यक्षों को पारितोषिक और दण्ड देने में स्वतन्त्रता दी है। चूंकि यह उचित है कि न्याय करने में और दण्ड देने में पक्षपात रहित समानता हो, इसलिये आज से पीछे यह रीति प्रचारित होगी—

कि जो मनुष्य मृत्यु-दण्ड की आज्ञा पाकर कारागार में हों उनको तीन दिन का अवकाश दिया जावे। इस समय अनेक अभियोग में उनके सम्बन्धी उनकी प्राण रक्षा के लिये उनके दण्डोंकी देखभाल करायेंगे और इसी उद्देश्य से दान करेंगे और व्रत रक्खेंगे। क्योंकि मेरी यह इच्छा है कि जिन लोगों के दण्ड का दिन निश्चित रूप से नियत हो चुका है उनको भी परलोक के लिये अवसर प्राप्त हो और मेरी प्रजा में धार्मिक कार्य्यों की वृद्धि हो। जिसमें अपने आपको बस में रखना और दान भी सम्मिलित है।

यह घोषणा प्रत्यक्ष रूप से महाराज अशोक की इच्छा

प्रगट करती है कि जहां तक सम्भव हो सके लोग मृत्यु के दण्ड से बच जावें। यह सम्भव है कि मृत्यु-दण्ड की अपील अथवा उसकी देखभाल अन्तिम न्यायालय में होती होगी। इसलिये आवश्यक हुआ कि मृत्यु-दण्ड की आज्ञा के पश्चात् कम से कम तीन दिन अवकाश अपराधी को और उसके सम्बन्धियों को अपील अथवा निगरानी के लिये दिया जावे। इस समय वृटिश इण्डिया में फांसी की आज्ञा की अपील के लिये सात दिन का समय नियत है। ३ दिन का अवकाश प्रगट रूप से बहुत कम ज्ञात होता है किन्तु जैसा हमने ऊपर लिखा है—सम्भव है। बल्कि संभव है कि यह नवीन अवकाश न्यायालय की अपील के निपटारे के बाद के लिये हो। क्योंकि अन्तिम वाक्य में यह कहा गया है कि जब निश्चय रूप से दण्ड की तिथि नियत हो जावे तब भी मेरी इच्छा है कि अपराधियों और उनके सम्बन्धियों को दण्ड की आज्ञा की देख भाल कराने का अवसर मिले। अथवा कम से कम उनको अपराधी के नाम पर और उसकी ओर से इस प्रकार के शुभ कर्म करने का अवसर मिले जिससे उसको परलोक में सुख मिले। मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथने इस अवकाश का तो विरोध नहीं किया किन्तु डाक्टर टामस के मत को अनुमोदन करते हुये अन्तिम वाक्य पर यह मत प्रगट किया है कि इसका उद्देश्य यह था कि यदि निगरानी स्वीकृत हो गई तो अपराधी के प्राण बच गये, नहीं तो उसको और उसके सम्बन्धियों को धर्म्म का काम करने का पुण्य प्राप्त हो गया।

न० ५—घोषणा में वह रीतियां लिखी गई हैं जो महाराज ने पशुओं के बलिदान करने के सम्बन्ध में प्रचारित किये थे और जिनका सारांश हम पहले लिख चुके हैं। उन रीतियों के वास्तविक शब्द सूची में दिये जायँगे। इस घोषणा के अन्तिम वाक्य में लिखा है कि २६ वर्ष के अन्त तक २५ वार कारागार के अपराधी मुक्त हो चुके थे।

अर्थात् प्रति वर्ष महाराज के अभिषेक के वार्षिकोत्सव के दिन बन्दी मुक्त किये जाते थे। वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है कि यह प्रथा अर्थशास्त्र के निम्न लिखित वाक्य के अनुसार था—

बादशाह के जन्म तिथि का नक्षत्र जब पड़ता हो और पूर्णमासी के दिन ऐसे बन्दी जो कि थोड़ी आयु वाले, वृद्ध, रोगी, अनाथ हों कारागार से मुक्त किये जायं अथवा सदाचारी मनुष्य अथवा वह मनुष्य जिन्होंने बन्दियों के साथ कोई समझौता कर लिया हो वह उचित बदला देकर उनको मुक्त करा सकते हैं।

जब कोई नवीन देश विजय किया जावे अथवा जब युवराज का अभिषेक किया जावे अथवा जब राजा के यहाँ राजपुत्र का जन्म हो तो कैदी साधारणतः मुक्त किये जाते हैं।

अर्थशास्त्र अधिकरण २ अध्याय ३६ प्रकरण १४६-१४७

घोषणा न० ६ में महाराज कहते हैं—

जब मेरे अभिषेक को १२ वर्ष व्यतीत हो चुके थे तो मैंने मनुष्यमात्र के कल्याण और सुख के लिये एक धर्म्मशास्त्र* प्रचा-

---

* अर्थात् घोषणा की गई।

रित कराया था जिससे कि लोग अपनी प्राचीन रीतियों को छोड़कर किसी न किसी प्रकार से धर्म-मार्ग में उन्नति करें।

इसी प्रकार मनुष्य मात्र के कल्याण और सुख पर दृष्टि रखते हुये मैंने समभाव से अपने सम्बन्धियों, कुटुम्बियों और अन्य पुरुषों की ओर ध्यान रक्खा जिससे कि कदाचित मैं उनमें से किसी को सुख की ओर ले जा सकूं।

अतः इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर प्रबन्ध करता हूँ। इसी प्रकार मैं सारे समुदाय की सेवा करता हूं। तो भी मेरे मत में प्रत्येक मनुष्य के लिये बड़ी बात यह है कि वह धर्म पर स्थिर रहे।

अभिषेक से २६ वर्ष पश्चात् यह शास्त्र प्रचारित कर दिया गया।

नोट—महाराज अशोक अपनी प्रत्येक घोषणा को धर्म-शास्त्र कहते हैं।

घोषणा न० ७ में महाराज अशोक अपने सारे राज्य और अपनी कार्य्यवाही का एक प्रकार से वर्णन करते हैं। इस घोषणा के दस भेद हैं। एक भेद इस वाक्य से आरम्भ होता है—महाराज 'देवानाम् प्रिय' प्रियदर्शी कहते हैं।

भेद न० १—भूत काल में जो राजा हुये वह सब यह चाहते थे कि मनुष्य धर्म की वृद्धि के साथ उन्नति करें किन्तु मनुष्यों ने ने ऐसी उन्नति नहीं की जैसी कि उनको करनी चाहिये।

भेद न० २—इस पर मुझे यह ध्यान आया कि वह कौन

सा उपाय है जिसके द्वारा मनुष्यों को धर्माचरण सिखलाय जावे और जिनसे मनुष्य धर्म की उन्नति के साथ साथ अपनी भी उन्नति करे। और जिनसे मैं उनमें से कुछ परिमाण को धर्म की सहायता से ऊँचा उठा सकूं।

भेद न० ३--इसलिये मुझे यह सूझी कि—

" मैं धर्म का ढिंढोरा पिटवाऊँ, मैं धर्म की शिक्षा दूँ, जिससे कि मनुष्य उस पर ध्यान देकर अपने आपको ऊँचा कर सकें और धर्म-वृद्धि के साथ साथ अपनी भी खूब उन्नति करें।

इसी उद्देश्य से धर्म की शिक्षा दी गई। मेरे प्रचारक व कर्मचारी जो जनता पर शासन के निमित्त नियत किये गये थे वे मेरी शिक्षा का प्रचार करें और उसकी व्याख्या करें। प्रधान कर्मचारियों को भी जिनको लाखों मनुष्यों पर नियत किया गया है मैंने यह शिक्षा दी है कि वे दोनों में से किसी रीति से धर्म्म के अधीनस्थ कर्मचारियों के समुदाय को मेरी शिक्षा की व्याख्या करें।

न० ४--इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर—

मैंने धर्म के स्तम्भ स्थापित कराये, धर्म के सेन्सर नियत किये हैं और धर्म की घोषणा भी की है।

न० ५—सड़कों पर भी मैंने मनुष्यों और पशुओं को छाया के निमित्त पीपल के वृक्ष और आमों की श्रेणी और बाग लगवाये। प्रति आधा मील की दूरी पर कुएं खुदवाये हैं, धर्मशालायें बनवाई हैं, स्थान २ पर मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिये जलाशय

बनवाये । किन्तु यह सुख तो साधारण सी बात है। मैंने और विश्वास पात्रों ने अनेक प्रकार की कीर्ति जनता के लिए एकत्रित की है किन्तु मैंने अपने विचार के अनुसार जो कुछ किया है उसका उद्देश्य यह था कि लोग धर्म पर आचरण करें।

नं० ६—मेरे सेन्सर अर्थात् प्रधानाध्यक्ष जो धर्म विभाग के गृहस्थों और सारे मतमतान्तरों के लोगों के बीच में राज-दान के विभाजित करने में लगे हैं वह संघ का कार्य्य भी करते हैं और ब्राह्मणों और जैनियों के भी कार्य्य और विभिन्न मतों में वह कार्य करते हैं। भिन्न प्रकार के प्रधान कर्मचारी अपने अपने अधिकार का कार्य करते हैं किन्तु प्रधानाध्यक्ष-धर्म (सेन्सर) दोनों कार्य करते हैं अर्थात् अपना सरकारी कार्य भी करते हैं और धर्म की रक्षा भी करते हैं।

नं० ७—यह लोग और बहुत से प्रधान कर्मचारी जो भिन्न भिन्न विभागों के प्रधान हैं वह मेरी और मेरी रानियों की ओर से दान देने का कार्य करते हैं। रनिवास के कार्यकर्ता यहाँ (अर्थात् राजधानी में) और प्रान्तों में भी पता देते हैं कि कहाँ दान की आवश्यकता है।

नं० ८—लोगों को धर्म्माचरण पर दृढ़ करने के उद्देश्य से और धर्म्मके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने योग्य बनाने के लिये भी प्रधान, मेरे पुत्र और अन्य राजकुमारों (जो देवियों के पुत्र हैं) की ओर से दान देने का कार्य करते रहें।

धर्म पर आचरण करने और उसपर कार्य करने से दयालुता,

दानशीलता, सत्यता, शुद्धता, नम्रता और जीवन की पवित्रता की वृद्धि मनुष्य मात्र में होगी।

न० ९—मैंने बहुत से शुभ कर्म किये हैं जिनका अनुकरण मनुष्य मात्र करेंगे। जिससे यह उचित है कि लोगों में धर्म की वृद्धि हुई और होगी। अर्थात् लोगों में इन शुभ कर्मों की उन्नति हुई है।

मातृमान, * पितृमान, आचार्यमान, बड़े बूढ़ों का आदर, ब्राह्मणों, साधुओं, दरिद्र और निःसहाय लोगों के साथ और दासी और सेवकों के साथ उचित दया का बर्ताव करना।

न० १०—मनुष्य मात्र में जहाँ-जहाँ उपरोक्त धर्म की उन्नति हुई है। वह दो प्रकार से हुई है। अर्थात् धर्म के नियम का पालन और उसका ध्यान रखने से। इन दोनों में नियम का पालन छोटे और ध्यान का पालन उच्च पद का है।

तो भी मैंने बहुत से नियम बनाये हैं जैसे पशु-बलि विभाग के नियम (कौन कौन पशु बलिदान किया जाय) और अन्य असंख्य नियम, किन्तु विचार की श्रेष्ठता का यह प्रमाण है कि लोगों ने धर्म के मार्ग पर उन्नति की है और पशुओं की हत्या न करने और यज्ञ के अवसर पर प्राणधारियों के रक्त से पृथक रहने में सराहनीय सफलता प्राप्त की है। इसलिये यह सब नियम लिख दिये गये हैं कि मेरे पुत्र पौत्र और पर पौत्र उसके अनुसार

---

* मातृमान, माता का सत्कार, पितृमान, पिता का और आचार्यमान गुरुओं का सत्कार।

आचरण करें। और ऐसे कार्य करने से उनको लोक और परलोक दोनों की सिद्धि प्राप्त हो।

मैंने अभिषेक के २७ वर्ष पश्चात् यह घोषणा प्रचारित कराई–

इसलिये जहाँ तहाँ स्तम्भ और शिला-लेख मिलें वहाँ वहाँ यह लिपिबद्ध कराई जाय ताकि वह चिरकाल तक रहें।

इस घोषणा के सम्बन्ध में अनेक बातें नोट करने योग्य हैं।

प्रथम—अपने से प्रथम राजाओं का वर्णन इसलिये नहीं किया गया कि उनकी असफलता की हँसी होगी बल्कि यह जनाने के लिये कि अशोक के और उनके नियमों में क्या भेद था? और अशोक को क्यों उनसे अधिक सफलता हुई। यह स्वीकार किया गया है कि उनके अभिप्राय भी कल्याणकारी थे और उन्होंने भी अनेक प्रकार की उदारता अपनी प्रजा के प्रति दिखलाई किन्तु अशोक ने धर्म्म प्रचार पर विशेष ध्यान रक्खा।

द्वितीय—इस घोषणा में पहली बार महाराज ने अपनी रानियों और अपने राजकुमारों का वर्णन किया है। मिस्टर वेन्सन्ट-स्मिथ के मत में देवियों के पुत्र वाले वाक्य से यह ज्ञात होता है कि महाराज केवल उन लड़कों को अपना पुत्र समझते हैं जो विवाहिता रानियों से पैदा हुये और जो अन्य विभिन्न रानियों से पैदा हुये उनको वे पुत्र न समझते थे। मेरे विचार में यह विचार भ्रमात्मक है। स्मिथ ने "देवी" शब्द का अर्थ

रानी किया है। मैं नहीं कह सकता कि किस प्रमाण और नियम से ऐसा किया है। साधारण बोल चाल में देवी का अर्थ रानी के नहीं बल्कि प्रत्येक सदाचारिणी स्त्रियों के प्रति देवी शब्द का प्रयोग होता है। देवी का अनुवाद रानी करने से सब वाक्य मतलब रहित हो जाते हैं। जिसको महाराज रानी' कहते थे, वह उच्च जाति की हो अथवा नीच जाति की, उसकी सन्तान महाराज की सन्तान थी। यदि वह विवाहिता न थी तो कभी उसके लिये 'रानी' का शब्द प्रयोग नहीं किया जाता। यदि महाराज के राज-भवन में अविवाहिता स्त्रियाँ थीं जिनसे उन्होंने सन्तान पैदा की तो महाराज इस धर्म की घोषणा में कदापि उनका वर्णन नहीं करते। मेरे विचार में यहाँ पर देवियों से अभिप्राय उन पटरानियों से है जो रानियों के अतिरिक्त राजभवन में रहती थीं। जैसे पुत्रियाँ, भगिनियाँ अथवा दूर व निकट की सम्बन्धिनी अथवा दासी इत्यादि। प्रथम महाराज ने अपने पुत्रों का वर्णन किया और उसके पश्चात् साधारणतः अन्य देवियों अथवा रनिवास के पुत्रों को राजकुमार कहना ही इस बात का प्रमाण है कि मिस्टर स्मिथ का विचार संदेहयुक्त है।

तीसरी बात--जो इस घोषणा में नोट करने योग्य है वह यह है--कि महाराज ने केवल आज्ञा-पालन में और विचार के पश्चात् धर्माचरण में भेद दिखाया है। एक वह कार्य है जो किसी के कहने से अथवा उसकी आज्ञा से अथवा उसके भय से किया जाता है। यदि वह कार्य धर्म का है तो उसका भी फल कल्याणकारी

होता है। किन्तु वास्तविक फल उस कार्य का होना चाहिये जिसको मनुष्य अपने विचार से धर्म समझता है। उससे आत्मा पवित्र होता है। और उसी का दृढ़ प्रभाव मनुष्य के आचरण और आत्मा पर पड़ता है।

चौथी—यह बात ध्यान देने योग्य है कि महाराज अपने राज्य में किस उचित रीति से दरिद्र, अनाथ और दासों की आवश्यकता को पूर्ण करते थे। उनको इस योग्य बनाते थे कि वह भी अपना आवश्यकता पूर्ण होने के पश्चात् धर्म्म का सेवन करें। उन्होंने इस कार्य के लिये रनिवास की स्त्रियों को विशेष कर नौकर रक्खा जिससे कि वह स्त्रियों की आवश्यकताओं को देख भाल कर रिपोर्ट करें और उनकी आवश्यकतायें भी पूर्ण हो जावें।

इस लेख में कुछ 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' की झलक आती है। किन्तु यह विचार करके कि एक शासक अपने राज्य की शासन-नीति अपनी संतानपर छोड़ना चाहता है और यह भी चाहता है कि उसके अधिकारी उसका अनुकरण करें—हम इसकी ओर दृष्टि नहीं देते।

वह रीति जो जनता की दृष्टि में एक प्रकार से तुच्छ है, वह राजाओं महाराजाओं के लिये उस दृष्टि से देखे जाने के योग्य नहीं, यों तो यह निर्बलता संसार के सारे मनुष्य में है। संसार के पैगम्बर नबी, औलिया, अवतार, पीर, फकीर और उपदेशक कोई भी इस दोष से न बच सका और जो बचा उसका हमें कुछ ज्ञान नहीं, वह अदृश्य हो गया।

६
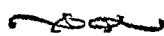
बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये महाराज अशोक का घोषणा और अन्य उद्योग

इस समय तक महाराज की जो आज्ञायें और घोषणायें हमने लिखी हैं उनमें से किसी में विशेष रीति से बौद्धधर्म का अथवा बौद्धधर्म के शास्त्रों का अथवा बौद्ध धर्म के संघ का कोई वर्णन नहीं आया। यदि हम मान लेंगे कि इन सब घोषणाओं और आज्ञाओं में धर्म से उसका अभिप्राय बौद्ध धर्म से था तो जो विवरण इस धर्म का इन लेखों में वर्णन किया गया है वह ऐसा साधारण है कि वह लगभग हिन्दूधर्म के प्रत्येक मत में मिलता है। उसमें बौद्धर्म्म की कोई विशेषता नहीं। माता, पिता, आचय्य

का मान, ब्राह्मणों और साधुओं की पूजा, बड़ों का आदर सत्कार, सत्य बोलना, पवित्र जीवन व्यतीत करना, दान देना, लोक और परलोक के सुख की इच्छा करना यह ऐसी शिक्षा है जो हिन्दू-धर्म की प्रत्येक शाखा में पाई जाती है। भगवान् बुद्ध ने और महाराजा अशोक ने यदि इस शिक्षा पर जोर दिया तो इससे किसी नवीन धर्म के प्रचार करने का उनका उद्देश्य न था। अहिंसा भी धर्म का एक अङ्ग है। जिसपर जैनियों और बौद्धों ने बहुत जोर दिया, जो किसी प्रकार हिन्दू धर्म अथवा वैदिक धर्म के विरुद्ध नहीं थी। अब तो अहिंसा हिन्दू धर्म का मुख्य सिद्धान्त है।

यज्ञों में पशुओं का बलिदान भी हिन्दू अथवा वैदिक धर्म का प्रधान अङ्ग न था। अतः हम उचित रीति से यह कह सकते हैं कि इस समय तक जो कुछ हमने महाराजा अशोक की शिक्षा का वर्णन किया है उसमें बौद्धधर्म की कोई विशेष झलक न थी।

अब हम उन घोषणाओं और आज्ञाओं का वर्णन करते हैं, जिनमें बौद्धधर्म अथवा बौद्ध धर्मशास्त्रों अथवा उनके धार्मिक प्रबन्ध का विशेष वर्णन है। उनमें से एक घोषणा तो उनके राज्य-काल के प्रथम समय की है। और वह "भावरू की घोषणा।" अथवा 'वैराट पर्वत की दूसरी घोषणा' के नाम से प्रसिद्ध है और उसका अनुवाद इस प्रकार है—

प्रियदर्शी महाराज, मगध-संघ को प्रणाम करते हैं। और

उसके सभासदों की प्रसन्नता और आरोग्यता की अभिलाषा करते हैं।

हे श्रेष्ठ पुरुषों ! आपको ज्ञात है कि मेरे हृदय में भगवान बुद्ध, उनके शास्त्र और संघ के लिये कितनी उत्कण्ठा, श्रद्धा और भक्ति है।

हे सज्जनों ! जो कुछ भगवान ने कहा है वह तो सब ही कल्याणकारी है। किन्तु यदि मैं अपनी ओर से उनकी शिक्षा के किसी विशेष पद का उदाहरण दूँ तो वह यह है कि यह श्रेष्ठ धर्म्म चिरकाल तक रहेगा।

हे माननीय भद्र पुरुषों ! अब मैं भगवान बुद्ध के कहे हुए बौद्ध शास्त्रों के निम्नलिखित पदों का उदाहरण देता हूँ। क्योंकि मेरी यह इच्छा है कि सब ही भिक्षु और भिक्षुनियाँ इन पदों को सर्वदा सुनें और उन पर विचार करें और गृहस्थी पुरुष और स्त्री भी ऐसा ही करें।

प्रथम—भक्ति की श्रेष्ठता (विनाया समोका)

द्वितीय—श्रेष्ठों के आचरण (अल्यावसानी)

तृतीय—भविष्य में होने वाली बातों का भय। (अनगिता भय वानी)

चतुर्थ—मुनियों की गाथा अर्थात् मुनियों की वाणी। (मुनि गाथा)

पञ्चम—सांसारिक त्याग, मनुष्य-जीवन सत्संग (मने यास्ते)

षष्ठ—उपासना के प्रश्न (उपासना पास्ते)

सप्तम—राहल्द के उपदेश जो असत्य के विषय से आरंभ होता है (राहगोवादे सावादान अधीगध्या)

मिस्टर वेन्सराट स्मिथ इस घोषणा की व्याख्या करते हुये लिखते हैं कि इस सूचीपत्र के आरम्भ में उस अमूल्य शिक्षा को उद्धृत किया है जो भगवान बुद्ध ने काशी में दी थी। दूसरी बार के वास्तविक पते के लिये वह प्रोफेसर धर्मानन्द कोसम्भी और मिस्टर लेनमैन की बनाई हुई सूची का उदाहरण देते हैं।

सूची में पाठक इस घोषणा की वास्तविक इबादत को देखेंगे उसके साथ ही हम प्रोफेसर धर्मानन्द की सूची भी वहाँ लिख देंगे। जिससे कि जिसकी इच्छा हो वह असली बौद्ध शास्त्रों को जो पाली भाषा में हैं, उनके अंग्रेजी अनुवाद को देख लें।

यहाँ पर इस घोषणा के लिखने का हमारा यह अभिप्राय है कि हम अपने पाठकों को यह बता दें कि यही एक घोषणा है जिसमें महाराज अशोक ने नाम लेकर बौद्धशास्त्र के कुछ विशेष भाग का उदाहरण दिया है। विश्वास किया जाता है कि यह उन प्रारम्भिक घोषणाओं में से है जो अभिषेक से १३ वर्ष के बाद अथवा तेरहवें वर्ष महाराज अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण करते ही जारी किये थे। इसकी कठिनता अधिकांश बौद्धों के लिये हैं।

बौद्ध-धर्म की तीसरी महासभा

महाराज अशोक के शासन-काल की एक बड़ी घटना यह

मानी जाती है कि उनके समय में बौद्धमत की तीसरी महासभा हुई। जिसने कि उसके विरुद्ध सिद्धान्तों का निर्णय किया। इस सभा के सम्बन्ध में प्रथम प्रश्न यह है कि यह महासभा कब हुई? सिंहल की पुस्तकें और दक्षिणी बौद्धधर्म का इतिहास * यह बताता है कि यह महासभा महाराज अशोक के उन्नीसवें अथवा इक्कीसवें वर्ष में हुई थी †। वेन्सन्ट स्मिथ के मत में यह इतिहास भ्रमयुक्त है। क्योंकि यदि यह महासभा अट्ठाइसवें वर्ष से पहले हुई होती तो महाराज स्तम्भिक घोषणा पर न० ८ जिसमें उन्होंने अपने सारे कार्य्यों का वर्णन किया था अवश्य वर्णन करते। वेन्सन्ट स्मिथ का यह मत बहुत ठीक प्रतीत होता है कि यह महासभा महाराज के राज्य काल के अन्तिम समय में हुई और सभा के पश्चात् महाराज ने वह घोषणायें प्रचारित की जिनमें वह बौद्ध धर्म में विघ्न डालने के विरुद्ध घोषणा करते हैं और आग्रहियों, विरोधियों और बाधकों को चेतावनी करते हैं। वर्णन किया जाता है कि इस समय बौद्धधर्म में अनेक समुदाय हो गये थे और उनमें

---

* महावन्श।

† वेन्सन्ट स्मिथ अपनी अशोक नाम की पुस्तक तृतीय आवृत्ति पृष्ठ ५५ में सोलहवां अथवा अठारहवाँ वर्ष लिखता है किन्तु हमने यह वर्ष केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया पृष्ठ ४६८ से लिया है। इसी इतिहास के पृष्ठ १६४ पर इस महासभा का वर्ष अशोक के राज्य का १८ वां वर्ष बतलाया गया है।

भगवान बुद्ध के उपदेश के विषय में और उनके सिद्धान्तों में बहुत मतभेद हो गया था।

यह भी लिखा गया है कि यह महासभा पाटलीपुत्र के सबसे बड़े विहार 'अशोकाराम' में हुई थी। उसका सभापति बौद्धों का प्रसिद्ध प्रचारक भोगबिपत्ततिस्स * उपनाम उपगुप्त था, जो महाराज अशोक का गुरु भी कहा जाता है। नौव महीने तक इस सभा की बैठक होती रही, अन्त में महासभा ने निर्णय किया कि स्थविर समुदाय के सिद्धान्त स्वीकार करने योग्य हैं। महासभा ने एक मत से यह भी निर्णय कर दिया कि बौद्ध धर्म के माननीय शास्त्र क्या हैं। महासभा की सारी कार्यवाही का रिकार्ड उसके सभापति उपगुप्त ने निर्माण किया, इस पुस्तक का नाम कथावत्थु (कथा वस्तु) है। इस महासभा से बौद्ध धर्म के उत्तरीय और दक्षिणात्य समुदाय में बड़ा भेद हो गया। उतरीय का नाम महायान है और दाक्षणीय का नाम हीनयान है। चीन और तिब्बत में उत्तरीय समुदाय का धर्म माना जाता है। सिंहल अथवा सिलोन और ब्रह्मा में दक्षिणात्य समुदाय का।

इस महासभा के समाप्त होने पर प्रचार का काम बड़े उद्योग और उत्साह से आरम्भ किया गया और भिन्न भिन्न प्रान्तों के

---

* यह महापुरुष भगवान बुद्ध से लेकर अबतक बौद्धों का पाचवाँ नेता था। महाराज अशोक के राज्याभिषेक के समय उसकी अवस्था ६० वर्ष की थी। और उसके पश्चात् वह २६ वर्ष तक जीवित रहा। केम्ब्रिज हिस्ट्री प्रथम जिल्द पृष्ठ ५०६।

लिये बड़े बड़े प्रचारक नियत किये गये * जिसकी सूची भिन्न २ पुस्तकों में दी गई है।

न० १—काश्मीर और गान्धार जिसमें पेशावर अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान इत्यादि सम्मिलित हैं।

न० २—मैसूर।

न० ३—उत्तरीय किनारा (दक्षिण) न० ४—बम्बई से उत्तरीय किनारा, न० ५—महाराष्ट्र, न० ६—यवनों का प्रदेश अर्थात् हिस्ट्री में बलख से अर्थ लिया गया है। न० ७—स्वर्ण भूमि अर्थात् पेगू और मौलमीन जो ब्रह्मा में है। न० ८—लंका अर्थात् सिंहल द्वीप।

इन बातों को ध्यान में रखते हुये वे घोषणायें अच्छी तरह समझ में आ सकती हैं जो सारनाथ, कौशम्बी और सांची के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सारनाथ की घोषणा †

महाराज कहते हैं कि पाटलीपुत्र और अन्य प्रान्तों के कुल धर्म्म ‡ महामात्राओं को यह उपदेश करते हैं कि किसी व्यक्ति का यह अधिकार नहीं है कि वह संघ का विभाग कर दे। जो

---

* केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया जिल्द प्रथम पृष्ठ ४६८, ४६६ और वेन्सन्ट स्मिथ का अशोक तृतीय आवृत्ति।

† सारनाथ काशी के उस भाग का नाम है जहां महाराज बुद्ध ने अपना पहला उपदेश किया था।

‡ बौद्ध साहित्य में धर्म को धम्म और कर्म को कम्म लिखा है।

कोई व्यक्ति, भिक्षु अथवा भिक्षुनी संघ के मार्ग पर न चलेगा अथवा उसकी आज्ञाओं के विरुद्ध आचरण करेगा उसको उज्वल वस्त्र पहना कर संघ से बाहर रहने के लिये विवश किया जायगा।

यह घोषणा उन सारी सभाओं में पढ़ी जावे, जहाँ भिक्षु और भिक्षुनियाँ एकत्रित हों।

द्वितीय वाक्य में यह उपदेश किया गया है कि यह आज्ञा कहाँ-कहाँ स्थापित की जावे और किस-किस स्थान पर प्रत्यक्ष रूप से पढ़कर सुनाया जावे। प्रधान कर्मचारियों को चेतावनी दी गई कि वे विरोधियों और बाधकों को संघ से निकालने में देर न करें।

इस समय तक तो महाराज अशोक एक शान्तिप्रिय राजा थे। इस आज्ञा के प्रचार करने से वह एक समुदाय के नेता हो गये। यद्यपि यह मानना पड़ता है कि कदाचित बौद्धधर्म के प्रबन्ध के लिये यह आवश्यक था। बौद्धधर्म में प्रवेश करने के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति तीन प्रकार का विश्वास रखता हो।

अर्थात् भगवान बुद्ध में, बौद्ध-धर्म्मशास्त्र में, और बौद्ध सिंहासन में। विश्वास और प्रथा के विरोधावस्था में, संघ के प्रबन्ध में बाधा पड़ना सम्भव था। इसलिये संघ के प्रबन्ध के लिये अनिवार्य्य हो गया कि पृथकता चाहने वालों, विरोधियां और सन्देह युक्त लोगों को संघ से पृथक कर दिया

जाय। जिससे संघ के सञ्चालन में त्रुटि न आवे और उसके प्रबन्ध में विघ्न बाधा न पड़ने पावे। संसार का कोई धर्म इस विघ्न से और इस प्रकार के विरोध और दलबन्दी से वञ्चित नहीं रहा। और यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि महाराज अशोक ने इन विरोधियों, पृथकता चाहनेवालों और सन्देहयुक्त पुरुषों के साथ किसी प्रकार का अन्याय किया हो। संघ से निकाल दिया इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार की कठोरता नहीं की। परन्तु तो भी यह मानना पड़ता है कि उन्होंने अपनी नैतिकशक्ति को एक समुदाय की उन्नति और स्थिरता के लिये प्रयोग किया। इस पक्षपात से महाराज अशोक उस प्रकार के शान्तिप्रिय और सब विश्वास पात्रों को एक दृष्टि से देखने वाले नहीं रहे जैसे कि इसके पूर्व थे।

नं० २ कौशम्बी की घोषणा *

इस विषय की दूसरी घोषणा कौशम्बी के महामात्राओं अर्थात् प्रधान कर्मचारियों के नाम है।

---

* कौशाम्बी दो हैं एक जैनियों की और दूसरी बौद्धों की। जैनियों की कौशम्बी इलाहाबाद के जिले में उस स्थान पर थी जहां अब एक ग्राम कौसिम नाम से है। बौद्धों की कौशम्बी इलाहाबाद से सात दिन की यात्रा पर थी। यह स्तम्भ वास्तव में उस कौशाम्बी में स्थापित था। फिरोज तुग़लक़ ने वहां से उठाकर इलाहाबाद में लाकर स्थापित किया। इस स्तम्भ पर यह घोषणा चार अन्य स्तम्भिक लेख के नीचे खुदा हुआ है। जिससे वेन्सन्ट स्मिथ के कथनानुसार ज्ञात होता है कि यह घोषणा अठाइसवें वर्ष के बाद जारी की गई।

नं० ३ सांची की घोषणा।

जब तक मेरे पुत्र पौत्र शासनकर्ता हैं और जब तक सूर्य्य चन्द्र स्थिर हैं यह प्रथा रहेगी कि जो भिक्षु अथवा भिक्षुनी संघ * में बाधक होगा उसको उज्ज्वल वस्त्र धारण कराकर संघ से बाहर रहने पर विवश किया जायगा क्योंकि मेरी इच्छा है कि संघ में एकता स्थापित रहे और चिरकाल तक स्थिर रहे।

नोट—इन तीनों घोषणाओं में कुछ शब्द उड़े हुए हैं किन्तु उनका भावार्थ साफ है।

सिंहल में बौद्धधर्म्म का प्रचार

इस से पहले हमने उन स्थानों की सूची लिखी है जहां पर तीसरी महासभा के पश्चात् प्रचारक भेजे गये किन्तु वह सूची बिलकुल पूर्ण नहीं है। उनमें पश्चिमी एशिया और मिश्र इत्यादि का वर्णन नहीं है, जहां घोषणाओं के अनुसार प्रचार किया गया और चिकित्सालय इत्यादि स्थापित किये गये। लङ्का और ब्रह्मा का

---

* संघ से अभिप्राय उस महान महासभा से है जिसकी आज्ञा प्रत्येक बौद्ध के आचरण के लिये अनिवार्य है। सिंहल में जब कोई भिक्षु बनाया जाता है तो वह तीन प्रतिज्ञायें करता है कि मैं भगवान पर विश्वास करता हूं। संघ पर विश्वास करता हूं। बौद्ध शास्त्रों पर विश्वास करता हूं। भगवान बुद्ध की आज्ञाओं और उद्देश्यों की व्याख्या करना भी संघ का कार्य था। इस प्रकार संघ को बौद्ध धर्म में वही पद प्राप्त हो जाता है जो ईसाई रोमन कैथलिक धर्म में पोप को प्राप्त है और सिक्खों में पन्थ को जो समुदायी है और मुसलमानों में उलमाओं को है।

वर्णन इसलिये किया गया कि उनका भारतवर्ष से अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध है। जब बौद्धधर्म भारत से कायरूप में मिट गया तो दक्षिणी बौद्ध समुदाय की शिक्षा और प्रचार के प्रधान केन्द्र सिंहल और ब्रह्मा ही रहे।

बौद्धधर्म के इतिहास में सिंहल को अन्य स्थानों की अपेक्षा इस कारण और भी श्रेष्ठता है कि बौद्ध धर्म को सम्राट् अशोक के अपने एक निकटवर्ती सम्बन्धी महेन्द्र ने और उनकी पुत्री सिंघमित्रा ने स्थापित किया।

इस महेन्द्र अथवा महिन्द के सम्बन्ध में पुरातत्ववेत्ताओं में परस्पर मतभेद है। कई इतिहास लेखक उसको महाराज अशोक * का छोटा भाई, कुछ उसको उसका पुत्र कहते हैं। सिंहल के बौद्ध-इतिहास में उसको महाराज अशोक का पुत्र बताया है। उत्तरी समुदाय की कथाओं में उसको उसका भाई बतलाया गया है। इस विषय में भी बड़ा मतभेद है कि वह महेन्द्र सीधे लङ्का गया अथवा दक्षिणी भारत के तामिल प्रान्त में प्रचार करता रहा और वहां से लङ्का पहुँचा।

लङ्का की कथाओं और इतिहासों में जो वर्णन आया है—मैं इस स्थान पर उद्धृत करता हूँ।

वर्णन है कि महाराज अशोक जब अपने पिता के जीवन में

* वेन्सन्ट स्मिथ ने महेन्द्र को अशोक का भाई लिखा है। अशोक पृष्ठ २५०, केम्ब्रिज हिस्ट्री में उसको उसका पुत्र लिखा है। पृष्ठ ५०० फुटनोट न० ४।

अवन्ती के वाइसराय थे तो वहां पर उन्होंने सेठी जाति की एक लड़की से सम्बन्ध कर लिया। इस कन्या से उनका पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा उत्पन्न हुई। अशोक की पुत्री का विवाह अग्निब्रह्मा से हुआ और उससे उसका एक पुत्र सुमन उत्पन्न हुआ। महाराज अशोक के राज्याभिषेक से चौथे वर्ष उसके भाई तिस्स अथवा तिश्य ने जो उज्जैन का वाइसराय था अग्निब्रह्मा और सुमन को बौद्धधर्म में प्रवेश किया अर्थात् बौद्धधर्म ग्रहण कराया।

जब महाराज तिश्य के स्थान पर महेन्द्र का वाइसराय बनाने लगे तो उनके धर्म गुरू तिश्य मुगली के पुत्र ने महाराज को अर्थात् महेन्द्र और संघमित्रा को भी बौद्धधर्म में प्रवेश कराया, महेन्द्र की अवस्था तो २० वर्ष की थी। इस हेतु वह नियमानुसार भिक्षुक बन गया किन्तु संघमित्रा को दो वर्ष की प्रतिज्ञा करनी पड़ी। बौद्ध महासभा के पश्चात् जब बौद्ध प्रचारक भिन्न-भिन्न देशों में भेजे गये तो महेन्द्र को सिंहल द्वीप के लिये चुना गया। यह भी वर्णन किया जाता है कि सिंहल के राजा तिस्स ने महाराज अशोक के पास एक दूत भेजकर उनसे प्रचारक माँगे थे। महेन्द्र के साथ उसके भाँजे सुमन को भी सिंहल के लिये नियत किया गया। सिंहल जाने के पहले महेन्द्र छः महीने तक अपनी माता के पास वेदिसगिरि नामक स्थान में (जो कि उज्जैन के राज्य में था) रहा था और फिर वायु में उड़ता हुआ सिंहल जा पहुँचा। उसके पहुँचने के कुछ दिन

पश्चात् सिंहल के राजा ने फिर एक दूत भेजा और महाराज अशोक से उनकी पुत्री संघमित्रा को भेजने की प्रार्थना की जो स्वीकार की गई।

इस कथा में जो बात असम्भव है वह हवा में उड़ने की है। शेष वृत्तान्त में कोई बात सन्देह-युक्त अथवा असम्भव घटना नहीं है।

वेन्सन्ट स्मिथ की यह राय ज्ञात होती है कि महेन्द्र पहले दक्षिणी भारत में कावेरी के तट पर 'संघाराम' में रहा। और वहाँ से वह लङ्का पहुँचा। इसको स्वीकृति में वह ह्वयेन्स्वांग के एक लेख का प्रमाण देता है जिसमें चोना यात्री ने वर्णन किया है कि ६४० ई० के लगभग मदुरा के सन्निकट उसको संघाराम के खण्डहर मिले जो अशोक के भाई महेन्द्र ने बनवाये थे और उसी के निकट उसको एक विशाल स्तूप * के खण्डहर भी मिले जिनको महाराज अशोक ने बनवाया था।

वेन्सन्ट स्मिथ के इस मत से ज्ञात होता है कि उत्तरी और दक्षिणी भारत में सब स्थान पर महेन्द्र को महाराज का भाई समझा जाता था। और इस हेतु वह यह फल निकालता है कि महेन्द्र महाराज का पुत्र न था बल्कि भाई था। जो प्रमाण उसने सम्मुख रक्खा है वह चीनी यात्रियों के लिखे हैं। चीनी यात्री बौद्ध धर्म के उत्तरीय समुदाय से सम्बन्ध रखते थे और उत्तरीय समुदाय की पुस्तकें महेन्द्र को महाराज अशोक का भाई

* स्तूप किस प्रकार की इमारत है? देखो अशोक निर्माण अध्याय ५।

वर्णन करती हैं। उन चीनो यात्रियों ने जो कुछ महेन्द्र के विषय में लिखा है, वह उन्होंने पाटली पुत्र और कावेरी को कथाओं से जाना है, अथवा अपनी पुस्तकों से। सम्भव है कि उन्होंने अपनी पुस्तकों के लेख को अत्यन्त विश्वसनीय विचार कर उन्हीं का अनुमोदन किया हो।

हमको वेन्सन्ट स्मिथ का यह वर्णन भी ठीक नहीं जचता कि सिंहल की कथाओं के अनुसार महेन्द्र महाराजा अशोक का औरस पुत्र न था और जब हम इस कथा में भी यह पाते हैं कि महाराजा अशोक अपने भाई निस्स के स्थान पर महेन्द्र को वाइसराय बनाने लगे थे तो हमारा विचार प्रौढ़ हो जाता है कि इस अनुमानमें कोई वास्तविकता नहीं कि महेन्द्र और संघमित्रा महाराज की विवाहिता की सन्तान न थे। वास्तविक बात यह है कि ईसाई लेखक यह भूल जाते हैं कि हिन्दुओं में अन्तर्जातिय विवाह की प्रथा अधिकाँश उचित थी, ऐसे विवाह के भी अनेक भेद थे।

वेन्सन्ट स्मिथ अपने फल की दृढ़ता के प्रमाण में एक प्रथा वर्णन करता ह कि प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि गद्दी पर बैठने वाले राजा के छोटे भाई साधु हो जाते थे। एक चीनी लेखक का प्रमाण इस वर्णन के समर्थन में देते हैं और तिब्बत के राजा दलपाचन के वृत्तान्त से एक उदाहरण ढूंढ़ा गया है। जो बिल्कुल इस विचार का विरोध करता है। दलपाचान का बड़ा भाई साधु हुआ और दलपाचान के पश्चात् उसके छोटे

भाई को गद्दी मिली। यह सम्भव है कि अनेक अवस्थामें धार्मिक उत्तेजना से अनेक भाई साधु हो गये हों किन्तु इस निर्मूल उदाहरण पर यह मान लेना कि ऐसी प्रथा ऐसा या नियम था, यह वास्तविकता के नितान्त विरुद्ध है।

वेन्सन्ट स्मिथ का यह अन्तिम मत है कि महेन्द्र, महाराज अशोक का भाई था और संघमित्रा की सारी कथा कदाचित कल्पित है।

मेरे मत में यह प्रश्न कि महेन्द्र महाराज अशोक का भाई था अथवा पुत्र बिल्कुल निस्सार है और इस पर बहुत विवाद व्यर्थ है। मेरा अभिप्राय केवल इसी से है कि महेन्द्र ने सिंहल में बौद्धधर्म का झण्डा गाड़ा और महेन्द्र महाराज का भाई या पुत्र था। यह बात निश्चय है कि महाराज अशोक ने जो सेवायें बौद्ध धर्म्म की कीं और जिस पूर्णता और दृढ़ता से उन्होंने संसार के भिन्न भिन्न भागों में बौद्ध धर्म का प्रचार कराया वह अपने ढंग और परिमाण में अद्वितीय है।

एक अंग्रेज़ी लेखक मिस्टर सांडर्स अपनी पुस्तक 'बौद्ध धर्म की कहानी' * में निम्न लिखित बातें लिखते हैं।

महाराज अशोक के मिशन, संसार के इतिहास में उन प्रबल से प्रबल शक्तियों में से हैं जिन्होंने संसार में सभ्यता फैलाने का कार्य किया है + + + बौद्ध प्रचारक अपने साथ अपने

Story of Budhism (oxford University Press 191676-9) by K. T. Saunders.

देश की सभ्यता भी लाते थे। जैसे यह स्पष्ट प्रगट है कि महेन्द्र ने सिंहल में पत्थर की नक़ासी का इल्म और सिंचाई की रीति निकाली थी।

अनुराधपुर के खँड़हरों से कुछ दूरी पर एक घने बन में एक सुन्दर पत्थर की पहाड़ी खड़ी है जो पहाड़ में से काटी गई है। और जहां उस महान् और दयालु महेन्द्र की समाधि है, जिसने ढाई सौ वर्ष मसीह के पूर्व बौद्ध धर्म को सिंहल में लाया था। अनुराधपुर * के खड़हरों का रोम के खड़हरों से समता करता हुआ एक अंग्रेज लिखता है कि अनुराधपुर के खँड़हर के सामने रोम के खँड़हर और रोम की गढ़ियां अत्यन्त तुच्छ और हीन प्रतीत होती हैं †।

महाराज अशोक की यात्रायें।

वेन्सन्ट स्मिथ अनुराधपुर को बौद्धों का रोम कहता है। हम बता चुके हैं कि महाराजा अशोक ने किस प्रकार पहले की सुख पूर्वक यात्रा को धर्म्म-यात्रा में परिवर्तन करने का यत्न किया। उन्होंने स्वयं इस विषय में प्रबल प्रमाण स्थापित किये। वर्णन किया जाता है कि ईसा के २६४ वर्ष पूर्व उन्होंने अपने धर्म

---

* अनुराधपुर सिंहल के उत्तर में एक प्राचीन नगर है जहाँ से अत्यन्त विस्तीर्ण और विशाल बौद्ध भवनों के खड़हरें पृथ्वी से खोदके ला रहे हैं।

† Farrer old Geylon 1908 P. 349 (मैंने स्वयं अनुराधपुर और रोम के दोनों खड़हरों को देखा है और म मिस्टर फेरेर - फल से सहमत हूँ) लेखक—

गुरू उपगुप्त के ‡ निरीक्षण में, और उसके संग यात्रा करने में उन स्थानों की यात्रा की जो उस समय तक बौद्ध इतिहास में पवित्र गिने जाते थे।

सब से प्रथम वह तराई-प्रदेश में लुम्बिनी के बाग में पहुँचे जो भगवान बुद्ध का जन्म स्थान कहा जाता है। वहाँ पर उन्होंने एक ध्वजा स्तम्भ बनवाया। वहाँ के निवासियों में स्वर्ण बटवाया और उस गाँव का सर्वदा के लिये 'कर' माफ कर दिया। उसके पश्चात् वे कपिलवस्तु गये इसी प्रकार से बहुत कुछ दान दिये।

उसके पश्चात वे गया में आये जहाँ उन्होंने उस बड़ के वृक्ष की पूजा की जिसके नीचे भगवान बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुआ था। वहाँ एक विशाल मन्दिर बनवाया और बहुत सा धन दान किया। कहा जाता है कि यहाँ एकलाख अशर्फियां वटवाई गईं। इसके पश्चात् वे काशी के निकट सारनाथ में पहुँचे। जहाँ भगवान ने अपना पहला उपदेश किया था। और धर्म चक्र चलाया था। वहाँ से वे श्रीवस्ती में गये जहाँ पर विहार में महात्मा बुद्ध रहा करते थे और उपदेश किया करते थे। उसके पश्चात् कुशीनगर में गये जहाँ महात्मा जी का देहावसान हुआ था। जिसको बौद्धों की भाषा में परिनिर्वाण कहते हैं।

आनन्द के स्तूप पर (जो भगवान का सब से बड़ा शिष्य

---

‡ भारतीय बौद्ध कथाओं के अनुसार यह महात्मा उपगुप्त एक गन्धी अर्थात् इत्र बेचने वाले का पुत्र था।

था) महाराज अशोक ने दस लाख * अशर्फियाँ बाँटीं । सारांश इस प्रकार से इसी यात्रा में चिरस्थायी स्तम्भ बनवाये, दान दिये और धर्म्मोपदेश प्राप्त करते रहे। वक्कुल के स्तूप पर महाराज ने केवल एक ताँबे का सिक्का अर्थात् एक पैसा दान किया क्योंकि उनके मत में वक्कुल को बहुत कम कठिनाई का सामना करना पड़ा और उनसे बहुत थोड़ा परोपकार जनता को हुआ । यह वर्णन कुछ ऐसा भ्रमपूर्ण है कि भली भाँति उसका कारण नहीं ज्ञात होता ।

लुम्बिनी के बाग़ में इस स्मारक में जो स्तम्भ बनवाया गया उस पर निम्नलिखित वाक्य खुदे हैं ।

जब महाराज देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी के राज्याभिषेक हुये बीस वर्ष व्यतीत हो गये तो वह उस स्थान पर जहाँ शाक्य मुनि (बुद्ध) ने जन्म लिया था यात्रा के निमित्त आये । और पूजा करके एक पत्थर का स्तम्भ स्थापित कराया जिसकी शिखा पर घोड़े की मूर्ति थी । और चूंकि यहाँ भगवान ने जन्म लिया था इस कारण इस ग्राम के हर प्रकार के कर माफ़ कर दिये गये । आगामी समय में केवल उपज का आठवाँ भाग भूमि कर के निमित्त लिया जावेगा ।

लुम्बिनी का आधुनिक नाम अमनदुई है जो एक छोटा सा ग्राम तराई प्रान्त में है । नेपाल की सीमा के भीतर अंग्रेज़ी राज्य

* एक कथा के अनुसार ६० लाख अशर्फियाँ (अशोक तृतीयबार पृष्ठ २५४) बाटी गईं

से चार मील की दूरी पर यह स्थान है। उसके निकट एक ग्राम पिडिया नाम का है।

वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है कि उत्तरी भारत में—

घोड़ा पश्चिम का रक्षक
हाथी दक्षिण ,, ,,
सिंह उत्तर ,, ,,
बैल या सांड पूर्व ,, ,, गिना जाता है।

सिंहल में घोड़ा दक्षिण का, सिंह उत्तर का हाथी पूर्व का और बैल पश्चिम का रक्षक गिना जाता है।

इस स्तम्भ के ऊपर एक घोड़े की मूर्ति थी जो गिर गई अथवा किसी ने गिरा दी। यह स्तम्भ भी वज्रपात के कारण टूटा हुआ है। यह स्तम्भ १८९६ ई० में ज्ञात हुआ था।

अर्थशास्त्र में भूमिकर उपज का ५ वां भाग लिखा है। किन्तु प्रायः लोगों का मत है कि चन्द्रगुप्त $\frac{1}{8}$ भाग लेता था। किन्तु वास्तविक बात यह है कि भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न २ कर नियत थे और वर्षा और सिंचाई में भी भेद था।

इसी प्रकार का एक स्तम्भ कोनाकनम स्तूप के निकट भी मिला है जो उमनदेई से तेरह मील की दूरी पर एक झील के किनारे पड़ा था। स्तम्भ टूटा हुआ है।

कोनाकनम एक और बुद्ध का नाम था जो शाक्यमुनि गौतम से पहले हुआ था।

बौद्ध लोगों का यह विश्वास है कि शाक्यमुनि गौतम से

पहले भी बहुत से बुद्ध हो चुके हैं । यहां पर अथवा उसके सन्निकट एक स्तूप कोनाकनम में प्राचीन बुद्ध के नाम से बनाया गया था । जहां अशोक ने अपनी इस यात्रा में पूजा की और स्तम्भ बनवाया । महाराज अशोक राजसी यात्रा में धर्म प्रचार भी किया करते थे ।

७

महाराज अशोक का साम्राज्य और उसके गुण।

हम पहले संक्षेप में महाराज अशोक के विस्तीर्ण राज्य का क्षेत्रफल आधुनिक बृटिश इण्डियन इम्पायर से (ब्रह्मा को छोड़ करके) बहुत अधिक था * । यह मुंहतोड़ उत्तर उस वर्णन का है जो अधिकांश योरोपियन लोग किया करते हैं कि अंग्रेजों से प्रथम कभी भारतवर्ष केवल एक साम्राज्य के शासन

---

* वेन्सन्ट स्मिथ अपनी अशोक नाम की पुस्तक में लिखता है।
His dominis were far more extensive than British India of today excluding Burma.

में नहीं था। महाराज अशोक के राज्य के अन्तर्गत भी कई परतंन्त्र राज्य थे किन्तु सब प्रमाणों से ज्ञात होता है कि इन देशीय राज्यों की संख्या और उनका क्षेत्रफल किसी प्रकार वर्तमान समय के देशी राज्यों के क्षेत्रफल से कम न था अर्थात् मुख्य देशीय राज्य भी जो सीधे महाराज और उनके नियत किये हुये अध्यक्षों के अधीन थे, वर्तमान वृटिश इण्डिया से अधिक थे। और इतने विस्तृत राज्य रहने पर भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि महाराज अशोक के ४० वर्ष के राजत्व काल में केवल एक कलिङ्ग की चढ़ाई के और कोई युद्ध सम्बन्धी चढ़ाई नहीं हुई। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस साम्राज्य में उत्तर पश्चिम व उत्तर पूर्व की सारी लड़ने वाली जातियां सम्मिलित थीं। उत्तर पश्चिम में महाराज अशोक के साम्राज्य में सारा अफग़ानिस्तान, विलोचिस्तान व मकरान, उत्तर में हिन्दूकुश तक और पश्चिम में ईरान की वर्तमान सीमा तक और दक्षिण में समुद्र तक सम्मिलित था। अर्थात् इस साम्राज्य में क़ाबुल, हिरात, कन्धार सम्मिलित थे— उत्तर की ओर काफिरस्तान का देश, काश्मीर, नैपाल व खुटान भी थे। सातवीं सदी में जब ह्वानसांग चीनी यात्री इस देश में होकर आया तो उसने काफिरस्तान के नगर कपिश्या में महाराज अशोक के निर्माण स्तूप देखे थे और इसी प्रकार का एक विशाल भवन जो ३०० फीट ऊँचा था, और जिसके भीतरी भाग में सुन्दर पच्चीकारी का काम था। नङ्गहार * नगर में

* इस नगर का नाम नङ्ग निहार अथवा नङ्गनहर भी लिखा जाता है।

जो जलालाबाद के समीप काबुल नदी पर स्थित था। इस सारे देश में महाराज अशोक के निर्माण भवन वर्तमान थे। जिनके खँड़हर अब मिल रहे हैं।

कश्मीर में तो महाराज अशोक ने असंख्य भवन निर्माण कराये। श्रीनगर से पहले जो राजधानी थी उसको अशोक ने बनवाया था। उसके विषय में भिन्न भिन्न मत है। अधिकांश विचार है कि वर्तमान श्रीनगर से दक्षिण-पूर्व की ओर जो एक प्राचीन स्थान पद्रेठन के नाम से प्रसिद्ध है वहां यह नगर था। किन्तु मुसलमान इतिहास लेखक यह लिखते हैं कि अशोक का नगर लदर नदी पर एक सैर नाम का स्थान था जो इस्लामाबाद * और मार्तण्ड † के निकट हैं। यह स्थान वर्तमान श्रीनगर से ३० मील से अधिक दूरी पर है।

कहा तो यह जाता है कि कश्मीर में महाराज अशोक ने पांच सौ बौद्ध-विहार बनवाये और बहुत से अन्य प्रकार के ब्राह्मण धर्म के भवन निर्माण कराये।

---

* इस्लामाबाद का हिन्दू नाम अनङ्गपाल है। और जहाँ बहुत से गर्म और ठण्डे सोते हैं।

† इस्लामाबाद से कुछ दूरी पर मार्तण्ड नामक स्थान है जो हिन्दुओं का तीर्थ है। और जहां अत्यन्त निर्मल जल के कई सोते हैं। इस मार्तण्ड के निकट उस मन्दिर के खँड़हर के चिन्ह हैं जो सूर्य का मन्दिर कहा जाता है और जिसके कलसे की चमक देखकर कश्मीर का मशहूर बादशाह स्कन्दर क्रुद्ध हुआ था। यह भवन अत्यन्त सुन्दर है।

नैपाल में उन स्तम्भों के अतिरिक्त जो उमनदुई और निगल्वा के स्थान में मिले हैं, काठमाण्डू के निकट महाराज अशोक ने स्वयं एक नवीन नगर बनवाया था। काठमाण्डू का प्राचीन नाम मंजुपाटन था। और नवीन नगर काठमाण्डू से दक्षिण पूर्व की दो मील की दूरी पर था। महाराज ने एक और नगर निर्माण कराया जिसका नाम ललितपट्टन रखा गया। ठीक उसके मध्य में एक मन्दिर बनाया गया और उसके चारो कोनों पर चार स्तूप निर्माण हुये जो अब तक स्थिर हैं। इस यात्रा में अशोक की पुत्री चारुमति उनके साथ थी। चारुमति के पति का नाम देवपाल था, दोनों स्त्री पुरुष नैपाल में रह गये जहां उन्होंने पशुपति के मन्दिर के निकट एक नगर देवपाटन बसाया। चारुमति ने मरने से पहले बौद्ध धर्मभिक्षुओं के लिये एक नवीन विहार निर्माण कराया जो जबाहल नामक गाँव में देवपाटन के समीप है। और जिसमें वह स्वयं अन्तिम अवस्था में रही और वहीं मरी। किन्तु उसका पति अपनी प्रतिज्ञा के आज्ञानुसार मृतकों का एक नवीन विहार अपनी मृत्यु से पूर्व न बनवा सका जिसका उसको मरते समय बड़ा दुख हुआ।

बङ्गाल में उस समय सब से प्रसिद्ध बन्दरगाह ताम्रलिप्ति था जहां से सिंहल, ब्रह्मा चीन और हिन्द सागर के द्वीपों के साथ व्यापार होता था जो निस्सन्देह महाराज अशोक के राज्य में था। वहां पर महाराज ने एक स्तूप बनवाया जो चीनी यात्री की यात्रा के समय वर्तमान था। यह बन्दरगाह अब भूमि के भीतर

दबा हुआ है । धरातल से १८, २० फीट नीचे पक्की चूने की दीवारें मिली हैं ।

चीनी यात्री फाहियान की यात्रा के समय ताम्रलिप्ति में २२ बौद्ध-विहार थे । सातवीं सदी में उसके आधे रह गये । वर्तमान नगर तमलूक जो समुद्र से ७ मील की दूरी पर है ताम्रलिप्ति के स्थान पर स्थित है । और भी बहुत से स्तूप महाराज अशोक ने ब्रह्मपुत्र नदी के डेल्टा पर और बङ्गाल और विहार प्रान्त में बनवाये जिससे विदित होता है कि सारा बङ्गाल महाराज अशोक के राज्य में सम्मिलित था । किन्तु आसाम जिसका प्राचीन नाम कामरूप है, उनके राज्य में न था *। पूर्व में सारा पूर्वी किनारा नेल्लोर तक महाराज अशोक के शासन में था । इसी किनारे पर कलिङ्ग स्थित था जिसको

---

* कहा जाता है कि हिमालय में खूटान का नगर और अनेक राज्य भी महाराज अशोक के समय बसाये गये। हिन्दुओं और जैनियों ने मिलकर इसको बसाया और आधा आधा विभक्त कर लिया । ब्रह्मा की कथा के अनुसार आर्यावर्त के राजा अशोक, भगवान बुद्ध की मृत्यु से २५० वर्ष पश्चात् खूटान आये। उस समय चीन में सम्राट् 'शीहांगटी'—का राज्य था। जिसने चीन की विशाल दीवार बनवाई थी । वेन्सन्ट स्मिथ के मत में ये सारे प्रमाण यह निश्चय करने के लिये यथेष्ट नहीं कि खूटान महाराज अशोक के राज्य में न था ।

मिस्टर वेन्सन्ट स्मिथ के इस मत से कम से कम यह तो प्रगट होता कि अंग्रेज इतिहास लेखक अशोक के राज्य-सीमा के सम्बन्ध में कितना

विजय के पश्चात् महाराज अशोक के विचार में परिवर्तन आरम्भ हुआ। उत्तर मैसूर में भी महाराज अशोक के खुदवाये हुये पार्वतीय शिलालेख पाये गये हैं।

महाराज अशोक के नैतिक-राज्य के जो प्रमाण उनके अपने लेखों, घोषणाओं और आज्ञाओं से मिलते हैं उनसे उन परिवर्तनों का पता लगता है जो उन्होंने चन्द्रगुप्त के प्रबन्ध में किये। चन्द्रगुप्त के समय का प्रबन्ध हम पहले वर्णन कर चुके हैं। उसको फिर वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, केवल उन परिवर्तनों को नोट करेंगे जो महाराज अशोक के समय में हुये। जिनका स्पष्ट वर्णन इन घोषणाओं में नहीं है। जिनका सारांश और अनुवाद हम लिख चुके हैं।

अधिक वास्तविक प्रमाण चाहते हैं। साधारण कथा कहानी पर चाहे उनसे झूठ होने के कोई प्रमाण उनके पास न हो और उनमें स्वयं कोई बात असम्भव न हो—उनको विश्वास नहीं। खूटान के सम्बन्ध में जिन वर्णनों का प्रमाण स्मिथ ने भगवान बुद्ध की मृत्यु और अशोक के सम्बन्ध में दिया है और जो इतिहास ब्रह्मा की कहानियाँ वर्णन करती हैं वह लग भग ठीक हैं। और यह भी मानता है कि 'शिहांगटी' का समय अशोक के समय से मिलता है। इस चीनी सम्राट् ने २४६ से २१० पूर्व ई० तक राज्य किया और अशोक ने २७३ से २३२ तक। यदि महाराज बुद्ध का देहान्त ४८४ में हुआ तो ब्रह्मा की कहानी के अनुसार महाराज अशोक २७३ में खूटान गये। यह बात कि खूटान में बौद्धधर्म बहुत बाद फैला है इस बात का पक्का प्रमाण नहीं है कि ब्रह्मा की कहानियाँ झूठी हैं।

इनमें से एक महान कार्य वह है जो महाराज अशोक ने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में की । अशोक ने पाटलीपुत्र के चारो ओर एक पत्थर की दीवार बनवाई और नगर में ऐसे सुन्दर महल और अन्य भवन निर्माण कराये कि कई शताब्दियों तक जो यात्री इस देश में आते रहे वे आश्चर्य करते रहे कि ऐसे कार्य्य मनुष्यों ने किस प्रकार किये ।

पाटलीपुत्र उस समय सोन नदी के किनारे बसा था । और उससे वह सारी भूमि सम्मिलित थी जहाँ अब पटना बाँकीपुर और ईस्टइण्डिया रेलवे के दफ्तर हैं । गङ्गा और सोन का सङ्गम नगर के नीचे होता था, अर्थात् नगर दोनों नदियों के मध्य में आ जाता था । इस नगर के खँड़हर अब खोदे जा रहे हैं और भूमि के भीतर से दो मन्जिले और तीन मन्जिले भवनों की दीवारें निकल रही हैं । महल के खँड़हर और उसके स्तम्भ भी मिल रहे हैं ।

अशोक के लेख से ज्ञात होता है कि अशोक बड़ा परिश्रमी था और वह काम के टालने के नितान्त विरुद्ध था । इस विषय पर उसकी पर्वतीय घोषणा न० ६ देखने योग्य है । जिसका अनुवाद नीचे लिखा जाता है । महाराज कहते हैं--

"सर्वदा से ऐसा होता चला आया है कि जिस समय कोई समाचार आता है उसी समय हमको नहीं दिया जाता और न कार्य ही समय पर किया जाता है । किन्तु अब मैंने यह प्रबन्ध किया है कि मैं चाहे कहीं रहूँ और किसी दशा में रहूँ अर्थात् भोजन करता रहूँ अथवा रनिवास में रहूँ अथवा अपने निज के

कमरे में रहूं अथवा सवारी पर अथवा खेल कूद के स्थान में प्रत्येक स्थान पर जो लोग समाचार * देने के लिये नियत किये गये हैं वे मुझको प्रजा की दशा का समाचार दें। मैं प्रत्येक स्थान पर प्रजा की बातों का ध्यान रखता हूँ। और यदि कभी मैं मुख से किसी प्रकार की दान की आज्ञा दूँ अथवा और किसी प्रकार की चेतावनी करूं अथवा जब कभी कोई कार्य महामन्त्रियों के अधिकार में दिया गया हो और उस कार्य के विषय में मन्त्री परिषद † में मतभेद हो जावे अथवा वे उसको स्थगित कर देवें तो मुझे तुरन्त जिस स्थान में रहूं और जिस दशा में रहूँ समाचार दिया जावे यह मेरी आज्ञा है।

क्योंकि मुझे कार्य करने में कभी सन्तोष नहीं, मेरा कर्तव्य है कि मैं जनता के लाभ के निमित्त कार्य करूं और उसका मूल, पुरुषार्थ और साहस है। क्योंकि प्रजा-पालन से बढ़कर और कोई कार्य आवश्यक नहीं। जितना परिश्रम मैं करता हूँ उसका यही अभिप्राय है कि मैं उस ऋण से उऋण हो जाऊं जो मुझे प्राणधारियों को देना है। जिससे कि इस लोक में यदि मैं किसी को सुख पहुँचा सकूं तो परलोक में उनको स्वर्ग की प्राप्ति हो। इसलिये मैंने यह शास्त्र मर्य्यादा लिख दी है। जिससे कि चिरकाल तक मेरे पुत्र प्रजा के लाभ के कार्य करते रहें। किन्तु अत्यन्त यत्न के बिना ऐसा करना कठिन है।

---

* पटिवेदक, प्रतिवेदक।

† कौन्सिल।

अर्थ शास्त्र में राजा के कर्तव्य वर्णन करते हुए यह लिखा गया है कि--

"जब राजा इजलास करता हो तो उसको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि लोगों को अपना प्रार्थना-पत्र लिये हुये द्वार पर आसरा न देखना पड़े। वे राजा तक सुगमता से पहुँच जायँ। राजा यदि अपना कार्य अपने कर्मचारियों के अधिकार में न कर दे तो कार्य में गड़बड़ी पड़ जाती है और इससे जनता में अप्रसन्नता फैलती है और राजा के वैरियों को उसपर सिक्का जमाने का अवसर प्राप्त होता है।

अतः राजा का कर्तव्य है कि स्वयं सब कार्यों की ओर ध्यान दे। चाहे वह कार्य देवताओं का हो अथवा धर्म विरोधियों का अथवा वेदपाठी ब्राह्मणों का, पशुओं का अथवा पवित्र स्थानों का, बालकों और वृद्धों का अथवा दुखी, रोगग्रस्त, स्त्रियों का।

जो आवश्यक कार्य हो उसे तुरन्त करना चाहिये। स्थगित करने से उस काम को पूरा करना अत्यन्त कठिन अथवा असम्भव हो जाता है। राजा की प्रतिज्ञा यह है कि वह सर्वदा कार्य करने के के लिये उद्यत रहे, उसका यज्ञ यह है कि वह अपने कर्तव्य को इच्छानुसार पूर्ण करे। उसको यज्ञदान और पवित्रता इसी में है कि वह सब पर एकदृष्टि रक्खे।

प्रजा के सुख में उसका सुख है। उनके लाभ में उसका लाभ है। उसको चाहिये कि जिस वस्तु से प्रजा प्रसन्न हो

उसी को अपनी प्रसन्नता का कारण समझे न कि उसके विपरीत।

अतः राजा का कर्तव्य है कि सर्वदा उद्यत रहे और अपने धर्म का पालन करे। सम्पदा का मूल, उद्योग है और दरिद्रता की जड़ निरुद्यम।

निरुद्यमी की दशा में जो कुछ मनुष्य के पास रहता है वह भी व्यय हो जाता है। और भविष्य के लिये कुछ नहीं मिलता। उद्योग से उसकी इच्छायें भी पूरी हो जाती हैं और धन भी भरपूर मिलता है।"

क्या कहना है! क्या ही उच्च आदर्श है! कैसा अच्छा हो कि सब राजा इसी के अनुसार कार्य करें। एवं अर्थशास्त्र की यह शिक्षा और महाराज अशोक की यह आज्ञा दोनों, ऐसे धर्म लेख हैं जिन-पर हिन्दू उचित अभिमान कर सकते हैं। महाराज अशोक के आज्ञापत्र से यह भी प्रगट होता है कि महाराज अपने डङ्गर ढोर और घोड़े इत्यादि पर भी ध्यान रखते थे और उनके देखने के लिये घुड़साल में जाया करते थे।

वेन्सन्ट स्मिथ यह स्वीकार करता है कि ६० साल के अन्तर्गत जो परिवर्तन मौर्यवंश के राज्य ने भारत के प्रबन्ध में आरम्भ कर दिये वह वास्तव में आश्चर्य-जनक हैं। सिकन्दर की चढ़ाई के समय यह देश छिन्न भिन्न था। पञ्जाब में भी कितने राजा थे और कितनी स्वतन्त्र जातियाँ थीं। यद्यपि मगध का राज्य उस समय भी सब से बड़ा था किन्तु वह चक्रवर्ती राज्य न

था। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से २५ वर्ष में इस सारे महाद्वीप को इस प्रकार शासित कर दिया कि उसका साम्राज्य संसार के बड़े से बड़े राज्य की समता करने योग्य हो गया। उसके पश्चात् उसके पुत्र और पौत्रों ने उसको और भी उन्नति के शिखर पर पहुँचाया, यहाँ तक कि महाराज अशोक के समय में सारे भारतवर्ष में उनका राज्य था। यह सारी सफलता ९० वर्ष के अन्तर्गत प्राप्त की गई। और तारीफ़ यह कि पैंतीस छत्तीस वर्ष में कोई युद्ध तक नहीं हुआ। कोई चढ़ाई नहीं हुई और जहाँ तक ज्ञात है कोई विद्रोह भी नहीं हुआ।
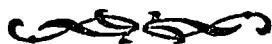
८

महाराजा अशोक के निर्माण

अशोक संसार के बड़े से बड़े निर्माणकर्ताओं में था। उसके निर्माण को हम तीन भाग में विभक्त कर सकते हैं।

प्रथम—वह जो जनता के लिये निर्माण कराये।

द्वितीय—धार्मिक।

तृतीय—राज्य भवन।

प्रथम—उन कुओं, धर्मशालाओं और सरायों का वर्णन आता है, जो जनता के निमित्त बनवाये गये। पहले वर्णन हो चुका है

कि उसने प्रत्येक आध कोस पर कुएँ खुदवाये और यात्रियों के लिये प्रति मंजिल पर सरायें और धर्मशालायें बनवाईं। स्थान स्थान पर पशुओं और मनुष्यों के पानी पीने के लिये जलाशय बनवाये। पाटलिपुत्र लगभग भारत के मध्य में स्थित था और वहां से बड़े बड़े मार्ग और सड़कें भिन्न भिन्न दिशाओं को जाती थीं तो अनुमान हो सकता है कि इन जनता के लाभ के निमित्त कितना रुपया व्यय हुआ होगा। केवल एक सड़क जो पाटलिपुत्र से उत्तर पश्चिम को तक्षशिला में से होकर जाती है अथवा तक्षशिला को जाती है, ११५० * मील लम्बी थी। इसी प्रकार सड़कें पूव, दक्षिण और उत्तर को भी जाती थीं। दक्षिण की ओर उज्जैन की सड़कें विशेषतया बहुत लम्बी होंगी। और यदि अर्थशास्त्र की दी हुई व्याख्या को सम्मुख रक्खा जाय तो सारे राज्य-मार्ग अथवा राज्य सम्बन्धी सड़कें कम से कम ३२ फीट चौड़ी थीं। उनके दोनों ओर

---

* मेगस्थनीज ने इस सड़क की लम्बाई दस हजार स्टडिया लिखी है। एक स्टेडिया २०२। गज का होताहै। अर्थात् दस स्टेडिया २०२२॥ गज हुआ। वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है कि दो मुगल के स्तम्भों के बीच की दूरी नापने पर मुगल की लम्बाई ४५६८ गज होती है जो दो मील से थोड़ा सा अधिक हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि अशोक के समय में कोस की लम्बाई कितनी थी। अब तक भी राजपुताना में एक कोस दो मील से अधिक लम्बा होता है। पाटलिपुत्र से तक्षशिला तक एकदम सीधी लाइन से ९५० मील का अन्तर है।

पशुओं और पैदल चलने वाले यात्रियों के लिये अलग मार्ग थे। केवल अर्थशास्त्र में ही नहीं बल्कि शुक्रनीति में सड़कों को सुन्दर, स्वच्छ और निर्विघ्न रखने के लिये बड़ी चेतावनी की गई है। चीनी यात्री ह्वानसांग जब सातवीं शताब्दि में भारत में आया तो उसने सड़कों को अच्छी दशा में पाया और इस बात का समर्थन किया कि मार्ग में धर्मशालायें और सदावर्त भी हैं। यही नहीं बल्कि रोगियों की चिकित्सा के लिये अच्छा प्रबन्ध था। इस कार्य को चन्द्रगुप्त ने आरम्भ किया था। जिसने मीलों के पत्थर गड़वाये उसके पश्चात् अशोक ने उनपर कुओं, धर्म शालाओं और चिकित्सालयों को निर्माण कराया और वृक्ष लगवाये। उसके पुत्र पौत्रों ने भी इस कार्य्य को स्थिर रक्खा होगा नहीं तो सम्भव नहीं था कि नौ सौ साल पश्चात् यह इन्स्टिट्यूशन ऐसी अच्छी दशा में होते, जिस दशा में उनको ह्वानसाँग ने पाया। भारत के इतिहास में हिन्दुओं के पश्चात् शेरशाह ने इस कार्य्य की ओर प्रशंसनीय ध्यान दिया।

द्वितीय प्रकार के निर्माणों में राज्य-भवनों अर्थात् महलों की गणना है। जिसमें से पाटलिपुत्र के महल बड़े विशाल और अद्भुत थे। इस महल के सम्बन्ध में समस्त इतिहास लेखकों ने चीनी यात्री फाहियान के लेख का प्रमाण दिया है। वह कहता है—

"नगर के मध्य में राजमहल और हाल (Hall) बने हैं जो अबतक ज्यों के त्यों पहले की भांति वर्तमान हैं। इनके निर्माण

करने के लिये उसने प्रेत लगाये । जिन्होंने पत्थरों को एक दूसरे के ऊपर जोड़ा, दीवारों और द्वारों को ऊँचा किया और ऐसा सुन्दर पच्चीकारी और जड़ाऊ का कार्य किया उसको इस संसार के मनुष्य नहीं कर सकते थे।

यह लेख पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ का है। अर्थात् अधिक से अधिक छठवीं शताब्दी तक यह महल वहाँ इस विशाल दशा में स्थिर रहे। फाहियान से दो शताब्दी पश्चात् ह्वानसाँग आया। उस समय नगर उजाड़ हो गया था और महलों के खड़हर खड़े थे। जो अब पृथ्वी के भीतर दबे हैं और कहीं कहीं मिल रहे हैं। नगर पटना और बांकीपुर (जैसा कि पहले लिखा गया है) कई गाँव और इस्टइण्डिया रेलवे, इन खड़हरों के ऊपर बसे हैं। कहा जाता है कि कमराहार गांव के नीचे और उसके समीप महल के खँड़हर हैं। इस गाँव के उत्तर में दो जलाशय, चमन व कल्लू नाम के हैं। उनके मध्य में जो भूमि है उसके भीतर से श्रीयुत मुकुर्जी ने एक स्वच्छ प्रकाशित स्तम्भ के असंख्य टुकड़े निकाले थे जिसका व्यास तीन फीट था। मिस्टर वेन्सन्ट के मत में यह महल नगर के महल से पृथक था। जिसका वर्णन फाहियान ने किया है।

कहा जाता है कि ऐसा ही एक और स्तम्भ कल्लू खाँ के बाग में जहाँ अब दो मुसलमान सज्जनों के भवन हैं दबा हुआ है। इस स्तम्भ की गोलाई इतनी है कि यदि दो मनुष्य अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर पकड़े तो उसकी गोलाई

को नहीं छू सकते *। ऐसा ही एक स्तम्भ जो लाट भैरो के नाम से प्रसिद्ध है बनारस में १८०६ ई० के विद्रोह में तोड़ दिया गया।

तृतीय—अनेक प्रकार के असंख्य भवन बनवाये गये और वे कई प्रकार के हैं—

(१) विहार जो साधुओं के निवास और उनके विचार और शिक्षा के लिये बनाये गये । इनमें से सब से प्रथम वह था जो पाटलिपुत्र के नगर में महाराजा अशोक ने एक सहस्र साधुओं के लिये बनवाया था । और जिसका नाम अशोकाराम अथवा कुक्कुटाराम था ।

इस प्रकार के † भवन सहस्रों की संख्या में बनवाये गये होंगे किन्तु अब उनमें से एक भी वर्तमान नहीं है । ह्यूनस्वांग के समय में अस्सी स्तूप और विहार ऐसे थे जिनका बनवाने वाला अशोक कहा जाता है। किन्तु कथा तो यह है कि केवल काश्मीर में ही महाराज अशोक ने पांच सौ विहार बनवाये थे। इन विहारों में से सबसे प्रसिद्ध और नामी नालन्दा का विहार था। जो अपने समय में एशिया भर में प्रसिद्ध था । नालन्दा विहार प्रान्त में था। नालन्दा में सहस्रों विद्यार्थी भिन्न भिन्न कक्षाओं के

---

* वेन्सन्ट स्मिथ का नोट मुकुरजी बाबू की रिपोट के अनुसार अशोक पृष्ठ १०६ ।

† Such structures were extremely numcrous वेन्सन्ट स्मिथ अशोक पृष्ठ १०६

भारत और एशिया के कई दिशाओं से आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। वर्णन किया जाता है कि नालन्दा के शिक्षकों और प्रोफेसरों की संख्या दस सहस्र तक पहुँच गई थी। और इस विश्व विद्यालय में दोनों मतों के शिक्षक और आचार्य्य वर्तमान थे। और दोनों की शिक्षा देते थे। विचार किया जाता है कि इस विश्वविद्यालय की नींव महाराज अशोक ने डाली थी। किन्तु उनके पश्चात् भिन्न भिन्न राजा महाराजा उनमें बृद्धि करते गये।

उस समय भारतवर्ष में केवल एक नालन्दा में विश्वविद्यालय न था वल्कि नालन्दा और तक्षशिला तो महान् विश्वविद्यालयों में से गिने जाते थे। शेष और विश्वविद्यालय सहस्रों की संख्या में देश में फैले हुये थे। बौद्धों का प्रत्येक आश्रम वास्तव में विद्यालय था, चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, वहां लोगों को केवल शिक्षा ही नहीं दी जाती थी वल्कि भोजन वस्त्र भी दिया जाता था।

दूसरे प्रकार के धार्मिक इमारतों का नाम स्तूप अथवा तूप था। कथा तो यह है कि अशोक ने चौरासी सहस्र स्तूप वनवाये किन्तु इस कथा में हमको बहुत सन्देह जान पड़ता है। स्तूप अथवा तूप एक विशेष प्रकार का भवन है, जो गोलार्द्ध रूप का होता है। उसके शिखर पर एक चौरस अथवा कमल सदृश चवूतरा वनाया जाता है। अशोक के स्तूपों पर मिस्टर वेन्सन्ट के कथानुसार पत्थर की छतरियां एक दूसरे के ऊपर, कई मंजिल की थीं। चीन और ब्रह्मा में इस प्रकार के भवन जिनमें पांच सात अथवा नौ छतरियां होती हैं जो अब भी असंख्य वर्तमान हैं। कुर्सी के चारों

ओर एक परिक्रमा बनाई जाती थी। जिसकी परिक्रमा यात्री करते थे। इस परिक्रमा के साथ साथ एक कठघरा अथवा जंगला अथवा पत्थर की बाढ़ अथवा दीवार होती थी। जिसके स्थान स्थान पर स्तम्भ बनाकर कई भागों में विभक्त किया जाता था। यह जंगला कई स्थान पर साधारण रहता था और कई स्थान पर उनमें अनेक प्रकार की पच्चीकारी और चित्रकारी करके सजाते थे, मध्य में द्वार होता था। सौभाग्य से इस प्रकार का एक भवन अपने वास्तविक रूप में सांची में पाया गया है जिसमें दस स्तूप और अन्य बहुत से भवनों के खँड़हर सम्मिलित हैं।

इनमें से जो सबसे बड़ा है वह एक गोलार्द्ध के टुकड़े के रूप में एक पहाड़ी की चोटी पर स्थिर है। और लाल कणयुक्त पत्थर का बना हुआ है। कुर्सी का व्यास १२११ फीट है। वास्तविक रूप में उसकी ऊँचाई ७७१ फीट होगी। उसके चारो ओर एक सादा किन्तु भारी पत्थर का जंगला है। जिसमें स्थान २ पर पत्थर के स्तम्भ ११-११ फीट ऊँचे हैं। भीतर जाने के लिये अत्यन्त सजीले द्वार हैं जिनकी ऊँचाई ३४ व ३५ फीट है। जिनमें बौद्धों के धार्म्मिक कथा कहानियों के चित्र बहुतायत से खुदे हैं। इस स्तूप के वर्तमान भवन को अशोक के समय के बने नहीं समझे जाते बल्कि उससे एक शताब्दी पश्चात् समझे जाते हैं।

---

* साँची भूपाल राज्य में है।

† ऐसे ही चित्र हिन्दुओं के दक्षिणी हिन्दू मन्दिरों में हैं। और चित्तौड़ के विजय स्तम्भ पर भी हैं।

और द्वार सन् ५० पूर्व मसीह के होंगे ऐसा कहा जाता है। किन्तु यह माना जाता है कि सबसे प्रथम यहां पर इसी प्रकार के भवन अशोक ने बनवाये थे। दक्षिणी द्वार के निकट एक अत्यन्त सुन्दर अशोक स्तम्भ के टुकड़े मिले हैं। इस स्तम्भ के शिखर पर भी सारनाथ के स्तम्भ की भांति सिंहों की मूर्तियां हैं। जो अशोक के समय के आर्ट के अद्भुत उदाहरण हैं। वह अब टूटी फूटी दशा में हैं।

कुछ और स्तूप और जंगले ऐसे मिले हैं जिनके विषय में अनुमान किया जाता है कि वह अशोक के समय के हैं अथवा उसके समीप के—यह विवाद उन लोगों के लिये अधिक रोचक है। भारत का भवन निर्माण विद्या, पच्चीकारी, चित्रकारी में रुचि रखने वालों को न इस विवाद से रोचकता है न वे भलीभांति इसको समझ सकेंगे। वर्तमान शिक्षा का एक विशेष गुण यह है कि उसमें आर्ट की प्रतिष्ठा का कोई मार्ग नहीं, भारतीय शिक्षित समुदाय में एक मनुष्य भी ऐसा न मिला जो आर्ट के सम्बन्ध में कुछ योग्यता रखता हो अथवा जिसके हृदय और नेत्रों ने इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त की हो कि जो सुन्दर आर्ट और बुरे आर्ट को पहचान सकें और पहले के गुणों को समझ सकें।

आर्ट के सम्बन्ध में भारतीयों की शिक्षा बिल्कुल शून्य है। पढ़ने वाली पुस्तकों में जो चित्र दिये गये हैं, वे ऐसे अश्लील और कुरूप होते हैं कि उनसे विद्यार्थियों के चित्त की रोचकता बनने के बदले बिगड़ जाती है।

कई स्थानों पर कुछ पत्थर की मूर्तियां ऐसी मिली हैं जिनके विषय में संदेह किया जाता है कि वह अशोक के समय की हैं। हम इस सारे रोचक विषय को छोड़ देते हैं।

महाराज अशोक के भवनों में से रेतीले पत्थर के स्तम्भ जिनका रोगन अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर है, उस समय के भवन-निर्माण-विद्या के अत्यन्त अनुपम उदाहरण समझे जाते हैं। इनमें से कई एक पर वाक्य खुदे हैं। और कई एक ऐसे भी हैं जिनपर कुछ नहीं खुदा है। इस प्रकार के दस स्तम्भ आज तक मिल चुके हैं। बहुत से गिर गये हैं और नष्ट होगये हैं और बहुत से अभी तक पृथ्वी के भीतर गड़े * हैं। मुज़फ्फरपुर ज़िले में बसाढ़ † ग्राम के निकट एक स्तम्भ है जिसपर कुछ लिखा है। वह पानी के धरातल से ३२ फीट ऊँचा है। उसकी कुर्सी पानी में है। कुछ स्तम्भ ५० फीट ऊँचा है और ५० टन वजन का कहा जाता है। जिला चम्पारन में लोरिया नन्दगढ़ में एक स्तम्भ मिला है जिसपर कुछ लिखा है जो बखेरा वाले स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर समझा जाता है और जिसके शिखर पर एक सिंह का चित्र है।

एक स्तम्भ इलाहाबाद में हैं जिसपर महाराज अशोक की कई घोषणायें लिखी हैं।

---

* Many more pillars remain to be discovered
वेन्सन्ट स्मिथ अशोक पृष्ठ १२४

† बसाढ़ का प्राचीन नाम वैशाली है।

जिला चम्पारन में रामपुरवा के स्थान पर दो टूटे हुए स्तम्भ पाये गये हैं जिनमें से एक पर महाराज की छः स्तम्भिक घोषणायें खुदी हैं। उसके शिखर पर जो सिंह की पत्थर की मूर्त्ति थी वह भी उसके निकट गड़ी हुई मिली है। दूसरा स्तम्भ खाली है। उसके ऊपर सांड़ की मूर्त्ति थी, जो मिलगई है किन्तु टूटी हुई दशा में है।

यह सारे स्तम्भ जो चम्पारन और मुज़फ्फ़रपुर के ज़िले में पाये गये हैं उस मार्ग पर स्थित हैं जिस मार्ग से गङ्गा के उत्तरी किनारे से चलकर महाराज नैपाल की यात्रा के लिये गये हैं। यह सब स्तम्भ अथवा लाटें रेतीले पत्थर की हैं जो सम्भवतः मिर्ज़ापुर जिले से चुनार की खान से निकाली गई हैं। यह स्तम्भ एक ही पत्थर से तय्यार किये गये और फिर उनपर रोगन किया गया है। इस बात को विचारा जावे कि इस प्रकार के स्तम्भ जो दूर दूर स्थानों पर सैकड़ों कोसों की दूरी पर मिले हैं तो यह ज्ञात होता है कि उनके तय्यार करने, ले जाने और गाड़ने में कैसा परिश्रम और उद्योग किया गया और कितना व्यय करना पड़ा।

अशोक से १६०० वर्ष पश्चात् १३५६ ई० में सुल्तान फीरोज़ तुगलक दिल्ली वाले ने इसके साथ के दो स्तम्भ, जिला अम्बाला के टोपरा स्थान से और दूसरा मेरठ के जिले से उठवाकर एक दिल्ली के पास, कोटला में और दूसरा एक पहाड़ी पर स्थापित कराया। फीरोज़ तुग़लक के समय के इतिहास लेखक शमस सिराज ने अपने इतिहास में निम्न प्रकार लिखा है—

जब सुल्तान फीरोज़ ठट्ठा के युद्ध से लौटा तो उसने दिल्ली के चारो ओर बहुत यात्रा की। इस प्रान्त में दो पत्थर के स्तम्भ स्थापित थे। एक साढौरा और दूसरा खिज़राबाद के जिले में कोई टोहरनगांव में मिला। दूसरा मेरठ नगर के आस पास में + + + जब फिरोजशाह ने उन स्तम्भों को देखा तो वह बहुत प्रशंसा करने लगा और उसने उनको वहां से उठा कर दिल्ली में गाड़ने की इच्छा की। फ़र्रुखाबाद दिल्ली से ९० कोस है।

+ + + बहुत सोच विचार के पश्चात् उठाने के विषय में यह आज्ञा दी गई कि उस प्रान्त के सारे निवासियों को (चाहे दो आब के भीतर हों अथवा बाहर) और सारी सेना को (प्यादे हों अथवा सवार) बुलाकर इस कार्य पर लगाया जावे। उनको आज्ञा दी गई कि इस कार्य्य के निमित्त जो आवश्यक हथियार अथवा सामान हो वह अपने साथ लेते आवें और सम्भल की रुई इकट्ठी करें। सम्भल की रूई, स्तम्भ के चारो ओर फैला दी गई। और फिर स्तम्भ की कुर्सी की मिट्टी खोदकर उसको धीरे से सम्भल की रूई पर लिटा दिया। भूमि खोदकर उसके नींव का पत्थर भी निकाला गया। फिर धीरे २ रूई लिपटा दी गई। सारे स्तम्भ को सिर से पैर तक सरकण्डों और चमड़ों में बांधा गया जिससे उसको किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। बयालिस पहियों का एक गड्ढा तैयार किया गया और प्रत्येक पहिये में रस्सियां बांध दी गई। सहस्रों मनुष्य एक रस्सी पर लगाये गये और बड़ी कठिनाई से उसको गाड़ी पर लादा गया। प्रत्येक

पहिये पर २०० मनुष्य रस्सी खींचने के लिये लगाये गये अर्थात् गाड़ी को ८४०० मनुष्य चलाते थे। इस प्रकार से यह गड्ढा यमुना जी के किनारे तक पहुँचाया गया। यहां स्वयं सुलतान उपस्थित हुआ और असंख्य नावें एकत्रित की गईं। + + + स्तम्भ को धीरे से सुरक्षित नावों पर लादा गया और फीरोज़ाबाद लाकर उतारा गया और बड़े परिश्रम और निर्विघ्नता से उसको कशक पहुँचाया गया। यहां उसके लिये एक विशाल भवन निर्माण किया गया। बड़े बड़े राजगीर लगाये गये। इस भवन की कई मन्ज़िलें थीं। जब एक मन्ज़िल समाप्त हो जाती थी तो मीनार को उसपर खड़ा कर दिया जाता था। इस प्रकार मन्ज़िल दर मन्ज़िल उसको उचित ऊँचाई पर स्थापित किया गया। फिर उसको सीधा ऊँचा करने के लिये बहुत से उपाय किये गये, बड़ी बड़ी रस्सियां बनवाई गईं, पट्टे बनवाये गये इत्यादि। धीरे धीरे उसको एक एक गज़ करके सीधा किया गया यहां तक कि वह सीधा तीर की भांति खड़ा हो गया। उसके नीचे पत्थर की नींव डाली गयी।

यदि ९० कोस तक इस स्तम्भ के ले जाने में इतना परिश्रम और कठिनता उठानी पड़ी तो जो स्तम्भ सैकड़ों कोस तक ले जाये गये उनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये कितना परिश्रम किया गया होगा यह पाठक ही अनुमान कर लें?

अशोक ने इस प्रकार के तीस अथवा उससे ऊपर मीनार खड़े किये जिनमें से कई एक इस स्तम्भ से भी अधिक वज़नी थे और बहुत दूर दूर पहुँचाये गये। जैसे हम पहले वर्णन कर चुके हैं दस

स्तम्भ मिल चुके हैं। इनमें से छः पर, पहली छः स्तम्भिक घोषणायें लिखी हैं। सातवें पर सातवीं घोषणा लिखी है। यही वह स्तम्भ है जो फीरोज तुग़लक ने टोपरा से उठा कर दिल्ली में गाड़ा था। नैपाल में जो स्तम्भ मिले हैं उनपर नैपाल की यात्रा का वर्णन है। सांची और सारनाथ के स्तम्भों पर छोटी स्तम्भिक घोषणायें हैं जिनका सम्बंध संघ के प्रबन्ध से है।

धार्मिक भवनों के लेख में उन गुफाओं का भी वर्णन आना चाहिये जो अशोक ने आजीवका जाति के साधुओं के लिये पर्वतों में कटवाये। इनमें से एक जो उसके पौत्र दशरथ के नाम से प्रसिद्ध है ४५ फीट ५ ईञ्च लम्बी × १९ फीट २ इञ्च चौड़ी है और उसके ऊपर मेहराबदार छत दस फीट की ऊंचाई पर है। यह गुफायें गया के निकट नागार्जुनी पहाड़ियों में से खोदी गई। सारे भीतरी धरातल पर अत्यन्त उत्तम रोगन किया है और वेन्सन्ट स्मिथ के कथनानुसार बहुत परिश्रम और बहुत द्रव्य लगा है। आजीवक पन्थ के साधु बिल्कुल नग्न रहा करते थे।

पर्वतीय घोषणायें

पर्वतीय घोषणाओं के विषय में सक्षेप से पहले लिख चुके हैं। उनकी नकल हिन्दी अनुवाद के साथ इस पुस्तक की सूची में देंगे। अब हम यह बता देते हैं कि वह चट्टान जिनपर यह घोषणायें लिखी हैं कहां कहां स्थित हैं।

उत्तर-पश्चिम में वह जिला पेशावर के युसुफजई प्रान्त में बसा

हुआ एक ग्राम शहबाज़ गढ़ी से आरम्भ होते हैं * यह स्थान पेशावर से ४०० मील दक्षिण पूर्व और अशोक की राजधानी से सीधी लाईन में १००० मील की दूरी पर स्थित है।

चौदह पर्वतीय घोषणाओं में से १३ (बारहवें घोषणा को छोड़ कर) एक शिला पर खुदे हैं जो लम्बाई में १४ फीट और चौड़ाई में १० फीट है। घोषणा नं० १२ इस शिला से ५० गज की दूरी पर एक और शिला पर खुदा है। यह वह लेख है जिसमें सब धर्मों के साथ प्रेम भाव रखने की आज्ञा है। दूसरी शिला जिला हज़ारा में मानसहारा के स्थान में मिली है जो एबटाबाद से १५ मील उत्तर की ओर है। डाक्टर स्टाइन का मत है कि इसके निकट एक सड़क बाराबरी को जाती थी जो एक तीर्थस्थान था—* इस चट्टान के एक ओर केवल वह घोषणा है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है दूसरी ओर शेष सब शिला लेख हैं।

---

* It is Possible and not impossible that other examples remain to be discovered in Afghanistan and tribal terretory beyond the North Western Frontier or even within the limits of India. अर्थात् यह सम्भव है और असम्भव नहीं कि इस प्रकार के और शिलालेख अभी अफगानिस्तान, सीमाप्रान्त, भारत की सीमाओं में मिलने को शेष हों।

* यह मार्ग कश्मीर को जाता है।

यह दोनों घोषणायें खरोष्ठी लिपि में लिखी हुई हैं जिनके विषय में अंग्रेज़ इतिहास लेखकों का विचार है कि वह भारत में उन पारसी कर्मचारियों ने प्रचारित किये जो दारा के समय में उत्तर पश्चिम भारत में ईरानी राज्य के स्थानापन्न होकर आये †

इन घोषणाओं की तीसरी नकल जि० देहरादून के कालसी गांव में उस सड़क पर है जो सहारनपुर से चकराता को जाती है, जो मन्सूरी पर्वत से पश्चिम १५ मील की दूरी पर है। यह लेख १८६० ई० में मिला था और कहा जाता है कि उसके भवन अभी ज्यों के त्यों हैं। इस स्थान पर लुइस नदी यमुना में गिरती है। इस शिला के एक ओर हाथी का चित्र है। और लेख ब्राह्म लिपि में लिखा है जिससे नागरी निकली है।

इस घोषणाओं की दो नकलें पश्चिमी किनारे पर मिली हैं। एक बम्बई के उत्तर, जिला थाना में सोपारा के स्थान पर जो प्राचीन काल में कई शताब्दियों तक एक प्रसिद्ध बन्दरगाह रहा है। वहां पर कई हिन्दू और बौद्धों के विशाल भवन थे। किसी समय में समुद्र, नगर की दीवारों के नीचे बहता था किन्तु अब पीछे हट गया है और अब वहाँ भूमि आगई है।

दूसरा काठियावाड़ प्रान्त में प्रसिद्ध गिरनार का लेख जिसका करनल टाड ने १८२२ ई० में पता लगाया था। यह पहाड़ी जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है जिसकी वे अत्यन्त प्रतिष्ठा करते हैं।

---

† इसके सम्बन्ध में देखो हमारा इतिहास भारत, प्रथम भाग हिन्दू पर्व।

जूनागढ़ का प्रसिद्ध नगर, गिरनार और दातार नामी पहाड़ियों के मध्य में स्थित है। यहां पर चन्द्रगुप्त ने सुदर्शन झील बनवाई थी। जिसमें से अशोक के अध्यक्षों ने राजवाहे, नालियां और नहरें निकालकर सिचाई का कार्य आरम्भ किया था। यह शिला उस झील के किनारे खड़ी थी। इस शिला के उत्तर पूर्व की ओर चौदह घोषणायें लिखी हैं। उसके शिखर पर रौद्र दमन का लेख है और पश्चिम की ओर स्कन्ध गुप्त के गवर्नरों के लेख हैं।

इन घोषणाओं की दो नकलें बंगाल की खाड़ी के किनारे भारत के पूर्वी किनारे पर कलिंग प्रान्त के अन्तर्गत मिली हैं। इन दोनों नकलों में नं० ११, १२, १३ छोड़ दिये गये हैं और उसके स्थान पर सीमान्तिक व सूबों के कर्मचारियों के लिये जो घोषणायें घोषित की गई थीं वह लिखी हैं। इनमें से उत्तरीय नकल एक अस्वस्तमह नाम की शिला पर खुदी है। जो पुरी जिले में भुवनेश्वर के पास उड़ीसा के दक्षिण में घौली-गांव के निकट एक पहाड़ी पर है। लेख के ऊपरी भाग पर, पहाड़ में से काट कर ऊँचाई में १४ फीट के लगभग हाथी की मूर्ति का अगला भाग बनवाया गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रान्त की राजधानी तौसिली इसी प्रान्त में स्थित थी। दक्षिण की नकल जिला गंजम (अहाता मदरास), (प्राचीन नगर जूनगढ़) के केन्द्र में एक बड़े पत्थर के टुकड़े पर लिखा है।

छोटे शिला लेखों की तीन नकलें मैसूर प्रान्त में मिली हैं। और न० १ की कई कापियां दक्षिणी बिहार के जिला

शाहाबाद में मौजा सहसराम और मध्यप्रान्त के जिला जलाल-पुर रूपनाथ में और निजामप्रान्त में कासकी और राजपूताना के वैराट में मिली है।

इन घटनाओं के वास्तविक रूप से ज्ञात होता है कि महाराज अशोक का राज्य उत्तर, दक्षिण और पूर्व, पश्चिम कहांतक था। यदि वह स्तम्भ और शिला लेख इन दूर देशों में न प्राप्त हुये होते तो और कोई प्रमाण महाराज अशोक के राज्य की सीमा स्थापित करने के लिये उचित नहीं समझा जाता। इससे हम पूर्ण विश्वास करते हैं कि यह बात असम्भव नहीं कि ऐतिहासिक काल में अथवा इस ऐतिहासिक काल के पूर्व और भी चक्रवर्ती राजा भारत में हुये। जिन्होंने सारे भारत में अपना सिक्का चलाया और जिनका राज्य-विस्तार वर्तमान वृटिश गवर्नमेएट आफ इण्डिया के विस्तार से कम न था।

अशोक के समय में अन्य आर्ट के विषय में वेन्सन्ट स्मिथ लिखता है कि निस्सन्देह वह अत्यन्त ही उच्च दशा में पहुँच चुके थे। यह मत इस हेतु अमूल्य है कि अनेक योरोपियन पण्डित इस बात पर आग्रह करते हैं कि भारतीय आर्ट यूनानी से वहुत बढ़ा चढ़ा है। यूनानी सिकन्दर के साथ इस देश में आये। उसके पूर्व युनानियों का कोई सम्बन्ध हमारे देश से न था। सिकन्दर ३३२ पू० ई० में इस देश से गया। ३०१ अथवा २९८ ई० पू० में चन्द्रगुप्त का राज्य समाप्त हुआ। उसके पश्चात् उसके

पुत्र विन्दुसार ने ३० वर्ष के लगभग राज्य किया अर्थात् अशोक और सिकन्दर के बीच केवल ५० वर्ष का समय बीता। यदि भारतीय आर्ट सिकन्दर के आने से पूर्व अत्यन्त तुच्छ वस्तु था तो यह विश्वास योग्य नहीं है कि इस पचास * वर्ष के बीच में भारतीय विद्वज्जनों ने यूनानियों से आर्ट सीखने में इस प्रकार उन्नति की जो कि अशोक के समय तक (High standard of excellence) अत्यन्त उच्च दशा को प्राप्त हो गया।

मैं पहले लिख चुका हूं कि भारतीय आर्ट पर अत्यन्त विस्तृत व्याख्या करना मेरी योग्यता से बाहर है। न तो स्वयं मुझे इतनी योग्यता और रोचकता है कि मैं सुचित होकर इस विषय को लिख सकूं और न मुझे यह विश्वास है कि जिस समुदाय के लिये यह पुस्तक लिख रहा हूँ वह इतनी रोचकता और योग्यता रखती है कि इस बात को भलीभांति समझ सके। इसलिये मैंने केवल संक्षिप्त रीति से यह वर्णन कर दिया है। भारतीय निर्माण की यह विशेषता है कि कमल-पुष्प को उल्टा करके उसके रूपके कलस अथवा शिखर बनाये गये हैं। कोई कोई योरोपियन पण्डित इसको घण्टे (Bell) का रूप बतलाते हैं। किन्तु डाक्टर हेवेल और स्वामी आनन्द कुमार का मत इससे विरुद्ध हैं।

---

* The art in the age of Asoka undoubtedly had affained to a high degree of excellance.. अशोक पृष्ठ १३५

मौर्यवंश के इतिहास की तिथियों का क्रम हम दो स्थानों से तैयार करके नीचे देते हैं।

वेन्सन्ट स्मिथ की तिथियाँ उसकी अशोक नाम की पुस्तक से पृष्ठ ७२, ७३ से उद्धृत	पूर्व ईसा	कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिआ अध्याय १८, १६, २० से	पूर्व ईसा
सिकन्दर की भारत पर चढ़ाई और चन्द्रगुप्त की जवानी	३२७-२५	सिकन्दर का भारत में आना जाड़े में	३२७
		वापसी व्यास से जून	३२६
सिकन्दरके जीते प्रान्त में विद्रोह	३२५-२२	वापसी झेलम नदीसे नवम्बर	३२६
चन्द्रगुप्त की राजगद्दी	३२५	जाना पालकोट से जून	३२५
सिकन्दर की मृत्यु जून	३२३	सिन्ध	३२३
सिकन्दर के वाइसरायका भारतसेजाना	लगभग ३१७		३१७
सैल्यूकस और चन्द्रगुप्त युद्ध और मेगस्थानीज का आना	लगभग ३०५		३०५
चन्द्रगुप्त की मृत्यु और विन्दुसार की राजगद्दी	३०१		२९७

स्मिथ की सूची	पूर्व ईसा	केम्ब्रिज हिस्ट्री	पूर्व ईसा
डिमास्कस राजदूत	३००		
टोलमीफीलेडलफस मिश्र के राजा की राजगद्दी	२८०		
एनी गुन्स गुजाइस मक़दूनिया के राजा को राजगद्दी	२७१ या २७८		
अशोक की राजगद्दी	२७३	अधिक से अधिक	२७४
सिकन्दर शाह एपीरस की राजगद्दी	२७२		
अशोक राज्याभिषेक	२६९	,, ,, ,,	२७०
कलिङ्ग की विजय और बुद्धमतमें प्रवेश	२६१	,, ,, ,,	२६२
एन्टीयुकस शाम के राजा की राजगद्दी	२६१		
अशोक का भिक्षु वनना	२५९	,, ,, ,,	२६०
राजा मागस साइरेन कीं मृत्यु	२५८		

स्मिथ की सूची	पूर्व ईसा	केम्ब्रिज हिस्ट्री	पूर्व ईसा
छोटा शिलालेखनं०१ चट्टानी शिलालेखन० ३ व ४ आजीवका साधुओं के नामदान	२५७		
तकमील १४ एलान हाय चट्टानी कालिन्दी सरहदीयों का एलान तकरर संसर हाय भावरी एलान	२५६	अधिक से अधिक	२५७या २५८
कलिङ्ग की घोषणायें कपिल वस्तु के निकट कोनाकमन बुद्ध के स्तूप की दूसरी वृद्धि	२५५		
बाराबर का दान आजीविका साधुओं के नाम	२५०		
बौद्ध तीर्थों की यात्रा	२४९	कपिल वस्तु की प्रथम यात्रा अधिक से अधिक	२५६

स्मिथ की सूची	पूर्व ईसा	केम्ब्रिज हिस्ट्री	पूर्व ईसा
उमनदुई और नेलगवा लाट का खुदवाना		वाग लुचिनी की यात्रा और कपिल वस्तुकी दूसरी यात्रा	अधिक से अधिक २५०
स्तम्भिक लेख न० ६	२४३	२४२ अथवा २४३	अधिक से अधिक
सात स्तम्भिक घोषणाओंका पूराकरना	२४२		
पाटाली पुत्र की बौद्ध कौन्सिल	लगभग २४०	२५३ अधिक से अधिक	
छोटे स्तम्भिक लेख	२४० से २३२	२४३ या २४२ ,,	
अशोक की मृत्यु व दशरथ की राजगद्दी	२३२	२३७ या २३६ ,,	
बृहद्रथ अन्तिम मौर्य राजा की हत्या और मौर्य वंश की समाप्ति	१८८		

धर्म पर एक संक्षिप्त घोषणा

धर्म मजहब अथवा रेलिजन (Religion) पर और इनके विचार पर संसार में बड़े बड़े ग्रन्थ रचे गये हैं और दिन प्रति दिन लिखे जा रहे हैं। और प्रत्येक भाषा में और प्रत्येक देश में ऐसी पुस्तकें वर्तमान हैं। विज्ञान ने भी इस विचार पर बहुत कुछ लिखा है। जब से संसार में 'मनुष्य जीवन का पता चलता है तब से यह विचार पाया जाता है। और यदि धर्म के वे विस्तृत अर्थ लिये जावें जो संस्कृत भाषा में लिये जाते हैं तो जब से संसार स्थित है तब से उसके साथ धर्म भी स्थित हैं। प्रत्येक वस्तु के विचार के साथ उसके धर्म का विचार भी होता है—पानी का धर्म है, आग का धर्म है, हवा का धर्म है अभिप्राय यह कि कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसका धर्म न हो। अरबी शब्द मजहब और अङ्गरेजी शब्द रेलिजन इस भाव को प्रगट नहीं करते। इन शब्दों से मनुष्य के उस पन्थ और रीति से अभिप्राय है जो वह अपने स्वर्गप्राप्ति के लिये नियत कर ले अथवा चुन ले। इस पर यह प्रश्न होगा कि स्वर्ग क्या है और उससे क्या उद्देश्य और अर्थ है। इस प्रकार यह विवाद बहुत विस्तृत हो जाता है। संसार में जितना विवाद धर्म के ऊपर किये गये हैं वे साधारणतः ऐसे संकुचित अर्थों में किये गये हैं जिनमें मजहब और रिलीजन के शब्द प्रयोग किये जाते हैं। उचित तो यह है कि इस विवाद का कुछ संक्षेप यहाँ लिखा जाता। किन्तु मैं यह घोषणा जेलखाने के

भीतर लिख रहा हूँ । और मेरे पास वह पुस्तकें वर्तमान नहीं जिनमें मैं धर्म के इस विवाद को विवाद करने वालों के शब्दों में उद्धृत करूं । बीस पचीस वर्ष का समय हुआ मैंने इस विषय पर दो या तीन आर्टिकल दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कॉलेज मेगज़ीन के लिये लिखे थे । जो उस पत्र में छपे थे । किन्तु उन आर्टिकलों का केवल वह भाग मेरे इस अभिप्राय के लिये लाभदायक है जिनमें मैंने अन्य लोगों के विचार धर्म्म के सम्बन्ध में बतलाये हैं ।

धर्म के विचार के साथ साधारणतः निम्न विचार सम्बन्ध रखते हैं । (१) मनुष्य और मनुष्योंको उत्पन्न करने वाले का सम्बन्ध अर्थात सृष्टिकर्ता अथवा परमात्मा (२) मुक्ति, निर्वाण अथवा स्वर्ग के विचार (३) दण्ड पारितोषिक व स्वर्ग नर्क का विचार (४) कर्म अथवा सांसारिक जीवन, जिससे प्रकृति का सम्बन्ध है—इसका विचार ।

छोटे छोटे सम्प्रादायों अथवा व्यक्तिगत मनुष्य को छोड़ कर सात बड़े बड़े धर्म्म संसार में हुये हैं । इनमें सबसे प्राचीन धर्म हिन्दू इज्म प्राचीन हिन्दुओंका धर्म था । वर्तमान हिन्दू धर्म से उसको पृथक समझनेके लिये उसको वैदिक धर्म कहूँगा । वैदिक धर्म से बौद्ध धर्म निकला । और ताऊ धर्म से कनफ्युशस का धर्म निकला । फारस के जरतुश्त ने अपना धर्म चलाया । शैमिटिक जाति में मूसा, ईसा और मुहम्मद के धर्म फैलाये गये । यह सारे धर्म एशिया में उत्पन्न हुये । और एशिया से संसार के भिन्न २ भागों में मिले । मेरे विचार में ये सारे पूर्वज प्रतिष्ठास्पद हैं । उन्होंने

अपनी अपनी समझ के अनुसार अपने समय की आवश्यकताओं को सम्मुख रखकर प्रचलित जीवन-मार्ग में संशोधन किया और अपना अपना धर्म चलाया । मैं नहीं मानता कि उनमें से कोई धूर्त, स्वार्थी और असत्यभाषी था । मैं यह भी मानता हूँ कि उनको यह धर्म चलाने का आन्दोलन उनके हृदय से हुआ जिनको वह आकाशवाणी कहते हैं। मुझे इन धर्मों के साथ अथवा उनके जन्मदाता अथवा उनके अनुयाइयों के साथ किसी प्रकार का पक्षपात करने का अभिप्राय नहीं है। और न उनके साथ विवाद में सम्मिलित होना चाहता हूं । धार्मिक विवाद मेरे मत में एक प्रकार की मस्तिष्क संबन्धी जमनाष्टिक है । जिससे तर्क शक्ति और दुर्विवाद की अवश्य वृद्धि होती है । किन्तु जिससे मनुष्यों को सत्यमार्ग तक पहुँचने में कुछ सहायता नहीं मिलती अथवा यदि मिलती है तो इतनी कम कि उसको नहीं के समान समझना चाहिये। मेरी दृष्टि में धर्म के नाम पर शास्त्रार्थ करने वाले अथवा तर्क करने वाले महाशय संसार में वही कार्य करते हैं जो अंग्रेजी न्यायालओं में वकील करते हैं । मेरी दृष्टि में धर्म प्रचारक भी उन नीति आविष्कारकों के समान है जिन्होंने अपनी बड़ी बड़ी पुस्तकों की व्याख्या और अर्थ वर्णन करने में लिखीं। इसके अर्थ यह नहीं कि यह सब धर्म प्रचारक अथवा वैज्ञानिक, धूर्त थे अथवा किराये के टट्टू थे । अथवा उनका उद्देश्य या अभिप्राय अपनी शिक्षा और शास्त्रार्थ से रुपया कमाना ही था ।

धर्म के नाम पर संसार में बड़े बड़े परिवर्तन हुये हैं विद्रोह और

रक्तपात हुये हैं। अभिप्राय यह कि क्या नहीं हुआ ? धर्म के लिये मनुष्यों ने अपने प्रिय से प्रिय मित्रों, सम्बन्धियों, सन्तानों और अपने देशवासियों की हत्या की, उनको नष्ट भ्रष्ट किया । उनके रक्तपात से अपने कर्तव्य पर कालिमा लगाई । धर्म को राज्यों के बनाने बिगाड़ने में प्रयोग किया गया । धर्म को धन प्राप्ति और संपदा का मार्ग बनाया गया। धर्म को सामुहिक शक्ति और दुष्टता का हथियार बनाया गया । धर्म के द्वारा मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क पर अधिकार जमाया गया और उनको अपने अधीन किया गया। संसार का सारा नैतिक इतिहास वास्तव में धर्म का इतिहास है । मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि जो कुछ धर्म के नामपर किया गया उसका तत्व सर्वदा अपना स्वार्थ, शक्ति प्राप्ति, धन, धान्य संपदा और प्रतिभा प्राप्त करना था। एक व्यक्ति ने, भिन्न भिन्न मनुष्य समुदाय ने, भिन्न भिन्न जातियों ने धर्म को सांसारिक स्वार्थ के लिये प्रयोग किया । धर्म बेचारे के नाम पर बहुत सी ऐसी बातें की गई जिनको धर्म उचित नहीं कहता और जो धर्म के उद्देश्य से पृथक थीं । तारीफ यह है कि धर्म के सब पण्डित, और उपदेशक इस बात की निन्दा करते हैं और हमारे वर्णन का समर्थन करते हैं, तो भी उनकी धार्मिक शिक्षा और उपदेश में उन अवगुणों के अंकुर वर्तमान हैं जिनसे कि सन्सार में बहुत से तीखे, विषैले और हत्यारे वृत्त उत्पन्न हुए और परमात्मा की सृष्टि मनुष्य मात्र में वैमनस्य, युद्ध, हत्या, रक्तपात, लूटमार और अपमान के कारण हुये ।

इसके विरुद्ध इससे भी नहीं मुँह मोड़ा जा सकता कि धर्म के नाम पर और धर्म के विचार के प्रभाव से संसार में बहुत से शुभ कर्म भी हुए।

धर्म के नाम पर लोगों ने अद्भुत और प्रशंसनीय बलिदान किये। जिनमें से बहुत प्रशंसनीय और बहुत से निन्दनीय हैं। धर्म के नाम पर संसार में मनुष्यों ने अनेक संकट सहे और अपने शरीर को कष्ट दिया। तपन, शीत, अग्नि, जल, वायु स्थल, समुद्र, अनशन और प्यास के कष्ट उठाये। अपने शरीर के अनेक अङ्ग सुखा दिये उनको दुख दिया।

लाखों और सैकड़ों वर्ष हुए जब संसार में जीवन प्रगट हुआ। कहा जाता है कि प्रथम बनस्पति के रूप में फिर चौपायों के रूप में और अन्त में मनुष्य के शरीर में प्रकट हुआ। कई इलहामी मज़हबों के कथनानुसार मनुष्य को इस लोक में लाया गया और उसका पूर्णतः रूप यही उत्पन्न किया जैसा कि अब है और उसको उसकी शिक्षा के निमित्त सर्वदा के लिए एक इलहाम हुआ जिसमें परिवर्तन की अथवा उन्नति की कोई जगह नहीं रक्खी गई। प्रत्येक इलहामी मज़हब अपनी पवित्र पुस्तक को इलहामी कहता है और उसको सारी विद्या और सारे सांसारिक और धार्मिक तत्वों का भण्डार मानता है। बहुत से लोग यह कहते हैं कि धार्मिक शिक्षा पर उनकी इलहामी पुस्तक की शिक्षा अन्तिम और माननीय हुई है, सांसारिक विद्या पर नहीं। कई कहते हैं कि उनकी इलहामी पुस्तक में सारी विद्याओं के नियम अंकुर के रूप में वर्णन किये गए हैं।

उनकी वृद्धि करना, उनसे सांसारिक शिक्षा उद्घृत करना, उनका पता लगाना और उनसे काम लेना यह ममुष्य के मस्तिष्क का काम है । यह विद्यायें भिन्न भिन्न समयों में क्यों भिन्न भिन्न हुई ? यह मनुष्य के मस्तिष्क की भूल का और उसके अपूर्ण होने का कारण है । साइन्स और इलहामी धर्म में जो भेद है उसको दूर करने के लिए भिन्न भिन्न रीतियां और मार्ग ग्रहण किये जाते हैं । कहीं शब्दों को शुद्ध किया जाता है । कहीं उसके गुप्त अर्थ को प्रगट किया जाता है । कहीं उनको अलंकार कथा कहानियों के रूप में बताया जाता है और फिर उनकी व्याख्या में सैकड़ों हजारों पृष्ठों की पुस्तकें लिखी जाती है । कहीं विज्ञान की योग्यता का प्रयोग करके उसको विज्ञान के अनुसार बनाने अथवा विज्ञान का मूल बताने का परिश्रम किया जाता है। इस उद्योग और परिश्रम में बहुत कुछ पवित्रता और शुद्धता सम्मिलित है और बहुत कुछ धूर्तता और असत्यता अच्छे से अच्छे व्याख्यानदाता, उपदेशक, अथवा प्रचारक के व्याख्यान अथवा लेख में अपने आपको धोका देने का दृश्य दिखलाई देता है । बहुत से लोग अत्यन्त शुद्ध विचार से दूसरों को निकालने का उद्योग करते हैं किन्तु स्वयं अपने आपको धोका देने की शक्ति से उन्हीं भूलों में पड़ जाते हैं । सबसे भयानक रोग इस संसार में अपने आप को धोका देने की शक्ति है जिसको अंग्रेजी में Self Delution कहा जाता है और संसार में ऐसे मनुष्य विरले होते हैं जिन्होंने अपने आप

को इस रोग से बचाया हो अथवा उसमें पड़कर फिर उससे निकल गये हों। मेरे विचार में पवित्र से पवित्र धर्म भी इस प्रभाव से वञ्चित नहीं है तो भी इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि धर्म मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं तो यह भी कहने को उद्यत हूँ कि धर्म मनुष्य के लिये स्वाभाविक है और मनुष्य का स्वभाव ही धर्म है। प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न होती है अतः प्रत्येक मनुष्य का धर्म भी पृथक है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक जीव है। अतः उसके पृथक गत धर्म के अतिरिक्त उसका सामाजिक धर्म भी है जो उसके धर्म का विशेष अंग हो जाता है। इसी कारण बहुधा वैज्ञानिकों का यह मत है कि सामाजिक धर्म उन प्रथाओं के समुदाय का नाम है जिसको कोई मनुष्य-समुदाय सहर्ष ग्रहण करने योग्य समझता हो। इन्हीं कारणों से सामाजिक धर्म प्रत्येक देश का प्रत्येक जाति का और प्रत्येक समुदाय का पृथक २ होता है। यहां तक कि एक ही धर्म के अनुयायी जो भिन्न भिन्न देशों में रहते हैं भिन्न २ सामाजिक-धर्मावलम्बी होते हैं। बौद्ध प्रदेश में से अथवा इस्लामी प्रदेश में से अथवा ईसाई प्रदेश में से इस विषय की सत्यता में अनेक जातियाँ सम्मुख की जा सकती हैं। भारत के भिन्न २ प्रान्तों में भी सामाजिक धर्म अथवा व्यक्तिगत धर्म अथवा कुलधर्म भिन्न हैं। भिन्न भाग के धर्मशास्त्र भिन्न २ प्रकार के नियम बनाते हैं और न्यायालय भी उनको स्वीकार करता है किन्तु। यह विषय पृथक है। यहां पर हमारा अभिप्राय उस व्य-

क्तिगत धर्म से है जिसकी सहायता से प्रत्येक मनुष्य मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्त करना चाहता है।

प्रश्न यह है कि धर्म क्या वस्तु है ? क्या कुछ सिद्धान्तों के समुदाय का नाम धर्मिक होने के लिये एक विशेष ईश्वर अथवा परमात्मा अथवा उत्पन्न करने वाले की आवश्यकता है ? क्या धार्मिक होने के लिये किसी अवतार अथवा धर्म प्रवर्तक का मानना आवश्यक है ? क्या धार्मिक होने के लिये किसी इलहामी अथवा आकाश से उतरी हुई पुस्तक का मानना अनिवार्य है ? क्या धार्मिक होने के लिये विशेष प्रथा के अनुसार चलना अथवा विशेष रीति से स्तुति अथवा ईश्वर-भक्ति करना कर्तव्य है ? इसमें बीसों और प्रश्न हैं जो किये जा सकते हैं।

अनेक धार्मिक उपदेशकों और प्रचारकों का यह विचार है कि धर्म के विचार के साथ किसी पूज्य का ध्यान आवश्यक है। वह मुसलमानों का अद्वितीय, प्रकृति का स्वामी और सृष्टि कर्ता खुदा हो अथवा ईसाइयों का पिता पुत्र और पवित्रात्मा हो अथवा आर्यों का सर्व शक्तिमान, न्यायकारी औ लोक परलोक का स्वामी ईश्वर हो अथवा हिन्दुओं के वेदान्त का परमात्मा अथवा ब्रह्मा, शिव या विष्णु हो अथवा बौद्धों का बोधिसत्व हो अथवा पारसियों का आहिरमज हो अथवा जापानियों के पित्र हों, इन कल्पित आवश्यकताओं ने प्रत्येक जाति और धार्मिक समुदाय को विवश किया है कि वह अपने परमात्मा के गुण वर्णन करें। कोई उसको निराकार कहता है,

कोई उसको साकार, कोई उसको न्यायी और उसको दयालु मानता है; कोई उसको अन्यायी और प्रलयकारी, कोई उसको उत्पन्न करने वाला कहता है और यह मानता है कि संसार में उसके अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति उसके साथ सम्मिलित नहीं। निर्जीव और सजीव सब उसके उत्पन्न किये हुए हैं। कोई कहता है कि आत्मा और प्रकृति ऐसे ही आदि और सनातन है जैसे परमात्मा अथवा परमेश्वर। परमात्मा न तो आत्मा को उत्पन्न करता है न प्रकृति को; वह केवल इनका संयोग कर देता है। अनेक कहते हैं कि वह संयोग नहीं करता; आत्माएं अपने कर्मों के फल से प्रकृति में जुड़ जाती है और भिन्न २ रूप धारण कर लेती है।

जो विभिन्नता संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों और मतमतान्तरों और सिद्धान्तों में अपने पूज्य के सम्बन्ध और उसके गुण के विषय में हैं वैसी ही विभिन्नता उसकी भक्ति और भक्ति की रीति के विषय में है। जैसे मनुष्यमात्र के परमात्मा असंख्य हैं वैसे ही उनकी भक्ति की रीति भी अगण्य हैं। क्या केवल ईश्वर की वास्तविकता मान लेने से अथवा किसी पूज्य का जीवन और उसकी शक्ति मान लेने से अथवा नियत रीति से भक्ति करने से मनुष्य धर्मात्मा हो जाता है? क्या वास्तव में यह बात स्वीकार करने योग्य है कि मनुष्य ईश्वर की स्तुति करने से अथवा प्रार्थना करने से धर्मात्मा बन जाता है? इन सब प्रश्नों की निर्भरता अपने विश्वास पर है। बहुत से लोग पूजनीय आत्मा को स्वीकार कर लेना ही धर्मात्मा बनने के

लिये उचित समझते हैं। बहुत से अन्य पूज्यात्मा के स्वीकार के साथ उसके अवतार अथवा देवताओं की आत्मा को मानना भी आवश्यक समझते हैं। इनमें से अनेक स्वीकार के साथ साथ एक विशेष रीति से आराधना करना भी आवश्यक समझते हैं और यह कहते हैं कि जो मनुष्य उस रीति से आराधना नहीं करता और उनके परमात्मा और देवताओं को नहीं मानता वह काफिर है, नास्तिक है और वह कभी धर्मात्मा अथवा विश्वासपात्र अथवा सज्जन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त बहुत से कुछ अन्य कर्तव्य भी नियत करते हैं और उनका पूर्ण करना भी आवश्यक समझते हैं।

इन्हीं विभिन्नताओं के कारण भिन्न भिन्न धर्मों में जीवन-मरण, मुक्ति-निर्वाण, धर्म-अधर्म और यह कभी न बन्द होने वाली प्रथा बराबर प्रचलित है। योरोप में एक और नवीन समुदाय उत्पन्न हुआ है जो यह कहता है कि मनुष्य का वास्तविक पूज्य रुपया अथवा सांसारिक साधन है। संसार की प्रत्येक कठिनाइयों में रुपया और शक्ति की इच्छा, कार्य्य करती है और यह सारे धर्म रुपया और शक्ति प्राप्त करने के लिये बनाये गये हैं और इसी उद्देश्य से प्रयोग में लाये जाते हैं। धर्म अथवा रिलीजन Imperalism and Capitalism का एक आवश्यक शस्त्र है जिसकी सहायता से कोई व्यक्ति अथवा जाति अन्य व्यक्ति अथवा जाति पर विजय प्राप्त करती है और उनको दास बनाकर अपने कार्य में लगाती है, शासन करती है और सुख करती है। राज्य-

विजय पाई हुई जाति का यही एक इन्द्रजाल रूपी भाग्य है। उनका यह विचार है कि मनुष्य में यह शक्ति वर्तमान है कि वह जिस वस्तु को चाहे अपनी विशेषता का भाग बना ले और उसको अपने मन के अनुसार इस भांति बना दे कि वह उसको सत्य उचित और कल्याणकारी दिखाई दे। आचरण, प्रसङ्ग, स्वामित्व और प्रथानुसार मनुष्य और मनुष्य समुदाय के हृदय और मस्तिष्क ऐसे हो जाते हैं कि उनको अनेक प्रकृति-विरुद्ध वस्तुओं के स्वीकार करने में कुछ अनुचित नहीं प्रतीत होता। इसी कारण कुछ धर्मों में महान् विद्वान् और परिडत गण देखने में आते हैं। कौन सा धर्म अथवा समुदाय है जिसमें बड़े-बड़े वैज्ञानिक अथवा परिडत न उत्पन्न हुये हों। इतिहास हमको यह बताता है कि कुल धर्मों में समय समय पर यह भी परिश्रम किया गया और किया जाता है कि अपने आप को समय की आवश्यकताओं के अनुसार करें। चूंकि आजकल योरोप और अमेरिका में शोशेलिज़्म (Socialism) का आधिक्य है इसलिए कुल धर्म इस परिश्रम में लगे हैं कि अपने में से शोशेलिज़्म की मोटी मोटी बातों की शिक्षायें निकाल दिखलाय। इसलिये उस बहुसंख्यक जनता को जो शासन और सम्पदा से विनश होकर विरुद्ध हो रही है, अपनी ओर आकर्षित कर लें। इन्हीं अड़चनों का फल है कि ईसाइयत High Church और Low Church की सभ्यता आगई है। इस परिश्रम में क्रिश्चियन विज्ञान Christian Science और क्रिश्चियन शोशेलिज़्म Christian Socialism

ने जन्म लिया है। अमेरिका के गिर्जाघरों में मज़दूर-दल और जनता को बुलाने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार की रीतियाँ प्रयोग में लाई जा रही हैं। थोड़े ही वर्ष हुए अमेरिका में रोमन कैथोलिक के धर्म-ध्वजियों और पादरियों ने एक विशेष प्रकार की घोषणा घोषित की, जिसमें उन्होंने मज़दूरों के उद्देश्य और उनके प्रार्थना करने वाले के साथ सहानुभूति प्रगट करके पवित्र इन्जील से शोशेलिज्म के नियम निकाल कर दिखलाये। अमेरिका में रहने वाले यहूदी धर्म के नेता और उपदेशकों ने भी ऐसा ही किया और इसी प्रकार प्रोटेस्टेन्ट चर्च के भिन्न-भिन्न समुदायों ने अपनी घोषणा की। योरोप और अमेरिका में जो मतभेद इस समय इन भिन्न भिन्न धर्मों में और शोशेलिज्म में हो रहा है वह अत्यन्त सार्थक और रोचक है। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि जो मनुष्य शोशलिस्ट हो जाता है वह प्रचलित धर्म से, प्रचलित आचारिक रीति से जो धर्म पर निर्भर है, प्रचलित धार्मिक अथवा सामाजिक प्रथाओं और नीतियों और नियमों से और प्रचलित एकता नामी सिस्टम से ऐसा विपरीत होता है कि उसे लोग Nihilist कहने लगते हैं। इस शब्द का अर्थ यह है कि जिस मनुष्य पर यह बात निर्भर रहती है वह न धर्म को मानता है, न ईश्वर को, न वर्तमान शोशल बनावट को और न प्रचलित एकता नामी सिस्टम को। वह किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता। सब बातों का विरोध करता है। योरोप में विशेषतः रूस के बहुत से परिवर्तन इच्छुक इस समु-

दाय में गिने जाते हैं किन्तु इससे भी विरोध नहीं कर सकते कि इन लोगों में जिनको निहिलिस्ट की पदवी दी जाती है, बहुत से ऐसे मनुष्य हुये हैं जिनको एकमत से सारा योरोप भलाई, आत्मिक अधिकार और बलिदान का साक्षात् चित्र मानता है। इन लोगों ने स्वतन्त्रता के नाम पर (स्वतन्त्र विचार स्वतन्त्र पूजा, स्वतन्त्र-शिक्षा, स्वतन्त्र सभा, स्वतन्त्र-मुक्ति, स्वतन्त्र गवर्नमेण्ट) कौन कौन से दुख नहीं सहे और कौन कौन से बलिदान नहीं दिये। कुलीन और समृद्धिशाली घराने में उत्पन्न होते हुये भी इनमें से कई एक ऐसे थे जो मन माना धन एकत्रित कर सकते थे, किन्तु जिन्होंने अपने विचार के प्रचार में सब कुछ खो दिया, देश से देशहीन हो गये, सम्पदा से हाथ धो बैठे, जिन्होंने गृह-त्याग की अवस्था में और अत्यन्त दुख की दशा में विदेशों में प्राण दिये, जो अपने सारे जीवन पर्यन्त गवर्नमेण्ट और अपने अपने धार्मिक प्रवर्तकों के अन्याय और दण्ड से बचने के लिये भागते रहे, उन्हें धन की क्या परवाह। बीसों ने सारी आयु बन्दीगृह में बिताई, सूली पर चढ़ाये, फांसी दिये गये, गोली से मार दिये गये। अनेक प्रकार के क[illegible] उनके ऊपर डाले गये, कुत्तों की भाँति उनका पीछा किया गया। इस समुदाय में मनुष्यों की सब श्रेणियों के पुरुष स्त्री सम्मिलित हैं और वे सब ही ऐसे नहीं थे जो नैतिक परिवर्तन का उद्योग करते थे अथवा बम फेंकते थे। इसी समुदाय का एक प्रतिष्ठित प्रिन्स पीटर क्रोपेटकीन Prince Peter Kuraptkin नाम का

है। जो रूस के एक अत्यन्त धनाढ्य और प्रतिभा सम्पन्न कुल में से थे। उनके नाम के साथ प्रिन्स की पदवी प्राचीन है। इसी प्रकार के स्वतन्त्र-विचार मनुष्यों में से कोयंट टालस्टाय थे, यद्यपि उनको निहलिस्ट नहीं कहना चाहिये। इसी समुदाय की एक प्रतिष्टित और प्रतिभा सम्पन्न स्त्री अमेरिका में सन् १६१६ ई० में आई थी जिसको रूसी परिवर्तन की मातामही कहते हैं। लगभग पचास वर्ष वह भिन्न भिन्न जेलखानों में कैद रही और साइवेरिया के खानों में खान खोदती रहीं। योरोप और अमेरिका में इस समय मजदूर दल की एक बड़ी संख्या शोशलिस्ट विचार रखती है। और उद्योग धन्धा करने वालों और मस्तिष्क सम्बन्धी समुदायों की एक उचित संख्या उसी प्रकार के विचार की अनुयायी है। यह लोग न तो सब के सब नास्तिक हैं न निहिलिस्ट, उनमें से कई अब तक ईसाइयत के योग्य हैं। ईसाई धर्म का भिन्न भिन्न समुदाय अपनी धार्मिक शिक्षा को ऐसा रूप दे रहा है जिससे कि यह सारे समुदाय से पृथक न हो जाय।

योरोप और अमेरिका के सारे बड़े बड़े गिर्जे और धार्मिक इन्स्टिट्यु शन सम्पदा वालों के हाथ में हैं और उनके दान से चलते हैं। पादरियों को यही लोग वेतन देते हैं। उनके विभिन्न फण्डों को यही लोग पूरा करते हैं। उनके सुख चैन के लिये यही लोग सामग्री एकत्रित करते हैं। सार्वजनिक सदाव्रत के निमित्त द्रव्य एकत्रित किया जाता है। किन्तु यह सब ईसाइयत

के नाम पर किया जाता है। क्योंकि प्रचलित ईसाइयत धनवानों को बहुत लाभकारी है। और राज्य सम्बन्धी विचार के लिये भी सहायक है। शोशलिस्ट लोगों का यह विचार है कि यह सारी दक्षिणा और धर्मप्रचार केवल इस उद्देश्य के लिये हैं कि वर्तमान प्रबन्ध स्थिर रहे। और जो लाभ इस समय धनवानों और इम्पीरियल विचार वाले समुदायों को इस प्रबन्ध से हो रहे हैं वह प्रचलित रहे।

बहुधा ईसाई जिनमें कोइण्ट टालस्टाय भी गिने जाते हैं इन कुल शिक्षाओं को मसीह की शिक्षा के विपरीत बताते हैं। Organised clurch अर्थात् संस्था में लाये हुए धार्मिक समुदायों के इतिहास में सर्वदा यही दशा हुई है। यह समुदाय धर्म प्रचार के लिये धर्मपरायण लोगों की ओर से आरम्भ किये जाते हैं। किन्तु अन्त में उनको धनवान और शक्तिशाली अपने हाथ में ले लेते हैं। और यह उनके * सांसारिक उद्देश्य का सहारा बन जाता है। जैसा कि सारे संसार का धार्मिक इतिहास इसकी सत्यता को समर्थन करता है।

---

* नस्ल, कौमियत, कलीसा, सल्तनत, तहजीब, रंग.
ख्वाजगी ने खूब चुनचुन कर बनाये मुसकरात।
कट मरा नादां ख्याली देवताओं के लिये,
सुक्र की लज्जत में तो लुटवा गया नकदे हयात।'

अकबाल के इन दोनों अशआर में कलीसा से मुराद मजहब से है।

प्रबन्ध में शक्ति है। प्रत्येक धर्म जो शक्ति और प्रचार चाहता है वह प्रबन्ध स्थापित करने का उद्योग करता है। प्रबन्ध में लाया हुआ धर्म एक सांसारिक इन्स्टिट्यूशन हो जाता है और उसके सांसारिक उद्देश्य सफल हो सकते हैं। रशीद खलीफाओं के समय के पश्चात् मुसलमानों के इतिहास का प्रत्येक पृष्ट इस सत्यता का समर्थन करता है। महाराज अशोक के पश्चात् बौद्धधर्म का इतिहास यही बताता है। ईसाई धर्म का इतिहास तो कान्सटन टाइन के समय से इसी नींव पर स्थिर किया गया। पोपों के इतिहासों से यही ध्वनि आती है। सारे मिशनरी धर्मों की यही दशा हुई। अब वर्तमान काल को देखिये। ईसाई धर्म योरोपियन नैतिक शक्ति का अगुआ है। धार्मिक प्रचारकों द्वारा योरोपने सारे एशिया और अफ्रीका को अपने अधिकार में किया। इन धार्मिक प्रचारकों में बहुत से अत्यन्त सज्जन, शुभचिन्तक, भलेमानस, और वास्तविक आत्मत्यागी हुये हैं। जो सत्यता से अपने धर्म को जनता के लाभ के लिये मनुष्यों में फैलाना चाहते हैं। और जिनका यह विचार है कि धर्म दान सब दानों से उत्तम है और विशेष लाभदायक हैं। इस प्रकार के प्रचारक किसी नैतिक उद्देश्य से कार्य नहीं करते। किन्तु चूंकि संसार में नैतिक प्रबन्ध धर्म प्रचार का समर्थक होता है अथवा उसका साधारण मार्ग होता है। अथवा उसकी उन्नति करता है। इसलिये धार्मिक-प्रचार, धार्मिक मिश्नरी समुदायों का नैतिक प्रबन्ध से सम्बन्ध रखना

प्राकृतिक है। जैसे जिन देशों का नैतिक प्रबन्ध ईसाई धर्म के प्रचार के लिये गुणकारी नहीं है वहाँ प्राकृतिक रीति से ईसाई पादरी परिवर्तन शील समुदायों के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। और ऐसे प्रबन्ध की सत्यता के समर्थक हो जाते हैं जो उनके प्रचार के लिए लाभदायक हों। इस धार्मिक प्रचार के उद्देश्य के साथ जातीय उद्देश्य सम्मिलित होकर उनको इस बात पर विवश करती है कि वह अपनी जाति में नैतिक अधिकार का उद्योग करें। हम यह चित्र उन पादरी समुदायों का खींच रहे हैं जो शुद्ध हृदय हैं और जिनकी धार्मिक घोषणा में कोई नैतिक उद्देश्य नहीं है। हम इसकी व्याख्या एक उदाहरण से करेंगे।

एक अङ्गरेज पादरी को चीन, कोरिया अथवा अफ्रीका में नियत कर दिया जाता है। मिश्नरी वहाँ के प्रचलित धर्म का खण्डन करती है, लोगों के हृदय को दुख पहुँचता है। और लोग उसको दुख देते हैं। अथवा वर्तमान सरकार से अपील करते हैं अथवा स्वयं उस मिश्नरी को हानि पहुँचाने के लिये उद्यत हो जाते हैं। अब मिशन के लिये दो रूप हैं। वहाँ से अपना डेरा डण्डा उठा ले अथवा उस देश के नैतिक प्रबन्ध को ऐसी दशा में परिवर्तन करने का उद्योग करे जो उनकी धार्मिक घोषणा के अनुकूल हो। इसके भी दो रूप हैं। वह देश के विद्रोही विभाग से मिलकर वर्तमान सरकार के विरुद्ध विद्रोह सम्बन्धी आन्दोलन मचावे अथवा स्वयं सर्कार से अपनी अपील करके उनकी सहायता माँगे। यदि उनकी सरकार बलवती है और

जिस देश में वह प्रचार करते हैं वहाँ की सरकार निर्बल है, तब तो अन्तिम रीति का प्रयोग किया जाता है। नहीं तो अन्य दशा में अथवा उनकी सर्कार के विद्रोही की दशा में यह धार्मिक मिशन उस देश में एक अन्य गवर्नमेण्ट की शक्ति-स्थापना का कारण हो जाता है और इस विद्रोह से भी मिशनरी लोगों के देशबन्धु लाभ उठाते हैं।

सारांश इस प्रकार से जो कार्य धार्मिक प्रचार के लिये आरम्भ किया गया था वह नैतिक परिवर्तन का कारण बन जाता है। प्रत्येक धार्मिक प्रचारक यह चाहता है कि जिस देश में वह प्रचार कर रहा है उस देश में उसके स्वजातीय और स्वधर्मी लोगों का राज्य हो जावे।

क्या इस प्रकार का धार्मिक प्रचार लोगों को धर्मात्मा बना सकता है? क्या इस प्रकार के धार्मिक-प्रचारक स्वयं धर्मात्मा कहला सकते हैं, क्या उनका प्रचार जनता के लिये लाभदायक और उन्नति का कारण समझा जा सकता है? ये प्रश्न हैं जिनका उत्तर प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने लिये दे सकता है।

इन विवादों से मेरा उद्देश्य यह था कि यद्यपि संसार के प्रत्येक धर्म में पण्डित, विद्वान्, योग्य, शुद्ध-हृदय, पवित्रात्मा मनुष्य सम्मिलित हैं। और भूतकाल में रहे हैं। और भविष्य में रहेंगे। और यद्यपि उनके उपदेश और प्रचार सत्यता पर ही निर्भर हों किन्तु अन्त में वह नैतिक रूप में परिवर्तन होते हैं। और होते रहे हैं और होते रहेंगे।

इसलिये मेरा विचार है कि धार्मिक प्रचार और धार्मिक उपदेश मनुष्यों को धर्मात्मा नहीं बनाता।

धर्म की वास्तविकता क्या है? इसकी साधारण और उचित परिभाषा क्या है? वह है जो वैशेषिक दर्शन के लेखक कणाद ऋषि ने लिखी है अर्थात् वह जिससे लोक और परलोक में सुख प्राप्त हो। किन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि सुख क्या है।

लोक परलोक क्या है?

संसार के बहुधा धर्म परलोक की शिक्षा देते हैं और वह परलोक का बहुत रोचक चित्र बनाकर जनता के सम्मुख रखते हैं। हिन्दुओं का स्वर्ग, बौद्धों का बैकुण्ठ, मुसलमानों और ईसाइयों का बिहिश्त परियों से भरा हुआ है इसमें हर प्रकार की सुख सामग्री बताई गई हैं। यदि सामग्रियों का प्राप्त करना ही सुख है तो मेरे विचार में वह मनुष्य महामूर्ख है जो इस संसार में प्राप्त सामग्रियों को परलोक की सामग्रियों की आशा पर छोड़ दे। परलोक के भोग के लिये इस लोक के भोग का त्याग एक अत्यन्त अनुचित नियम है। जिसको केवल निर्बुद्धि और मूर्ण मनुष्य स्वीकार कर सकता है। इस लोक का भोग तो साक्षात् है, परलोक को भोग केवल कल्पित है। साक्षात् वस्तु को कल्पित वस्तु के लिये त्याग देना कहाँ की बुद्धिमानी है, किन्तु यदि दोनों को सम्भव मान लिया जाय तो इसमें क्या अन्तर पड़ता है। यदि स्त्री-भोग और मद्पान और

अन्य सांसारिक भोग परलोक में अच्छा है तो यह यहाँ ही क्यों बुरा है ? इस मूर्खता को देखकर प्रायः धार्मिक विद्वानों ने कहा है कि यह स्वर्ग-नरक, बिहिश्त-दोजख, हीवेनहेल Heaven and Hell केवल रूपक के लिये कहे गये हैं इनका वास्तविक तत्व कुछ नहीं है। फिर परलोक के सुखसे क्या उद्देश्य ? हिन्दू धर्म और इससे निकले हुए धर्म ने जन्म मरण को सब से बड़ा दुख निश्चय किया है। चूंकि जन्म मरण कर्मों का फल है। अतः वे कर्मों के चक्कर से मुक्त पाने को ही परमानन्द समझते हैं। इसको आप मोक्ष समझें अथवा निर्वाण एक ही है। प्रमाण में आराधना की रीति में अन्तर है। किन्तु फल वास्तव में एक ही है। वास्तविकता मनुष्य जीवन के जन्ममरण के दुख से मुक्त पाना है।

धर्म का यह विचार है जो रह रह कर हिन्दुओं को त्याग की ओर ले जाता है और हिन्दू धर्म में त्याग के विज्ञान को प्रधान पद पर बैठा देता है। यही त्याग का विचार है जिसने मेरी नाकिस राय में हिन्दुओं को अत्यन्त हानि पहुँचाई है। मेरे मन में भगवान बुद्ध की आरम्भिक वैज्ञानिक शिक्षा झूठे त्याग और झूठी तपस्या के विरुद्ध एक प्रोटेस्ट (Protest) था किन्तु मेरे अभाग्य से वह भी अन्त में उसी त्याग की ओर झुक गया जो उनसे पूर्व इस भारतवर्ष में शासन करता था।

मेरे मत में जो धर्म हमें संसार से भागना सिखलावे वह कदापि सत्य नहीं हो सकता। मैं स्वयं किसी ऐसे परमेश्वर

की वास्तविकता का वाध्य नहीं जो कहीं वैठा हुआ रात दिन हम पर शासन करता हो। जिसको लोग विश्वसनीय रीति पर सृष्टिकर्ता, न्यायी, दयालु, संहारकर्ता और प्रलयकर्ता कहते हैं। जिसकी बड़ाई करना और जिससे अपनी मनोकामना माँगना और जिसका गुण गाना भक्ति समझी जाती है। मैं अवश्य एक ऐसे तत्व का मानने वाला हूँ जो इस संसार की सृष्टि का कारण है। किन्तु जिसको कोई नहीं जानता कि वह कौन है? कैसा है और क्या करता है? जैसे यह संसार असीम, अनिश्चित और अत्यन्त सुन्दर है वैसे ही बल्कि उससे भी अधिक उसका बनाने वाला भी अवश्य होगा। किन्तु उसको अथवा उसके गुण को न किसी ने जाना है, न कोई जान सकता है। और न कोई जानेगा। मुझको इस विषय में वेदों और उपनिषदों की वह शिक्षा अत्यन्त सत्य ज्ञात होती है जिसमें यह कहा गया है कि हम उसको निश्चित नहीं कर सकते, वह न यह है और न वह है। हम नहीं कह सकते कि वह कैसा है और क्या करता है? अथवा क्या करेगा? वह सारे "यह" और "वह" से पहले से है। वह काल से भी पहले से है। उपनिषदों ने अत्यन्त नम्रता से यह कहा है कि जो मनुष्य समझता है कि वह उसको जानता है वह कुछ नहीं जानता। इससे अधिक और इसके अतिरिक्त परमेश्वर के गुण निश्चित करने का उद्योग करना अपने आपको भ्रम में डालना है। किन्तु जो धर्म उसको धर्मज्ञ और न्यायी समझते हैं, उनके लिये फिर त्याग

की शिक्षा देना और यह उपदेश करना कि हम जन्ममरण के दुःखों से छूट कर उसकी इच्छा पूर्ण कर सकते हैं—यह तुच्छ कहना है। यदि हमारा स्वामी यह चाहता है कि जीव और निर्जीव उत्पन्न हों और नष्ट हों तो जीवधारियों के लिये यह उद्योग करना कि वह न उत्पन्न हों और न मरें उसकी इच्छा के विरुद्ध करना है।

मेरे मत में यह विचार करना कि यह संसार दुःख और संकट का घर है और इससे पृथक रहना चाहिये, और यह शिक्षा देनी कि हमारा परमेश्वर ताड़ना और प्रशंसा, दण्ड और पारितोषिक की कूटनीति पर कार्य करता है झूठ है—जैसे यह सृष्टि और यह सारी प्रत्यक्ष और गुप्त प्रकृति जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं असीम अनिश्चित असंख्य, अगोचर और अचिन्त्य है, ऐसा हमारा ईश्वर है और ऐसा ही हमको होना चाहिये। संसार विस्तृत है विशाल है। इसमें कोई संकुचितता तुच्छता और नीचता नहीं है। यह सारी वस्तुयें हमारे विचार से उत्पन्न की हुई हैं। संसार असीम विस्तृत, दानी, दयालु और सुन्दर है। जो वस्तुयें हमको उसमें कुरूप, अरुचिकर, विषैली, संकीर्ण और घृणित दीख पड़ती हैं वह भी वास्तव में हमारी समझ का फेर है और हमारी शिक्षा की भूल है नहीं तो प्रकृति में जो कुछ है ठीक है और सुन्दर है। ध्यान से देखो तो घृणित, कुरूप अरुचिकर और भोंडी वस्तुओं में भी एक अद्भुत सुन्दरता दिखाई देगी। यह

सुन्दरता उसकी बनावट और उसके अपने व्यक्तित्व Individuality का है। मनुष्य और अन्य जीव उस समय कुरूप, घृणित और अरुचिकर हो जाते हैं जब वे संकीर्ण विचार वाले, तुच्छ और नीच हो जाते हैं। संसार की सब से बड़ी सुन्दरता उसकी उदारता और विस्तार में हैं। यही पाठ हमको सृष्टि और प्रकृति पढ़ाती है—उदार बनो, सुन्दर बनो। इस सारी प्रकृति में एक ही धर्म कार्य करता है। और वह धर्म आकर्षण प्रेम और श्रद्धा का धर्म है, जो कठिनता से हमको दीख पड़ती है। उसमें भी प्रेम भक्ति और उदारता के नियम गुप्त हैं। और उससे भी यही उद्देश्य सिद्ध करता है कि इस संसार में सुन्दरता की सीमा यदि किसी वस्तु में है तो वह (Association में) सङ्गति में, मेल में, प्रेम में, श्रद्धा में, और उदारता में है।

जो जीवन हमको प्राप्त है वह जीने के लिये है न कि मरने और जीवन मरण से मुक्ति पाने के लिये। जीवन को चिरस्थाई करना, सुन्दर और पवित्र बनाना जीवन को दान और दयालुता से परिपूर्ण कर देना, जीवन को धीरता देना, इस जीवन से उत्तम जीवन के लिये उन्नति करना सर्वदा जीवित रहने का उद्योग करना और उसकी इच्छा करना और उद्योग में सर्वदा प्रसन्न चित्त रहना यह जीवन का उद्देश्य और जीवन का स्वर्ग है। जीवन को ऐसा बनाने के लिये सत्य-भाषण और सदाचार जीवन का दिव्य और अद्वितीय नियम है। अतः

उपनिषदों ने बड़ी सत्यता से यह शिक्षा दी है कि सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं।

No religion ishigher than truth.

जो मनुष्य इस धर्म के अनुसार धर्मात्मा बनने का उद्योग करेगा वह धर्मात्मा हो जावेगा। उसके हृदय से अभिमान, घमण्ड, भय, कृपणता, क्रोध, व्यसन, लोभ इत्यादि के बीज नष्ट हो जावेंगे। और वह संसार में स्वतन्त्रता से, उदारता से, उत्साह से, साहस से दयालुता और दान वीरता से और प्रेम से अपने आपको ऊंचा उदार और श्रेष्ठ बना सकेगा। भय उसके समीप नहीं आवेगा। और कायरता का चिन्ह उसके माथे पर न लगेगा। उसको इस सारे संसार में सुन्दरता ही दिखलाई देगी। क्या प्रकृति ने, क्या स्वभाव ने, क्या ईश्वर ने सुन्दरता इस संसार में इसलिये उत्पन्न की है कि मनुष्य उससे दूर रहे। और उसको विषय समझकर उससे बचने का उद्योग करे? क्या जङ्गल में, पहाड़ों पर, पृथ्वी के भीतर, ऊपर, आकाश पर वायु में सुन्दरता नहीं है। संसार का प्रत्येक भाग सुन्दरता से भरा हुआ है। संसार की सुन्दरता भी इस सृष्टि का एक अंश है। जिसके आन्तरिक नेत्रों पर त्रुटि है, रोग है, उसको यह सुन्दरता दीख नहीं पड़ती। क्या कभी ईश्वर का यह विचार हो सकता है कि मनुष्य संसार की सबसे सुन्दर सृष्टि 'स्त्री' से भागे। सत्य-भाषिता और सदाचार, उदारता और दान वीरता से भरपूर धर्म के लिये यह आवश्यक है कि

मनुष्य इस सृष्टि की सुन्दरता के साथ अमानुषिक वर्ताव न करे। उस सुन्दरता को कुरूपता में परिवर्तन करके उसको अपने व्यसन का दास न बना दे।

स्त्री प्रकृति की एक फोटो है। प्रकृति के धर्म का एक अद्भुत दृश्य है। स्त्री को सृष्टिकर्ता ने उत्पन्न करने की शक्ति दी है। मातृशक्ति संसार का श्रेष्ठ दिव्य उच्च सुन्दर और अद्भुत दृश्य है। मनुष्य का उच्च से उच्च धर्म यह है कि वह सृष्टि और प्रकृति की भाँति स्वयं उत्पन्न * करने की शक्ति बढ़ावे।

हाथ से उत्पन्न करे। विचार से उत्पन्न करे। मस्तिष्क से उत्पन्न करे। सारांश उत्पन्न करे। मनुष्य किस प्रकार उत्पन्न कर सकता है। मनुष्य किस प्रकार अपने धर्म के सत्य पथ पर रह सकता है? मनुष्य किस प्रकार अपने परमात्मा की भक्ति कर सकता है? किस प्रकार उसकी आज्ञाओं का पालन कर सकता है? यह स्त्रियों की वास्तविकता मनुष्यों को सिखाता है; वह क्या सिखाती है—

वह यह शिक्षा देती है कि प्रथम प्रेममय बनो, यदि कोई वस्तु सुन्दर अद्भुत और विशेषता से परिपूर्ण पवित्रता से युक्त उत्पन्न करना चाहते हो तो अपने को शुद्ध और पवित्र प्रेम से परिपूर्ण करो। जो स्त्री इस प्रकार प्रेम में (व्यसन में नहीं) लीन होकर अपना धर्म पालन करती है वह उच्च विचार, पवित्र, सुन्दर, शुद्ध हृदय और शुद्ध चित्त सन्तान उत्पन्न करती है।

* Creative power.

जो स्त्री व्यसन के वशमें होकर या अपने आपको विवश पाकर कठोरता से अथवा भय से पुरुष प्रसङ्ग करती है, उसकी सन्तान व्यसनी, निर्बल, पुरुषार्थहीन, कायर और मन और मस्तिस्क की ऋणी रहती है। इसीलिये वेद कहते हैं कि स्त्रियों को चाहिये कि वीर सन्तान 'हेरोज' उत्पन्न करनेवाली बनें। यह उस समय सम्भव है जब कि पुरुष और स्त्री की शक्तियां शुद्ध प्रेम में लीन होकर सृष्टि-उत्पन्न का कार्य करें और यह विचारें कि ऐसा कार्य करने में प्रकृति की आज्ञा का पालन करते हैं और सत्य-धर्म का पालन करते हैं। प्राचीन हिन्दू शास्त्र भी यही शिक्षा देते हैं। यद्यपि इसके कारण कुछ विभिन्न वतलाते हैं कि इस धर्म का पालन करना स्त्री पुरुष का आवश्यक कार्य है और इसकी उपेक्षा करना धर्म-विरुद्ध है।

स्त्री दूसरी वात की शिक्षा देती है, वह यह है कि उत्पन्न करने की शक्ति को प्रयोग में लाने के लिये अपने जीवन और शक्ति को भी संकट में डालो और उसकी उपेक्षा न करो। पुरुष तो स्त्री प्रसङ्ग का आनन्द लेकर पृथक हो जाता है। किन्तु स्त्री गर्भाधान के दिन से लेकर इस सन्तानोत्पत्ति के कारण अपने जीवन को संकट में डालती है। उसके संकट की असीमता उस समय होती है जिस समय वालक पैदा होता है। यद्यपि उसका कार्य केवल पुंसवन से समाप्त नहीं हो सकता।

स्त्री से हमें तीसरी शिक्षा यह मिलती है कि स्वयं उत्पन्न की हुई वस्तु को जिसको प्रेम से सन्तान कहते हैं अनेक प्रकार के संकट सह कर इस योग्य बना दो कि वह इस संसार में अभिमान-

पूर्वक पवित्र हृदय और मस्तिष्क से परिपूर्ण होकर फिर सच्ची संतान उत्पन्न करने का कारण बन सके।

माता का निःस्वार्थ सत्य और पवित्र प्रेम इस सृष्टि के सृष्टि-कर्ता का सुन्दर और मनोहर दृश्य है। बालक के लिये उसकी माता उसकी पूज्य और आराध्य है। वही उसका योग्य आचार्य्य अथवा गुरू है। उसकी दृष्टि में सुंदरता का चित्र है। क्योंकि वह निस्वार्थ प्रेम का अनुपम उदाहरण और अद्भुत चित्र है।

यह सारी सृष्टि और प्रकृति निःस्वार्थ प्रेम से परिपूर्ण है। इस संसार में निःस्वार्थ प्रेम का राज्य है। माता का हृदय उसका दर्पण है। यह माता मानवी हो अथवा अमानवी अथवा वनस्पत्ति सम्बन्धी, वह अपने जीवन को संकट में डालकर बालक उत्पन्न करती है और अपने निःस्वार्थ और सच्चे प्रेम के सोते से इस नवीन पौधे को पानी देकर उसको सींचती है। और उसको इतना बड़ा कर देती है कि उसके पश्चात् वह उस शक्ति को और सुंदरता को बढ़ाने और सन्तानोत्पन्न करने के कार्य्य में प्रयोग करता है।

केवल बालक उत्पन्नकरना सृष्टि-बृद्धि नहीं है। संसार में नवीन विचार का फैलाना, अच्छी पुस्तकोंका लिखना, अच्छे चित्र बनाना कोई आविष्कार करना, सिद्धांत का निकालना, किसी वस्तु का बनाना, किसी वस्तु का गढ़ना, कृषि करना, कपड़े बुनना, जूते बनाना, यह सब सांसारिक कार्य हैं। जिनमें मनुष्य अपनी Creative Power की बृद्धि कर सकता है और उच्च दिव्य फल प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के जीवन काउद्देश्य और कार्य यह है, कि वह

उसी Creative Power अर्थात् उत्पन्न करने की शक्ति की वृद्धि करे, उन्नति के शिखर पर पहुँचाये। यही उसके जीवन का स्वर्ग है। उसी से वह अपने जीवन को पवित्र, उच्च, श्रेष्ठ और सुन्दर बना सकता है। जो मनुष्य संसार में स्वयं किसी प्रकार की वस्तु उत्पन्न नहीं करता और दूसरे की उत्पन्न की हुई वस्तुओं से आनन्द करता है वह महा कृतघ्नी है और प्रकृति का अत्यन्त घृणित दृश्य है (यदि हम कह सकें कि प्रकृति के दृश्य में भी कोई ऐसा घृणित दृश्य हो सकता है)। जो मनुष्य इस शक्ति में पूरी योग्यता प्राप्त करता है वही सच्ची आत्मीयता की मूर्ति है।

आत्मीयता जंगल में बैठकर अल्लाह २ करने से अथवा राम २ करने से अथवा वेदमंत्रों के जाप करने से अथवा केवल घंटे हिलाने से अथवा नमाज पढ़ने से अथवा गिर्जों में जाने से प्राप्त नहीं होती। आत्मीयता का अत्यन्त उत्तम अंकुर उन मनुष्यों में होता है जो अपनी उत्पन्न की शक्ति को बढ़ाकर संसार की सुन्दरता की वृद्धि करते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार से सुन्दर बनता है और सुन्दरता का विस्तार करता है उसकी शेष कुरूपता और त्रुटि भी सुन्दरता के भीतर छिप जाती है। वर्तमान योरोप को देखिये क्या इसकी प्रबलता है। उन्होंने सारी सृष्टिको वशमें कर रक्खा है। सारांश हमारे आचारिक और आत्मिक विचारों से योरोप कितना गिरा हुआ है। किन्तु उसकी उत्पन्न करने की शक्ति इतनी बढ़ी हुई है कि हम आत्मीयता के संमुख भी शेष आत्मीयता तुच्छ है। यदि योरोप इस उत्पन्न करने की शक्ति के साथ सत्यभाषिता और सदाचार का भी पुजारी-

होता तो वह मनुष्यता के शिखर पर चढ़ जाता। जब भारतीय लोगों का धर्म ऐसा सत्य, असाधारण और उत्तम था उस समय यहां के लोगों की उत्पन्न शक्ति विचित्र थी। संसार के प्रारम्भिक इतिहास में भारतवासियों ने अनुपम गुण दिखलाये। आज जो वस्तुयें हमको साधारण तुच्छ और अयोग्य दिखलाई देती हैं वह आरम्भिक काल में कैसी सार्थक और गूढ़ थीं। जिस मनुष्य अथवा मनुष्यों ने प्रथम कृषि आरम्भ की, और अनेक प्रकार के अन्न उपजाये, जिन्होंने हल चलाना आरम्भ किया, जिस मनुष्य ने मनुष्यों को ठण्ढ और धूप से बचने के लिये रूई का पौधा निकाला और कपड़ा बुनना आविष्कार किया, जिस मनुष्य ने लोगों को स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होने के लिये चीनी और खांड उत्पन्न की और पुनः जिन लोगों ने इन वस्तुओं को विशेष योग्यता दिखलाई वे कैसे उच्च विचार वाले और कैसे महापुरुष थे।

उसके पश्चात् जिन लोगों ने राजगीरी की कला निकाली, पच्चीकारी, चित्रकारी, वेलबूटादि आविष्कार किया वे कैसे मस्तिष्क वाले थे। जिन लोगों ने संगीत शास्त्र का आविष्कार किया, भाषाशास्त्र की उन्नति की वे कैसे उच्च थे! सारांश कहां तक गिनते चले जावें।

हम धर्म के आविष्कारकों और धार्मिक वैज्ञानिकों को भी महापुरुष समझते हैं। किन्तु हमारी दृष्टि में धर्म के अविष्कारकों की अपेक्षा संसार में पूर्वज लोगों ने विशेष लाभदायक कार्य किये। जो आजकल के धर्म हैं उनके बिना लोगों का निर्वाह हो सकता है

किन्तु भोजन वस्त्र के विना नहीं हो सकता। यह सत्य है कि केवल भोजन वस्त्र ही जीवन का उद्देश्य नहीं है किन्तु विना भोजन के जीवित नहीं रह सकते। विना भोजन किये जीवन का अन्त हो जाता है। और इस प्रकार से जिस जीवन का अन्त होता है उसमें सुंदरता नहीं है। समय पर मृत्यु भी एक रोचक दृश्य है किन्तु अकाल मृत्यु एक धब्बा है जिसके विपरीत सारी प्रकृति प्रोटेस्ट करती है।

मेरे मत में प्रारम्भिक वैदिक धर्म सत्य और साधारण और प्राकृतिक था। उसमें न रूढ़ीमतों की शिक्षा थी और न भक्ति पर जोर था। उसके पश्चात् पुरोहितों और पण्डितों के विचार की प्रबलता से जो इसमें वृद्धि होती गई उसने मनुष्य को सिद्धांतो और प्रथाओं का दास बना दिया।

मैं नहीं कह सकता कि इन प्रथाओं से लाभ नहीं होता? मैं इसका विरोध नहीं करता किन्तु यह मेरा विश्वास है कि यह वास्तविक धर्म नहीं, यह सारी बातें सोशल धर्म की परिभाषा में आती हैं। उनको Exclusive बनाना और यह शिक्षा देना कि जो उनका अनुयायी नहीं होता वह पाप करता है और नरकगामी होता है, मनुष्यों को कुपथ पर ले जाना है। यहां तक तो सत्य है कि जो मनुष्य किसी समाज में रहता हुआ उस समाज की रीति नीति का पालन नहीं करता और उस समाज के नियमित आचारिक रीतियों का अनुकरण नहीं करता उसके प्रति समाज उसके जीवन को नरक बना देता है, वह उस समाज को छोड़कर ही उस नरक से मुक्ति पा सकता है। मैं परलोक से अथवा मृत्यु के पश्चात् जीवन

से विरोध करना अथवा समर्थन करना आवश्यक नहीं समझता किन्तु मेरे विचार में वर्तमान जीवन सब से अत्यन्त आवश्यक है। इसमें संसार का आनंद उठाना उससे पूर्ण लाभ प्राप्त करना उसमें आनन्द से जीवित रहना वास्तविक जीवन है। इस संसार में सारी सामग्री और भोग विलास जब कि सत्यभाषिता और सदाचार से प्राप्त होते हों तो मनुष्य के लिये उचित हैं। मेरे मत में जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। किन्तु मैं इस जिन्दादिली को नहीं मानता जो धूर्तता से धोखा से जबर्दस्ती से अन्याय से छल से कपट से (जो झूठ और दुराचारके फल होते हैं) प्राप्त हो। मैं उस जिन्दादिली का समर्थक हूं जो सदाचार और सत्कर्म से प्राप्त हो। जो मनुष्य को उदारता और प्रेम से प्राप्त हो। मैं इस बात का अनुमोदक कदापि नहीं कि इस जीवन के जिन्दादिली का खून करके आगामी जीवन प्राप्त किया जावे। मैं इस बात का मानने वाला हूँ कि जिन्दादिली से जिन्दगी बढ़ती है और मृत्यु के पश्चात् पुनः हमको किसी प्रकार का जीवन मिलता है तो वह जीवन इस जन्म के जीवन से अधिक उत्तम होता है। जिस मनुष्य ने इस जन्म में जीवन का धर्म पालन नहीं किया, जो मनुष्य इस जन्म में नहीं जीवित रहा उसको आगामी जीवन में क्या आनन्द मिलेगा? वह तो सर्वदा रोता ही रहेगा। जीवन का धर्म सर्वदा स्त्री से पृथक रहने से नहीं पालन होता। जीवन का धर्म साधु होने से भली भांति नहीं पालन होता। जो सन्यास में जीवन समझता है वह सन्यासी हो जावे; इसमें कोई बाधक नहीं। किन्तु मैं उसको, जीवन का उपयोग अथवा

वास्तविक जीवन समझने के विरुद्ध हूँ। जो मनुष्य जीवन के कर्तव्य और उन जिम्मेदारियों को छोड़कर भागता है, जो मनुष्य सत्कर्म और सदाचार से बचता हुआ सन्यास की शरण लेता है, मेरे मन में वह वीर, साहसी, पुरुषार्थी और जीवित मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। परीक्षा से भागना और परीक्षा से वञ्चित रहना और परीक्षा से कतराना आसान है किन्तु परीक्षा में बैठकर उत्तीर्ण होना कठिन है। इस कठिनता को पार करना पुरुषार्थ का कार्य है। यही जीवन का चिन्ह है। स्त्री से भागना नामर्दी है। स्त्री की विशेषता, सज्जनता और उसकी मातृ-शक्ति का ज्ञान प्राप्त करते हुये सत्कर्म औ सदाचार से उसकी पूजा करना जीवन का चिन्ह है। संसार के प्रत्येक संकट में सुंदरता देखना, सुन्दरता से अपने हृदय और मस्तिष्क को परिपूर्ण कर देना, सुन्दरता को अपने नेत्रों और इन्द्रियों का अञ्जन बना लेना जीवन है। अपने मन को प्रेम की मूर्ति बनाना, उसको प्रेम का सोता और केन्द्र बनाना, उसको प्रेम से भर देना जीवन है। सत्कर्म और सदाचार से अपने लिये त्याग और भोग का निर्णय करना और स्वयं इतनी शक्ति प्राप्त करना कि कोई भी नियमों से बाहर न हो यह जीवन का मुख्य उद्देश्य है। सारांश यह कि जिन्दगी जिन्दा रहने का नाम है न कि मरने का।

महाराज अशोक ने अपनी घोषणाओं में जिन सत्कर्मों की शिक्षा दी है मैं उन सबको अच्छा समझता हूँ। किन्तु अन्तिम

अवस्था में जब वह विरोधियों नास्तिकों और धर्मच्युत जनों को दण्ड देने लगे तो वह अपने धर्म के उच्च सिंहासन से गिर गये। संसार में प्रत्येक मनुष्य को विचार की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। विभिन्न चर्चों का प्रवन्ध इस स्वतन्त्रता के मार्ग में सर्वदा वाधक होता है। और यही संसार में उन अत्याचारों का कारण हुआ है जो धर्म के नाम से किये गये हैं और किये जा रहे हैं। किन्तु यह एक अन्य विषय है जिसके विषय में हम यहाँ पर लिखना अनावश्यक समझते हैं। मैंने अत्यन्त सोच विचार कर इन विचारों को प्रगट किया है। क्योंकि मैं अपनी जाति में इस निवलता का अनुभव करता हूँ कि वह त्याग और वैराग की ओर अधिक आकर्षित है। मेरे स्वजातीय सज्जनों के हृदयों का यह उद्वेग जीवन को कम करने वाला है। और जीवन का कम होना अवनति और नष्ट होने का चिन्ह है, अथवा इस प्रकार कहो कि मृत्यु है।

महाराज अशोक ने अपनी घोषणाओं में जिन साधारण धार्मिक नियमों का प्रचार किया वह सब हमारे लिये माननीय हैं और हमारे हृदय में उनकी प्रतिष्ठा स्थिर करते हैं। विशेषतः वह नियम जो इम्पीरियलिज़म के विरुद्ध है और जिनमें कुछ धर्मावलम्बियों से प्रेम भाव रखने की शिक्षा है और जिनमें सबकी सेवा पर ज़ोर दिया गया है।